RNI No.: MPHIN/2018/77137

ISSN 2582-483X

पाठशाला भीतर और बाहर

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष-5 अंक-15 मार्च 2023
तिमाही, भोपाल



पाठशाला भीतर और बाहर

मार्च, 2023 (वर्ष 5, अंक 15)

प्रकाशक

Azim Premji University

- **अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय**
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
Web: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सम्पादकीय कार्यालय

- **सम्पादक**
पाठशाला भीतर और बाहर
अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव
सोसायटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा,
भोपाल, म.प्र. 462039 फोन-0755-4074060
pathshala@apu.edu.in
gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
मो. 8226005057

डिज़ाइन एवं प्रिंट

- **गणेश ग्राफिक्स,**
26-बी, देशबंधु परिसर,
प्रेस काम्प्लेक्स,
एम.पी. नगर, जोन-1
भोपाल, म.प्र. 462011
ganeshgroupbpl@gmail.com
मो. 9981984888

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

सम्पादकीय

पाठशाला भीतर और बाहर का यह अंक सामाजिक विज्ञान शिक्षण पर केन्द्रित है। यह विषय, समाज के अध्ययन, यथा– समाज को समझने में मददगार विषयों, इतिहास, अर्थशास्त्र, भूगोल, समाजशास्त्र, नागरिकशास्त्र से बनता है। समाज में अन्तर्निहित होने के कारण अपेक्षा है कि इन विषयों के शिक्षण की प्रक्रियाएँ ऐसी हों जो विद्यार्थियों को अपने समाज में व्याप्त मसलों को पहचानने और उनपर अपने विचार रखने के मौक़े दें। वे अपने सन्दर्भ में हो रही सामाजिक परिघटनाओं से जूझ पाएँ, तभी वे असल मायनों में इन विषयों को समझने की ओर बढ़ेंगे। यह भी कह सकते हैं कि ऐसे मौक़े सीखने वालों की इन विषयों में दिलचस्पी भी बढ़ा सकेंगे। यह हो पाने के लिए यह अपेक्षित है कि कक्षाएँ सिर्फ़ पाठ्यपुस्तक के ज्ञान, महज़ उसको याद कर लेने पर ही केन्द्रित न हों।

पाठशाला भीतर और बाहर के इस अंक में शामिल कई लेख सामाजिक विज्ञान की अनुपयुक्त समझ को चुनौती देते हैं। वे यह स्थापित करते हैं कि यह विषय सिर्फ़ जानकारी का पुलिन्दा नहीं है। लेखों में ऐसे कई उदाहरण हैं जिनमें सीखने वालों के लिए ऐसे मौक़े बनाए गए हैं जहाँ वे कक्षा / स्कूल से बाहर जाकर सामाजिक परिघटनाओं से अन्तःक्रिया कर उन्हें समझने का प्रयास करते हैं। इस अंक के लेखों में ऐतिहासिक, समसामयिक महत्त्व व सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ शामिल हैं। लेखों में जो उदाहरण हैं उनमें विद्यार्थी प्रश्न बनाने, सही प्रश्नों को चुनने, प्राप्त जानकारी को व्यवस्थित करने, रिपोर्ट लिखने जैसे कौशलों में शामिल होते हैं।

इस अंक में **शिक्षणशास्त्र** स्तम्भ के अन्तर्गत पाँच आलेख हैं। इनमें तीन आलेख सामाजिक विज्ञान शिक्षण से सीधे-सीधे जुड़े अनुभवों पर आधारित हैं।

‘गाँव, नदी और कठपुतली का इतिहास’ लेख रुबीना ख़ान और महेश झरबड़े ने लिखा है। इस लेख में, मध्य प्रदेश के विभिन्न ज़िलों के 3 समुदायों से आने वाले कक्षा 8 से 10 के विद्यार्थियों के साथ इतिहास शिक्षण का अनूठा अनुभव है। इसमें उन बच्चों ने इतिहास को पहली बार इस तरह से देखा, जिसमें उन्हें भी कुछ जोड़ना था। इतिहास सीखते-सीखते बच्चों ने अपने समाज के व्यवसायों व अपने आसपास की धरोहर को समझने का प्रयास किया। इससे उन्होंने बहुत कुछ नया सीखा।

इस स्तम्भ का दूसरा आलेख *‘दहलीज़ से बाहर सामाजिक विज्ञान का संसार’* अनिल सिंह ने लिखा है। यह लेख, कक्षा से बाहर, सामाजिक विज्ञान की कुछ गतिविधियों के अनुभवों पर आधारित है। बच्चों ने अलग-अलग समूहों में दूध की डेयरी और स्कूल के पास की नहर का अध्ययन किया। इसमें उन्होंने, एक डेयरी का ढाँचा कैसा होता है, उसमें कितने लोग शामिल होते हैं, इनकी ज़िम्मेदारियाँ क्या होती हैं आदि समझने का प्रयास किया। इसी तरह यह भी सीखा कि जिस नहर को वे रोज़ देखते हैं वह कितनी लम्बी है, कब उसमें पानी रहता है, मौसम व नहर के चलने में क्या सम्बन्ध है और नहर का शहर के जीवन से क्या लेना-देना है।

‘बच्चों ने बनाया अपनी कक्षा के संविधान का संकल्प प्रस्ताव’ के लेखक केवल आनन्द कांडपाल हैं। उन्होंने कक्षा 8 के बच्चों के साथ भारतीय संविधान अध्याय को पढ़ने के अनुभव साझा किए हैं। संविधान क्या है, किसी देश को इसकी ज़रूरत क्यों है, जैसे प्रश्नों को बच्चे समझ पाएँ, इसके लिए उन्होंने बच्चों से अपनी ही कक्षा के लिए नियमावली बनाने की कोशिश करवाई। इस प्रक्रिया में कक्षा में, संविधान क्यों ज़रूरी है, कैसे मददगार होता है, क़ानून क्या होते हैं, आदि मुद्दों पर समझ बनी और उनपर बातचीत से राष्ट्रीय संविधान को भी समझने का मौक़ा कक्षा में बना।

चौथा आलेख मीनू पालीवाल का है। *'पढ़ना, अक्षर-मात्रा से आगे...'* शीर्षक से लिखे इस आलेख में मीनू पढ़ने के अर्थ को रेखांकित करती हैं। वे कहती हैं कि अक्षर और मात्राओं की पहचान मात्र से सही मायने में पढ़ना नहीं हो पाता। बच्चे अपने पढ़े हुए का अर्थ तब तक नहीं समझते जब तक वे असल में सिर्फ़ प्रतीकों को टुकड़े-टुकड़े में ही पहचान रहे होते हैं। इसे पढ़ना नहीं माना जा सकता क्योंकि वे इससे कुछ अर्थ नहीं निकाल सकते।

अगला लेख *'बच्चों का लेखन पोर्टफ़ोलियो'* कमलेश चंद्र जोशी का है। वे बच्चों के लेखन पोर्टफ़ोलियो से लिए नमूनों का विश्लेषण करते हुए पढ़ने और लिखने पर चर्चा करते हैं। उनका विश्लेषण दर्शाता है कि बच्चे पढ़ते-पढ़ते कुछ-कुछ लिखना तो सीख ही जाते हैं लेकिन उनके लेखन में निखार व लिखने के प्रति आत्मविश्वास के लिए आवश्यक है कि बच्चों को लिखने के नियमित मौक़े दिए जाएँ। इसके अलावा, उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, उसको ध्यानपूर्वक देखा जाए और उनसे उनकी कृतियों के बारे में बातचीत की जाए। बच्चों की लेखन सम्बन्धी रुकावटों, रुझान, दक्षता और शैली का यह नियमित अध्ययन ज़रूरी है। यह अध्ययन न सिर्फ़ आकलन का आधार बनता है, बल्कि बच्चों के लेखन कौशल को निखारने की राह भी देता है।

विमर्श स्तम्भ के अन्तर्गत *'चरित्र निर्माण : किशोरों की विरोधों से निपटने की संस्कृति'* एक अध्ययनपरक अनुभव है। अमन मदान ने इस अध्ययन के मार्फ़त यह जानने की कोशिश थी कि किशोर अपनी किसी समस्या को सुलझाने के लिए क्या क़दम उठाते हैं और उस समस्या के सन्दर्भ में लोगों से कैसे बात करते हैं। लेख यह उभारता है कि किशोरों में सामाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान अन्तर्विरोधों से निपटने की अभिवृत्ति कैसे विकसित होती है। लेख यह भी रेखांकित करता है कि व्याप्त विरोधों से निपटने के तरीक़ों की समझ व उसके लिए तैयारी भी स्कूल के स्तर पर होनी चाहिए।

परिप्रेक्ष्य स्तम्भ के अन्तर्गत दो लेख हैं। पहला लेख, *'सामाजिक विज्ञान की कक्षा में बच्चों का दैनन्दिन ज्ञान'* ऋषभ कुमार मिश्र का है। वे कहते हैं कि विद्यार्थियों को भावी नागरिक की भूमिका में देखा जाता है। उनसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों के बारे में आलोचनात्मक चिन्तन कर पाने और इस तरह समाज को बेहतरी की ओर ले जाने की अपेक्षा होती है। वे सामाजिक विज्ञान की एक कक्षा में 'मानव संसाधन' विषय पर विद्यार्थियों के साथ किए गए काम के अनुभवों को रखते हुए दर्शाते हैं कि विद्यार्थियों के अनुभव पर संवाद सामाजिक विज्ञान की अवधारणाओं को समझने के साथ-साथ उनको चिन्तन-मनन की प्रक्रियाओं से भी गुज़ारता है।

इसी स्तम्भ का दूसरा लेख *'स्कूली शिक्षा में भाषा का आकलन : सार्थक तरीक़े अपनाने की ज़रूरत'* है। इसकी लेखिका माया मौर्य हैं। अपनी कक्षा के अनुभव को रखते हुए वे दर्शाती हैं कि भाषा के आकलन के दौरान सिर्फ़ लिपि लिखने और पढ़ने के कौशल को आधार बनाना उचित नहीं। चित्रों को पढ़ने, मौखिक अभिव्यक्ति, चिन्तन और तर्क आदि को भी इसमें शामिल किया जाना बहुत ज़रूरी है। वे इसके विविध तरीक़ों पर भी चर्चा करती हैं।

कक्षा अनुभव स्तम्भ के अन्तर्गत इस बार पाँच लेख हैं। भूगोल की कक्षा में बच्चों के बीच अक्षांश और देशान्तर रेखाओं की अवधारणात्मक समझ बनाने से सम्बन्धित दो लेख हैं। मुकेश मालवीय का लेख *'अक्षांश और देशान्तर की बातें'* और दूसरा विजय नौटियाल का *'बच्चों के साथ कक्षा में अक्षांश-देशान्तर पर कार्य के अनुभव'*। ये दोनों ही लेख इन प्रश्नों पर चर्चा करते हैं कि इन रेखाओं की ज़रूरत क्यों है और इन रेखाओं को कैसे पढ़ सकते हैं। लेख इस विषय से सम्बन्धित कक्षा में की जाने वाली गतिविधियाँ भी सुझाते हैं।

'बारिश और बच्चों के अनुभव : मौखिक बातचीत का शैक्षिक महत्त्व' में शिफ़ा ने बारिश पर बच्चों के साथ बातचीत के अपने अनुभव लिखे हैं। ये अनुभव सामान्य होते हुए भी कुछ ख़ास बिन्दु ज़ेहन में उभारते हैं। मसलन, क्या छोटे बच्चे भी बारिश के बारे में इतना कुछ जानते हैं! बारिश में खेलना, घूमने जाना, इन्द्रधनुष जैसे विचारों के साथ-साथ बारिश से बुख़ार, सर्दी, घर का चूना (रिसना) आदि भी जुड़ते हैं। और तब यह प्रश्न भी उठता है कि इनमें से किन विचारों को किस दिशा में आगे ले जाया जाए!

अगला आलेख सुमन पटेल का है। *'कहानी की कथा'* शीर्षक से इस आलेख में उन्होंने एक कहानी की विभिन्न परतों और उनसे बनने वाले विविध प्रभावों का ब्योरा प्रस्तुत किया है। *'भाषा शिक्षण के तरीक़े'* में मुरलीधर गुर्जर ने समग्र भाषा नज़रिए के साथ बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने के तरीक़ों पर अनुभवपरक और विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

पुस्तक चर्चा के तहत इस बार कांचा आइलैया की बहुचर्चित किताब *हमारे समय में श्रम की गरिमा* को शामिल किया है। शाह आलम ने पुस्तक पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। हाथ से किए जाने वाले कामों के प्रति व्यापक समाज के नज़रिए और मानवीय गरिमा के प्रश्न पर यह किताब एक तीखी टिप्पणी करती है।

साक्षात्कार स्तम्भ में इस बार शिक्षिका पूनम भाटिया से दीपक राय की बातचीत प्रकाशित की गई है। पूनम अपने शिक्षकीय अनुभव से बताती हैं कि एक शिक्षक को हर समय नया सीखते रहने की ज़रूरत है, ताकि वह बच्चों की जिज्ञासा पूरी कर सके और अपनी जानकारी व समझ को भी अद्यतन रख सके।

संवाद स्तम्भ में इस बार चर्चा का विषय था– *'स्कूल / कक्षा में संवैधानिक मूल्यों का शिक्षण कैसे हो?'* चर्चा में यह सामने आया कि संवैधानिक मूल्यों की समझ बच्चों को होती है। बच्चे सहज रूप से एक दूसरे का ध्यान रखते हैं और आपस में बराबरी का व्यवहार करते हैं, लेकिन धीरे-धीरे वे अपने परिवेश, समाज से अन्तःक्रिया करते हुए नई धारणाएँ भी बनाते हैं। ये धारणाएँ समाज में प्रचलित विभिन्न प्रवृत्तियों से बहुत अधिक प्रभावित होती हैं। स्कूलों का काम इन धारणाओं के प्रति बच्चों में आलोचनात्मक विवेक विकसित करना होता है। शिक्षक इस काम को किस तरह कर रहे हैं, इस काम में शिक्षकों को किस तरह की चुनौतियाँ आती हैं, स्कूल और कक्षा के ढाँचे में किस तरह के परिवर्तन अपेक्षित हैं, आदि प्रश्नों पर प्रतिभागियों ने अपने विचार रखे।

पाठशाला के पिछले अंकों में प्रकाशित हुए कुछ लेखों पर पाठकों की टिप्पणियाँ आप **पाठक चश्मा** के तहत पढ़ेंगे। इस स्तम्भ के तहत आप भी पत्रिका के पिछले अंकों में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार, टिप्पणियाँ, आदि साझा कर सकते हैं। लेखों पर आपके विचार और टिप्पणियाँ हमारे लिए काफ़ी महत्त्वपूर्ण हैं।

हम आशा करते हैं कि पत्रिका के आगे आने वाले अंकों के लिए आप अपने लेख भी साझा करेंगे।

सम्पादक मण्डल

गाँव, नदी और कठपुतली का इतिहास

रुबीना ख़ान व महेश झरबड़े

इतिहास की पढ़ाई अकसर तथ्यों और अतीत के जंगल में खो जाती है। कौन-सी घटना किस तारीख़ को और किस साल में हुई, इसे रटने में ही सारा समय और मेहनत ख़र्च हो जाती है। तारीख़ें, तथ्य और साल रटने पर ज़ोर बच्चों में इतिहास की समझ विकसित नहीं होने देता है। इस लेख में इतिहास पढ़ाने की एक वैकल्पिक कार्यविधि का विस्तार से विवरण है। लेख बताता है कि स्थानीय परिवेश में उपलब्ध चीज़ों के सहारे बच्चों का इतिहास से जीवन्त रिश्ता बनाने की शुरुआत की जा सकती है और बच्चों में इतिहास के प्रति दिलचस्पी को जगाया जा सकता है। -सं.

चूँकि इतिहास जीवन जीने, जीवन के अनेक पहलुओं को समझने, और आगामी समय के निर्णय लेने में बेहद मददगार है, इसलिए हमने सोचा कि हम जिन समूहों के साथ काम कर रहे हैं, उनको भी इतिहास समझने के सफ़र में शामिल किया जाए। इतिहास तिथियाँ या साल रटने, राजाओं-महाराजाओं का नाम याद रखने से कहीं ज़्यादा होता है, यह बात हमारे मन में स्पष्ट थी। इस महत्त्वपूर्ण विषय को पढ़ने के साथ-साथ समझने की ज़रूरत भी है, अन्यथा यह रटने और प्रश्नोत्तर लिखने में ही सिमट जाता है। इसी नज़रिए को ध्यान में रखते हुए, हमने खरगोन ज़िले के नागझिरी गाँव, बैतूल ज़िले के हांडीपानी गाँव, और भोपाल शहर की कठपुतली बस्ती का चयन किया। योजना के मुताबिक़, इन जगहों के बच्चों के साथ समूहों में बातचीत हुई।

1. बालिका माध्यमिक शाला नागझिरी स्कूल में कक्षा आठवीं की बालिकाओं ने यह तय किया कि उनका गाँव नागझिरी पहले कैसा था, यहाँ कौन-कौन सी धरोहरें बहुत पुरानी हैं और उनसे जुड़ी क्या कहानी है, वे सब मिलकर ये पता लगाएँगी।

2. हांडीपानी में कक्षा 9वीं और 10वीं के कुल 7 विद्यार्थियों ने मिलकर पता लगाया कि हमारे गाँव में बहने वाली नदी कहाँ से निकलती है, और किन गाँवों से होते हुए कहाँ जाकर मिलती है?

3. भोपाल की कठपुतली बस्ती के 5 विद्यार्थियों की टीम ने ये पता किया कि उनके समुदाय में कठपुतली का काम कब से चल रहा है, और भोपाल के अलावा ये काम और कहाँ-कहाँ प्रचलित है? इस काम का सफ़र कैसा रहा और कैसे यह काम अभी तक जीवित रह पाया है?

सभी जगहों के बच्चों ने पहली बार इस तरह का अभ्यास किया और उन्होंने कई बातें सीखीं, जैसे– कई लोगों के साथ मिलते हुए उनसे विषयानुसार बात करना; सवाल से जुड़ी बात को समझने के लिए अलग-अलग जगह जाना; गाँव के पुराने लोगों से मिलकर बात करना; अनुमान व प्राप्त जानकारी के आधार पर नए प्रश्न बनाना; पिछली बात को याद रखते हुए आगे की बातों का लिंक बनाना; प्राप्त हुई जानकारी को एक जगह इकट्ठा करके क्रमवार

प्रस्तुत करना; ख़ुद के परिवेश से जुड़े इतिहास को समझना; इत्यादि। समूहों द्वारा एकत्रित की गई जानकारियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

नागझिरी की कहानी

माध्यमिक शाला नागझिरी के कक्षा आठवीं के बच्चों ने बताया कि इस गाँव का नाम पहले 'नागज़हरी' था। फिर बदलते-बदलते ये नागझिरी हो गया। ऐसा लोग कहते हैं कि तक्षक नाग के कारण इसका यह नाम पड़ा है। गाँव के लोग बताते हैं कि इस नाग का सिर हमारे गाँव में है। जिस जगह सिर है, वहाँ एक बावड़ी है। एक अन्य गाँव तक उसकी पूँछ गई है। जिस गाँव में पूँछ निकली है, उस गाँव को 'दशनावल' कहते हैं। यह जगह यहाँ से 16 किलोमीटर दूर है।

गाँव में बावड़ी, बोंदरू बाबा का समाधि स्थल (अब यहाँ एक मन्दिर है और आज पूरे क्षेत्र को बोंदरू बाबा के नाम से पहचाना जाता है। यहाँ बोंदरू बाबा सैटेलाइट स्कूल भी है)। पुराना स्कूल और शिव मन्दिर सबसे पुराने हैं। बोंदरू बाबा में सावन के एक दिन बाद एक दिन का मेला लगता है जिसमें कच्ची कैरी (आम) के प्रसाद का प्रचलन है।



चित्र : महेश झरबड़े

कक्षा के बच्चों ने पूछताछ करते हुए एक बुज़ुर्ग दशरथजी से भी मुलाक़ात की। वे 80 साल के हैं। उन्होंने बताया, "गाँव में जिस बिल्डिंग में आज पोस्ट ऑफ़िस है, पहले वो इस गाँव का स्कूल हुआ करता था। मैं वहाँ पहली तक ही गया, फिर आगे नहीं पढ़ा। पहले जब मैं छोटा था, तब यहाँ पूरा जंगल था। शाम 6 बजे के बाद घर से नहीं निकलते थे, क्योंकि शेर के आने का डर हमेशा रहता था। उस समय तो हिरण हमारे पास से भागते थे और लगातार सात-सात दिन तक बारिश होती थी, वैसी तो अब होती ही नहीं है। पहले सबके घर कच्चे या कवेलू वाले होते थे। यहाँ बहुत बन्दर थे तो घरों पर उछल-कूद करके कवेलू तोड़ देते थे, बड़ी मुश्किल थी उस समय में।"

जब बच्चे कक्षा में ये बातें साझा कर रहे थे तो उनके चेहरों पर अपने गाँव के प्रति अपनापन और पुराना दौर साफ़ झलक रहा था।

नदी के बारे में पता की गई जानकारी

अपने गाँव में जो नदी बहती है वो कोठा नामक गाँव से निकलती है। जहाँ से ये नदी निकलती है, वहाँ छोटी नाली जैसी लगती है। आगे बढ़ते हुए इसमें कई जल स्रोत मिलते जाते हैं और वहाँ से कुप्पा गाँव आते-आते यह नदी जैसी दिखने लगती है। इस नदी को हर गाँव में अलग-अलग कुल 23 नामों से जाना जाता है। मसलन, झिरीयागाडा, दरारी घाट, भैंसबुड़, बारहद्वारी, बटकीपाटी, गाड़ाघाट, लामाडोह, फोडेपाटी, पनघट, चीपो, ताड़ईधापड़ी, इत्यादि। यह नदी 9 गाँवों से होते हुए आगे जाकर तवा नदी में मिल जाती है। जहाँ अपनी नदी तवा से मिलती है, उस जगह को 'इंजन घाट' कहते हैं।

नदी के इन नामों में कई नाम ऐसे हैं, जिनका मतलब समझ नहीं आता। दरअसल, ये नाम कोरकू और गोंडी भाषा के शब्द हैं जिनका उस भाषा में मतलब भी है। जैसे– जब नदी में बाढ़ आती है तो नदी पार करना मुश्किल होता है। ऐसे में, एक जगह जहाँ बहाव थमा होता है और गहराई कम होती है, उस जगह से बैलगाड़ी से नदी पार की जा सकती है। उस जगह को 'गाड़ाघाट' कहा जाता है। नदी के किनारे कई सालों से एक बड़ का पेड़



चित्र : प्रेमवती

है जिसके किनारे से नदी बहती है। पास में बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं। लोग यहाँ नहाते-धोते हैं। इस जगह को 'बड़पाटी' कहा जाता है (चित्र में वही पेड़ है)। ऐसे ही हर नाम की अपनी कहानी है। टीम ने हर नाम की कहानी इकट्ठी की, जो कई लोगों से होते हुए इन ग्रामीण इतिहासकारों तक पहुँची। नदियों के ये नाम समुदाय की सदियों पुरानी संस्कृति की तरफ़ भी इशारा करते हैं।

इस नदी पर 3 बड़े पुल और एक रेलवे पुल है। 200 से अधिक परिवारों की खेती नदी किनारे होती है। उनकी जानकारी के मुताबिक़, अभी तक 3 लोगों की नदी में डूबने से मौत हुई है। चमेली बोली, "सरजी, पोला, भुजलिया, तीरथ जैसे त्योहार तो सिर्फ़ नदी के कारण ही हम मना पाते हैं। नदी नहीं होती, तो अपना और अपने गाँव के इतने सारे जानवरों का क्या होता!"

नदी का इतिहास पता करते हुए वे सहायक नदी, नदी के किनारे पाए जाने वाले पेड़ और झाड़ियाँ, उसके किनारे की मिट्टी, पत्थरों के प्रकार आदि भी समझे। अमिता ने कहा, "भैया, हमने देखा कि नदी के किनारे ज़्यादातर पेड़ जामुन और 'कहू' (अर्जुन) के ही हैं, पर समझ नहीं आया कि ऐसा क्यों है?"

कठपुतली का इतिहास

कठपुतली बस्ती में रहने वाले कुल 5 किशोरों और सहजकर्ता रुबीना ने मिलकर कई लोगों से मुलाक़ात की। भावना कहती है, "हमने कठपुतली बस्ती में कई तरह की चीज़ें देखीं, कठपुतलियाँ देखीं और रामस्वरूप भाट (70 वर्ष), मनफूल भाट (75) और बाजू बाई (72 साल) से बात की। ये तीनों वे शख़्स हैं, जिन्होंने बचपन से कठपुतली का काम किया है। अभी भी वे यही काम करते हैं और इनके दादा-परदादा भी यही करते थे।" (इस समूह के सदस्यों में एक ऐसे व्यक्ति को भी शामिल किया गया था जो इस समुदाय का हो ताकि वो ख़ुद भी अपने समुदाय के इतिहास को समझे।)

इस समूह के सदस्यों, पूजा, अर्जुन, मुस्कान, भावना, द्वारा चर्चा कर प्राप्त की गई जानकारी के अनुसार, भोपाल में रहने वाले कठपुतली बस्ती के लोगों की कहानी राजस्थान से शुरू होती है। ये लोग राजस्थान के नागौर ज़िले में रहा करते थे। वे बताते हैं, "हम शुरू में राजे-रजवाड़ों के महलों में काम करते थे। जब उनके महल में कोई ख़ुशी का माहौल होता था, तब वे हमें बुलाते थे। जब कोई राजा युद्ध जीतकर आए, किसी अन्य राजा की ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर ले या जब महल में किसी बच्चे का जन्म हुआ हो, तब राजा के घर से हमें बुलावा आता था कि कोई कार्यक्रम कर दो। हम ये पता



चित्र : रुबीना ख़ान

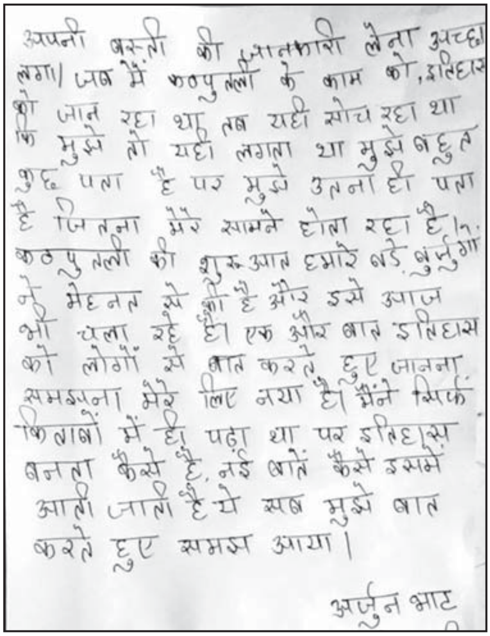
लगाते थे कि मामला क्या है, फिर कठपुतली के माध्यम से वो पात्र बनाकर शो करते थे और लोग बैठकर देखते थे।" मनफूलजी ने बताया, "मैंने अधिकतम 52 पात्रों के साथ शो किया है। ऐसे शो अकसर 3 से 4 घण्टे चला करते और चार घण्टे तक उँगलियों को रस्सी से लपेटे रहना बहुत मुश्किल भी होता था। कई बार उँगलियाँ कट जातीं और हाथ भी दर्द होने लगते। इस सफ़र में महिलाओं की अहम भूमिका रहती थी। वो अलग-अलग आवाज़ों में किरदारों के संवाद बोलतीं और ज़रूरत के अनुसार ढोल पर थाप भी देती थीं। लोग ख़ुश होकर हमें इनाम के तौर पर पैसे देते थे। हमारे दादाजी को राजा ने ख़ुश होकर ज़मीन भी दान दी थी। चूँकि हम तो एक जगह रुकने वाले नहीं हैं इसलिए वहाँ अब कोई दूसरे लोग रहते हैं।" खोजी टीम की साथी रुबीना कहती हैं कि रामस्वरूपजी द्वारा कही गई यह बात, कि राजस्थान की ज़मीन पर कई कहानियाँ रची गई हैं और अभी भी कई कहानियाँ वहाँ ज़िन्दा हैं, उन्हें बहुत अच्छी लगी।

राजस्थान के बाद वहाँ से निकलकर इस समुदाय के लोग मध्यप्रदेश के अलग-अलग ज़िलों में फैल गए। इस समुदाय को भोपाल आए हुए लगभग 50 साल हो गए हैं। भोपाल में वे सबसे पहले रोशनपुरा में तिरपाल लगाकर कुछ साल रहे, फिर उन्हें रंगमहल (एक जगह का नाम) शिफ़्ट किया गया। वहाँ से विस्थापित होकर वे राजीव नगर में रहने लगे। यहाँ रहते हुए उन्हें 35 साल हो गए हैं। बाजू बाई बताती हैं, "शुरू में किसी के घर जब कोई कार्यक्रम होता था तो लोग आकर पूछते थे कि कठपुतली वाले किधर रहते हैं। लोग ढूँढ़ते हुए हमारे घर आते थे। इस तरह धीरे-धीरे हमारी बस्ती का नाम ही कठपुतली बस्ती पड़ गया। हमें अच्छा लगता है कि बस्ती का नाम हमारी पहचान को बताता है।" आज भी यह बस्ती इसी नाम से जानी जाती है। मनफूल दादा ने कहा, "हमारा काम लगभग 1000 साल पुराना है।"

खोजी समूहों के अनुभव

मनीषा, रुकमणी और प्रेमवती कहती हैं, "हमने पहले कभी सोचा ही नहीं था कि हमारी नदी की इतनी मज़ेदार कहानी भी हो सकती है।"

अर्जुन ने बताया, "जब हम बस्ती के इन बुज़ुर्ग लोगों से बात कर रहे थे, वो लोग बहुत ख़ुश होकर हमें सबकुछ बता रहे थे। कभी वे आज की बात करते, कभी बचपन की बात


अपनी बस्ती की जानकारी लेना अच्छा लगा। जब मैं कठपुतली के काम को, इतिहास को जान रहा था तब यही सोच रहा था कि मुझे तो यही लगता था मुझे बहुत कुछ पता है पर मुझे उतना ही पता है जितना मेरे सामने होता रहा है। कठपुतली की शुरूआत हमारे बड़े बुजुर्गों ने मेहनत से की है और इसे आज भी चला रहे हैं। एक और बात इतिहास को लोगों से बात करते हुए जानना समझना मेरे लिए नया है। मैंने सिर्फ किताबों में ही पढ़ा था पर इतिहास बनता कैसे है, नई बातें कैसे इसमें आती जाती है ये सब मुझे बात करते हुए समझ आया।

अर्जुन भाट

चित्र : रुबीना ख़ान

बताते! रामस्वरूप दादा बोले, 'ऐसा लग रहा है जैसे मैं अपने बचपन में चला गया था', और मैं उनकी बातें सुनते-सुनते इतिहास की किताब के बारे में सोच रहा था। उनसे बात करते हुए लगा कि इतिहास में कितनी सारी बातें हैं। मुझे भी अपने आसपास का इतिहास जानना ही चाहिए।"

पूजा बोली, "मैं तो उनकी बातें सुनते हुए राजा-महाराजा की फ़िल्मों को याद करने लगी थी। उनकी बातें सुनकर यक़ीन हुआ कि कभी ऐसा भी हुआ था।"

मुस्कान बोली, "आकड़ की लकड़ियाँ, ऊपर छाई खीपड़ी, ऊँचा-ऊँचा रिबा माथे आकुड़

बाँधी झोपड़ी। ये सब कितनी कठिन लाइन हैं और उनको सब याद हैं। इसमें कितनी मेहनत लगती होगी! है न?"

प्रेमवती कहती है, "ये सब पता करते-करते मैं कई बार अचम्भित हो गई कि इतना कुछ हमारे गाँव में है। मैंने कई लोगों से बातचीत की। शुरू में मुझे चुनौतीपूर्ण लगा, पर बाद में बहुत मज़ा आया। नदी के इतने सारे नाम हैं। तब से मैं ये भी सोच रही हूँ कि हमारे आसपास कौन-कौन से पहाड़ हैं, कितनी झील होंगी, कौन-सा पक्षी अब नहीं देखने को मिलता? सब पता करने का मन है।"

मनीषा ने कहा, "मैंने नदी के बारे में पता करने के लिए अलग-अलग लोगों से बात की। मम्मी से भी बात हुई। उन्होंने बताया, 'पहले हम नदी के किनारे ही खाना / पूड़ी बनाते थे'। ये सुनकर बहुत अच्छा लगा। उनका नदी से बहुत पुराना रिश्ता है। मुझे पता नहीं था कि नदी किधर-किधर से जाती है। कभी ध्यान ही नहीं दिया कि ये भी पता करना चाहिए।"

अमिता ने कहा, "सब काफ़ी दिलचस्प था, मज़ा आया। हम सबको अपनी नदी, अपनी जगह के बारे में पता होना चाहिए।" नागझिरी में कक्षा आठवीं की बालिकाओं ने बताया, "हमने बहुत लोगों से जानकारी ली। हमारे पड़ोस की अम्मा बोलीं, 'तुम चुपचाप पढ़ाई करो नी, पता नहीं का-का पूछा करती हो?' वो शुरू में ठीक से नहीं बता रही थीं। हमने जब बताया कि हम ये क्यों कर रहे हैं, तो फिर चुप ही नहीं हो रही थीं। मेले के बारे में, गाँव के बारे में, सब बताती ही जा रही थीं। हमको बहुत मज़ा आया। हमको समझ आया कि जिसके बारे में उनको पता है, वो पूछो तो वे बिना साँस लिए बोलते जाते हैं।"

आगामी योजना

जब हम लोगों ने तय किए गए काम एक हद तक पूरे कर लिए, तो हमने पुन: सबके साथ मीटिंग करके पूछा कि हमने पूरी मेहनत से अपने तय किए काम कर लिए हैं। हमारे पास जो जानकारी प्राप्त हुई है उसका क्या किया जाए? बातचीत के बाद 'हांडीपानी' के किशोरों ने साझा किया कि हमने जो कुछ इकट्ठा किया है, उसे क्रम से लिखकर अपने पास के स्कूल में बच्चों को पढ़ने के लिए देंगे। 'कठपुतली' के बच्चों ने तय किया कि वे अपनी बस्ती में छोटी-छोटी मीटिंग करके इस समुदाय के बारे में सबको बताएँगे। ऐसे ही 'नागझिरी' की क्लास में बच्चों ने तय किया कि हम बालसभा वाले दिन सबको नागझिरी के बारे में बताएँगे। सब पुरानी जगहों की फ़ोटो खींचकर क्लास में लगाएँगे और उसकी कहानी भी लिखेंगे।

इस पूरी गतिविधि से विद्यार्थियों ने न सिर्फ़ अपने समुदाय के साथ नए तरह से सम्बन्ध बनाए, बल्कि स्थानीय इतिहास की नई चीज़ों को भी देखा। साथ ही, वे इतिहास विषय की रटने वाली छवि को भी तोड़ सके और उसे अपने जीवन व परिवेश से जोड़कर देखने की दिशा में आगे बढ़े।

रुबीना ख़ान 10 वर्षों से मुस्कान संस्था के साथ काम कर रही हैं। संस्था में शुरुआती तीन साल शहरी वंचित तबक़े के आदिवासी समुदाय ख़ासकर कामकाजी बच्चों के साथ शिक्षा पर काम किया। सात वर्षों से इन्हीं बस्तियों में यूनिसेफ़ के सहयोग से बच्चों की सुरक्षा और अधिकारों के लिए समुदाय व विभाग स्तर पर कार्य कर रही हैं। शिक्षा में दिलचस्पी होने से बच्चों के लिए पुस्तकालय व पढ़ने की गतिविधियों में भी शामिल रहती हैं।

सम्पर्क : khanrubina89@gmail.com

महेश झरबड़े पिछले 15 सालों से बच्चों व युवाओं के साथ शिक्षा सम्बन्धी कामों से जुड़े रहे हैं। एकलव्य के शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र और मुस्कान के जीवन शिक्षा पहल स्कूल में बच्चों व युवाओं के विभिन्न मुद्दों को शिक्षा के साथ जोड़कर देखने का प्रयास किया है। आदिवासी और वंचित तबक़ों के लिए किस तरह की शिक्षा हो, ये समझने का प्रयास जारी है। आपने सिनर्जी संस्थान, हरदा के साथ जुड़कर इस मुद्दे को गहराई से समझने की कोशिश भी की है। बच्चों, युवाओं व ग्रामीण विकास के मुद्दों पर पढ़ने और लिखने में रुचि है। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन मध्यप्रदेश के खरगोन ज़िले में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mjharbade@gmail.com

दहलीज़ से बाहर सामाजिक विज्ञान का संसार

अनिल सिंह

सामाजिक विज्ञान के कौशलों को हासिल करने के लिए दरअसल इसे पाठ्यपुस्तक और कक्षा शिक्षण के सीमित दायरे से बाहर निकालकर जीवन सन्दर्भों से जोड़ने और बच्चों की प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित करने की ज़रूरत है। इस आलेख में अनिल सिंह ने बच्चों के साथ स्कूल के भीतर और बाहर के विविध मौक़ों व तरीक़ों का इस्तेमाल करके सामाजिक विज्ञान शिक्षण एवं उनमें विविध कौशल निर्माण के अनुभव प्रस्तुत किए हैं। इनमें विरासत, संसाधनों और घटनाओं के अवलोकन, परस्पर सम्पर्क-संवाद, आलोचनात्मक समझ और समाज में होने वाले परिवर्तनों की समझ के लिए बनने वाले मौक़े आदि शामिल हैं। -सं.

सामाजिक विज्ञान के अध्ययन के विषय मनुष्य और समाज हैं। ज़ाहिर है, तब सामाजिक विज्ञान के शिक्षण को कक्षा-कक्ष तक सीमित रखना उस विषय की प्रकृति के विपरीत होगा।

जानकारियों से लबरेज़ सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को यदि कक्षा में सिर्फ़ पढ़े और अभ्यास प्रश्न कराए जाने के तौर पर इस्तेमाल किया गया तो सामाजिक विज्ञान शिक्षण से अपेक्षित कौशल हासिल करना न सिर्फ़ कठिन हो जाएगा, बल्कि यह बच्चों में विषय के प्रति लगाव भी पैदा नहीं कर सकेगा।

आनन्द निकेतन में हमने इस विषय पर काम करने के बुनियादी सिद्धान्त पर ध्यान दिया कि सामाजिक विज्ञान को स्कूल के बाहर की दुनिया व लोगों के असल जीवन से जोड़ना होगा और उसे बच्चों के प्रत्यक्ष अनुभव का मसला बनाना होगा।

इसके लिए हमने रोज़मर्रा के कामों, अनुभवों और अपने आसपास की दुनिया से जोड़कर सामाजिक विज्ञान शिक्षण के रास्ते निकाले। यहाँ मैं, इस आलेख में चार प्रकरणों का अनुभव रखना चाहूँगा :

गोपाल की दूध डेयरी

गोपाल हमारे स्कूल में कक्षा 6 में पढ़ने वाला बच्चा था। वह स्कूल के पास ही बनी बस्ती में अपने दादा-दादी के साथ रहता था। उसके दादा एक छोटी दूध डेयरी चलाते थे। उनके पास चार भैंसें और छह गायें थीं। गोपाल भी डेयरी के इस काम में अपने दादा-दादी की मदद करता था। सुबह अपनी साइकिल से दूध बाँटने के बाद ही गोपाल स्कूल आता। कभी-कभार कक्षा में बातचीत के दौरान डेयरी के कामकाज के बारे में थोड़ी-मोड़ी चर्चा उससे हो जाती थी। बच्चे भी स्कूल के पास की गोपाल की दूध डेयरी से मोटेतौर पर परिचित थे।

हमने कक्षा 6, 7 और 8 के 27 बच्चों को मिलाकर तीन समूह बनाए। इनमें 16 लड़कियाँ और 11 लड़के थे।

पहले समूह का काम तय हुआ कि गोपाल की दूध डेयरी में जाकर जानकारी दो तरीक़ों से इकट्‌ठा करें– सवाल पूछते हुए बातचीत करके और कुछ अवलोकन करके।

- बच्चों ने पूछे जाने वाले सवालों पर पहले चर्चा की, फिर उन्हें लिखकर फ़ाइनल किया।
- एक काग़ज़ पर प्रारूप बनाया जिसमें एकत्र की गई जानकारी दर्ज करनी थी।
- अवलोकन के लिए भी कुछ बिन्दु तय किए गए।

बच्चों के बनाए कुछ सवाल इस तरह रहे

- मवेशियों की संख्या : दुधारू / ग़ैर-दुधारू;
- प्रतिदिन बिकने वाले दूध की मात्रा : लीटर में;
- डेयरी से सीधे बिकने वाले दूध की मात्रा;
- घर-घर जाकर बाँटे जाने वाले दूध की मात्रा;
- दूध का वर्तमान बिक्री मूल्य;
- मवेशियों के पालन-पोषण पर दैनिक / मासिक होने वाला कुल ख़र्च, जिसमें चारा-भूसा, खली, दवाइयाँ, आदि शामिल हैं;
- महीने का आय-व्यय का ब्योरा।

अवलोकन के लिए तय हुए कुछ बिन्दु इस प्रकार रहे

- जगह कितनी और किस तरह की है;
- साफ़-सफ़ाई की स्थिति;



चित्र : हीरा धुर्वे

- आसपास का वातावरण;
- मवेशियों के रखे जाने, बाँधे जाने, नहलाने एवं खिलाने की व्यवस्था;
- मवेशियों का ऊपरी स्वास्थ्य;
- दूध निकालने एवं स्टोर करने के बर्तन।

दूसरे समूह का काम तय हुआ कि वे पता लगाएँ कि आसपास ऐसी कितनी दूध डेयरियाँ हैं। इसके अलावा, आसपास साँची मिल्क पार्लर कितने हैं। किसी एक पार्लर में जाकर वे प्रतिदिन औसत आने वाले और बिकने वाले दूध पैकेटों की जानकारी एकत्र करें। साथ ही, यह भी कि बच्चों के घरों में रोज़ाना कितना दूध इस्तेमाल होता है।

इसमें समूह के बच्चों को अपने घर के बड़ों की मदद भी लेनी थी, लेकिन एकत्र जानकारी को ख़ुद ही व्यवस्थित करना था।

तीसरे समूह को काम सौंपा गया कि वह पहले और दूसरे समूह द्वारा एकत्र की गई जानकारियों के आधार पर एक प्रतिवेदन तैयार करें और उसे कक्षा में प्रस्तुत करें। यदि समूह को कोई जानकारी समझ में नहीं आ रही है तो वे जानकारी जुटाने वाले समूह से बात करें।

उन्हें यह भी बताया गया कि प्रतिवेदन तैयार करने में शिक्षक उनकी मदद करेंगे।

एक सप्ताह में गोपाल की दूध डेयरी और आसपास के साँची मिल्क पार्लर की जानकारी इकट्ठा की गई। इस आधार पर रिपोर्ट भी बनी। उसे बनाने में हमने बच्चों की मदद की। कक्षा में रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

सीखने के मौक़े...

इस पूरी प्रक्रिया में बच्चों ने जो कुछ भी किया और सीखा, उसे सामाजिक विज्ञान शिक्षण के फ्रेम में हम इस तरह देख सकते हैं : अवलोकन, प्रश्न निर्माण, साक्षात्कार और बातचीत, विभिन्न तरीक़ों या स्रोतों से जानकारी एकत्र करना, सारणी बनाना, आँकड़े पढ़ना और उनका अर्थ बनाना, और रिपोर्ट तैयार करना व प्रस्तुत करना। इसके अलावा, समूह में काम करना, अपने आसपास चल रहे एक आजीविका प्रकल्प को जानना, उससे अपना जुड़ाव देख पाना, आदि भी बच्चे कर पाए।

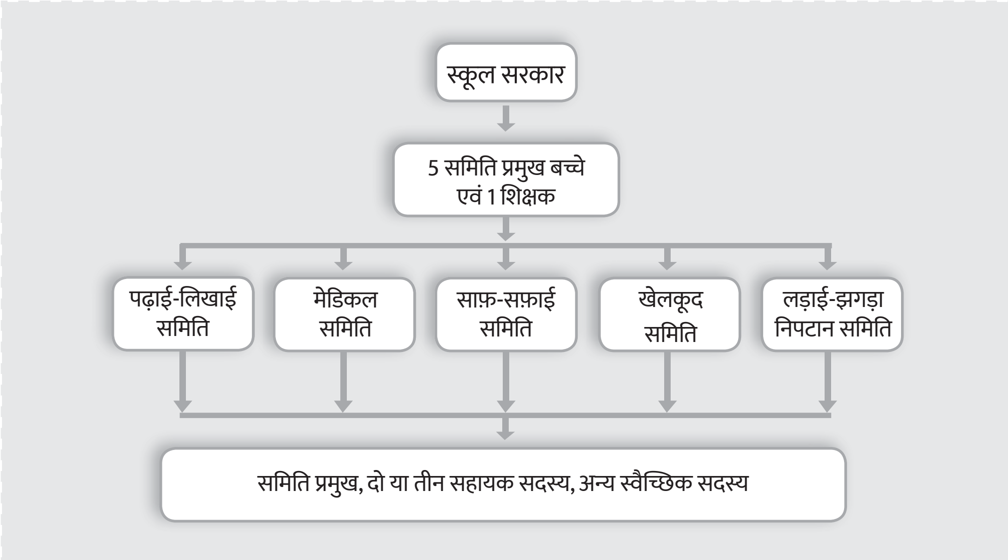
जो अतिरिक्त बातें बच्चों को मालूम हुईं, उनका ज़िक्र करना यहाँ ज़रूरी लगता है। एक बात यह कि, गोपाल के दादा-दादी रायसेन ज़िले के एक गाँव से पाँच साल पहले यहाँ आए थे। वहाँ उनकी थोड़ी-बहुत खेती रही है। वे यादव समाज से हैं और वहाँ कई पीढ़ियों से मवेशी पालते और दूध बेचते रहे हैं। ज़मीनी विवाद और पारिवारिक झगड़ों के चलते, वे कुछ मवेशी लेकर शहर आ गए और यहाँ बस्ती के पास ख़ाली ज़मीन पर झोपड़ी बनाकर डेयरी का काम शुरू किया। यह काम शुरू करना आसान न था। बस्ती के मुखिया को कुछ रुपए देने पड़े। पता चला कि पास की पुलिस चौकी का हवलदार मुफ़्त में रोज़ एक लीटर दूध लेता है। चार-पाँच महीने से धन्धा ठीक नहीं चल रहा और डेयरी के काम में उन्हें कोई ख़ास मुनाफ़ा नहीं हुआ। एक भैंस पिछली बारिश में बीमारी की वजह से चल बसी। बस खाना-ख़र्चा चलता है। पाँच सालों में सिर्फ़ दो भैंस और ख़रीद पाए हैं, यही उनका मुनाफ़ा है। ज़्यादा मवेशियों को रखने की जगह भी नहीं है। एक बार बड़ा-सा बाड़ा बनाया था, पर किसी की शिकायत पर नगर निगम वाले आकर तोड़ गए और पाँच हज़ार जुर्माने का चालान बनाया। ये बातें रिपोर्ट में आईं और सबके सामने साझा हुईं। यह असाइनमेंट बच्चों के लिए नए मसलों को समझने की शुरुआत बना। इन मसलों पर आगे की कक्षाओं में सन्दर्भ आने पर बात हुई।

बच्चों ने बताया कि उन्हें लगता था, डेयरी से बहुत मुनाफ़ा होगा क्योंकि बाज़ार में दूध चालीस-पचास रुपए लीटर मिलता है। पर यहाँ समझ में आया कि डेयरी चलाने में तो बहुत मुश्किलें हैं। मुनाफ़ा भी कुछ ख़ास नहीं है, जबकि काम बहुत करना पड़ता है। समाज और उसके विज्ञान की एक झलक इस बहाने मिली है बच्चों को।

स्कूल सरकार का गठन

उस समय शहर में नगर निगम चुनाव का माहौल था। कक्षा में भी किसी-न-किसी बहाने सरकार पर बात हो ही रही थी। एक कक्षा में बात यहाँ पर आई कि जैसे पूरे देश की एक सरकार है, अपने मध्यप्रदेश की एक सरकार है, वैसे ही शहर की व्यवस्था के लिए भी एक सरकार होती है। यही नगर निगम की सरकार है। गाँव में भी यह सरकार होती है, उसे वहाँ ग्राम पंचायत कहते हैं।

बच्चों का सवाल आया कि हमारे स्कूल की व्यवस्था के लिए भी सरकार बना सकते हैं क्या? हमने कहा, बिलकुल बनाई जा सकती है। वैसे तो एक व्यवस्था है ही जिसमें अलग-अलग विषय के शिक्षक, रसोई की व्यवस्था, खेल की व्यवस्था, साफ़-सफ़ाई सहायक, गार्डन सहायक और एक प्रिंसिपल हैं। मीटिंग होती हैं, योजना बनती है, हर रोज़ का टाइम टेबल तैयार होता है, वग़ैरह-वग़ैरह। यह भी तो सरकार की तरह ही एक व्यवस्था है। सभी शिक्षक और बच्चों की एक मासिक बैठक भी होती है, जिसमें हर तरह के मामले चर्चा में लाए जाते हैं।



लेकिन बच्चे दरअसल चुनाव की बात कर रहे थे। उनका सवाल था कि इसके लिए चुनाव कहाँ हुआ, वोट तो इसमें डाले ही नहीं गए!

इस तरह, एक स्कूल प्रबन्धन समिति नाम की स्कूल सरकार बनाने पर सहमति बनी, जिसमें बच्चे शामिल होंगे। उसके लिए चुनाव कराए जाने की बात तय हुई। धीरे-धीरे बात खुलती गई और व्यवस्था को समझने के लिए अलग-अलग तरह के कार्यक्षेत्र और ज़िम्मेदारियाँ पहचानी गईं। बच्चों के साथ गहन चर्चा के बाद पाँच समितियों के लिए चुनाव होना तय हुआ, जिनके समिति प्रमुखों को मिलाकर स्कूल सरकार बनाई जाने वाली थी।

बच्चों की तरफ़ से ही फ़ाइनल की गई जिन समितियों के प्रमुखों के लिए चुनाव किया जाना था, वो इस प्रकार थीं :

- पढ़ाई-लिखाई समिति;
- खेलकूद समिति;
- मेडिकल समिति;
- लड़ाई-झगड़ा निपटान समिति; और
- साफ़-सफ़ाई व्यवस्था समिति।

एक शिक्षक को बाक़ायदा चुनाव प्रभारी बनाया गया। बच्चों ने समितियों की ज़िम्मेदारी और काम के प्रति अपने रुझान के हिसाब से अपने नाम प्रस्तावित किए। इसके लिए विधिवत नामांकन फ़ॉर्म भरे गए।

तीन समितियों के लिए पाँच से ज़्यादा नामांकन आए। बाक़ी दो समितियों के लिए दो-दो नामांकन आए। इसके अलावा, यह तय हुआ कि समिति में प्रमुखों के अलावा काम में सहयोग के लिए कम-से-कम तीन और ज़्यादा-से-ज़्यादा पाँच सदस्य और शामिल होने चाहिए। इसके लिए लोग स्वेच्छा से अपने नाम दे सकेंगे।

बाक़ायदा मतदान की तारीख़ तय की गई। उम्मीदवारों ने स्कूल में अपने प्रचार के लिए रंग-बिरंगे पोस्टर बनाए। समिति का प्रमुख चुने जाने पर वे क्या-क्या नए काम करेंगे, इन्हें लेकर उनकी क्या योजना और दृष्टि है, इनपर उन्होंने सुबह की संगीत सभा में सबके सामने भाषण दिए। एक काग़ज़ पर लिखकर एक घोषणा-पत्र भी तैयार किया।

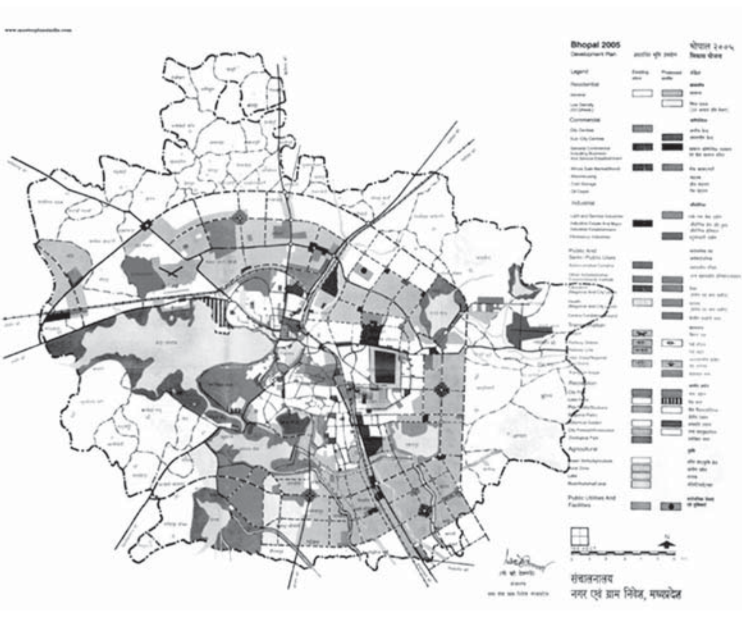
हमने कंप्यूटर से प्रिंट निकालकर मतपत्र बनाए। पतंग, चिड़िया, बॉल, पेंसिल और कप, पाँच उम्मीदवारों को ये पाँच अलग-अलग चुनाव

चिह्न वितरित किए गए। मतपत्र में समिति का नाम, समिति प्रमुख पद के लिए उम्मीदवार का नाम, उसका चुनाव चिह्न और फिर उसके आगे ख़ाली जगह छोड़ी गई, जहाँ मुहर लगानी थी। चित्रकारी वाली किट में एक छोटा स्टैम्प था, जिसपर हार्ट बना हुआ था। इंक पैड और इस स्टैम्प को चुनाव चिह्न पर मुहर लगाने के लिए इस्तेमाल किया गया।

मतदान के बाद मतपत्रों की गिनती करके चुनाव के नतीजे तैयार किए गए और फिर चुने गए समिति प्रमुखों के नाम की घोषणा की गई। पाँचों समिति प्रमुखों को बुलाकर निर्वाचन का प्रमाण-पत्र दिया गया। इन पाँच समिति प्रमुखों को मिलाकर स्कूल प्रबन्धन समिति बनाई गई, जिसमें मैं एक अतिरिक्त सदस्य के रूप में नामांकित किया गया। इस तरह छह सदस्यीय स्कूल सरकार बनी।

सीखने के मौक़े...

इस पूरी प्रक्रिया में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें सामने आईं, जिनका सामाजिक विज्ञान शिक्षण के सन्दर्भ में अतिरिक्त महत्त्व है। बच्चों को लगा था कि कक्षा 1 से 5 के छोटे बच्चों को इसमें शामिल नहीं किया जाएगा। लेकिन यह तय हुआ कि इस स्कूल से जुड़े हर व्यक्ति को इस चुनाव में हिस्सा लेने का अधिकार है। उन्हें भी पूरी प्रक्रिया के बारे में बताया गया। इसी तरह, साफ़-सफ़ाई सहायक विनोद, छोटे बच्चों की देखरेख करने वाली सहायिका तारा और खाना पकाने वाली रामरती दीदी को भी वोट देने के लिए बुलाया गया। शिक्षकों ने भी बराबरी से वोट डाला और सबके वोटों की गिनती एक पूर्ण वोट मानकर की गई।



अलग-अलग समितियों की क्या ज़िम्मेदारी होगी, यह बच्चों ने समूह चर्चा के माध्यम से तय किया। इस तरह सरकार के अलग-अलग विभाग व मंत्रालयों की व्यवस्था की और ज़िम्मेदारियों के बँटवारे की एक आधारभूत समझ बनी। सभी के वोट का बराबर मोल है। बच्चों ने भी वोट डाले जाने, नेताजी के उनके घर पर आने और वोट माँगने, भाषण देने और घर-घर परचे बाँटे जाने के अपने अनुभवों को इस प्रक्रिया से जोड़कर देखा।

बच्चों ने स्कूल सरकार गठन के माध्यम से लोकतंत्र और चुनाव का एक पाठ प्रायोगिक ढंग से सीखा।

एक नहर के बहाने

स्कूल के नज़दीक ही एक सीज़नल नहर बहती थी। कई बार भाषा की आउटडोर क्लास के लिए मैं बच्चों को लेकर पास के खुले मैदान या पहाड़ी पर चला जाता था। कई बार दोपहर

का खाना हमने वहीं खाया और लौटते समय काग़ज़ की नावें भी उस नहर में तैराईं।

एक कक्षा में हमने नहर के बारे में और जानने की योजना बनाई। दरअसल, खेती, सिंचाई, शहरी-ग्रामीण आजीविका, प्राकृतिक संसाधन, आदि टॉपिक हमारे पास थे। नहर का छोर पकड़कर हम उसके दोनों तरफ़ कोई आधा किलोमीटर गए और हमने देखा कई-कई जगह नहर से पम्प लगाकर दूर खेतों में पानी ले जाया जा रहा था। एक जगह नहर दो शाखाओं में बँट गई थी। कुछ जगह लोग नहा भी रहे थे। बाबा नगर के पास तो पूरा धोबी घाट ही लगा हुआ था।

स्कूल लौटकर हमारे पास जानने के लिए कुछ प्रश्न इस प्रकार थे :

- नहर कहाँ से निकलती है?
- नहर कहाँ-कहाँ जाती है? नहर की शाखाएँ कहाँ-कहाँ गई हैं? (उसका नक़्शा बनाना)।
- नहर से सिंचाई के लिए पानी लेना मुफ़्त है या कुछ शुल्क देना पड़ता है?
- नहर बनवाना और उसकी देखरेख करना किसकी ज़िम्मेदारी है?
- नहर किस-किस सीजन में चलती है?
- नहर कौन चलाता और बन्द करता है? नहर कहाँ से चलती और बन्द होती है?

हमने बच्चों को ज़िम्मेदारी दी कि वे पता लगाएँ कि ये नहर कहाँ-कहाँ गई है। इसके लिए सब अपने-अपने घरों में बात करें। इसके आधार पर हम इसका नक़्शा बनाएँगे। काम शुरू हुआ। एक रोज़ मैं कक्षा में भोपाल नगर निगम का नक़्शा लेकर गया जिसमें नहर भी बताई गई थी। हमने उसकी भी मदद ली।

हमने देखा कि हमारे स्कूल के नज़दीक वाली नहर दिसम्बर से शुरू होकर फरवरी तक चलती थी और मार्च में बन्द हो जाती थी। जून आते-आते तक वह पूरी तरह सूख जाती थी। जुलाई से बारिश शुरू होने पर यह फिर चलती थी और सितम्बर में उसमें थोड़ा पानी रहता था, पर तेज़ नहीं चलती थी। दिसम्बर से यह फिर तेज़ चलना शुरू हो जाती थी। नहर का यह चक्र जानना हमारे लिए इन्ट्रेस्टिंग था।

बच्चों की लाई हुई जानकारी के अनुसार, अक्टूबर-नवम्बर में गेहूँ की बुवाई होती थी। जब नवम्बर-दिसम्बर तक इसमें पौधे आ जाते हैं, तब दिसम्बर में नहर चलना शुरू होती थी। और खेतों को पानी मिलने लगता था। फरवरी में नहर बन्द हो जाती थी। फ़सल पक कर तैयार होती और मार्च में गेहूँ काट लिया जाता था। मानसून वाली फ़सल मक्का तो जुलाई, अगस्त, सितम्बर की बारिश के दम पर ही हो जाती थी। उस दौरान नहर नहीं चलती थी। तो नहर का चक्र फ़सल के चक्र से जुड़ा हुआ समझ में आया।



फ़ोटो : अनिल सिंह

मार्च में होली के समय जब थोड़ी गर्मी भी होती, हम यही सोचते कि नहर चलती तो एक रोज़ बच्चों को लेकर इसी में नहाने का प्लान करते। पर वह तो फरवरी में ही बन्द हो जाती और फरवरी तक थोड़ी ठण्ड बची रहती थी।

बच्चों की लाई जानकारी के अनुसार, एक तरफ़ तो ये कलियासोत बाँध से निकलकर शाहपुरा झील के बैक वाटर से मिलती हुई बाबा नगर, बावड़िया कला, सलैया होते हुए मिसरोद गाँव तक जाती थी। वहीं दूसरी तरफ़, यह कोलार की दिशा में बंजारी, हिनौतिया, गेहूँखेड़ा से लेकर कालापानी गाँव तक फैली थी।

सिंचाई विभाग के पास इसकी देखरेख और संचालन की ज़िम्मेदारी थी। कलियासोत बाँध पर एक गेट था जहाँ से इस नहर में पानी खोला जाता था। वहाँ के लिए एक कर्मचारी नियुक्त था। खेत के लिए नहर से पानी लेने पर कोई शुल्क नहीं था। किसान जो सालाना राजस्व कर जमा करते थे, उसी में सिंचाई का शुल्क भी शामिल था। बच्चों के लिए यह पूरी जानकारी बड़ी मज़ेदार थी।

सीखने के मौक़े...

सामाजिक विज्ञान शिक्षण की दृष्टि से इस काम के चलते आसपास की जानकारी होना, उसका अपने रोज़मर्रा के जीवन से सम्बन्ध देख पाना, अवलोकन, पूछताछ, दस्तावेज़, आदि के माध्यम से जानकारी इकट्ठी करना, नक़्शा बनाना, जानकारियों का सत्यापन करना जैसी कुछ चीज़ें, अपने प्रारम्भिक रूप में ही सही, हो पाईं।

बच्चों का सवाल था कि अभी तो कॉलोनियों के बीच-बीच में और शहर के किनारे बाहरी इलाक़ों में खेत बचे हुए हैं। लेकिन जब धीरे-धीरे सभी जगह घर बन जाएँगे और खेत ख़त्म हो जाएँगे, तब क्या ये नहर बन्द कर दी जाएगी? यह प्रश्न एक नए मसले की तरफ़ इशारा करता था जिसपर बाद की कक्षाओं में बात किया जाना तय हुआ।



फ़ोटो : अनिल सिंह

इतिहास के आईने में...

भोपाल एक ऐतिहासिक शहर है। वैसे हर इलाक़े का अपना एक स्थानीय इतिहास होता ही है। पिछले सौ सालों के बारे में तो लोग मौखिक ही जानते और बताते हुए मिल जाएँगे।

हमने आदि-मानव, हड़प्पा संस्कृति, राजा-महाराजाओं के समय, आदि के बारे में पढ़ा और बातें कीं। हमें लगा कि कुछ चीज़ें तो देखी भी जा सकती हैं। हम भीमबेटका के शैलचित्र देखने गए। मानव कभी जंगल में, गुफाओं में रहता था। उन गुफाओं की दीवारों पर बने चित्रों में बच्चों ने शिकार करने के दृश्य देखे, जो हज़ारों साल पहले के सच्चे प्रमाण थे।

भोपाल इतिहास के अध्येता और हेरिटेज वॉक के गाइड, सिकंदर मलिक, की मदद से बच्चों के साथ हमने रानी कमलापति महल, गौहर महल, ताजुल मसाजिद, सदर मंज़िल देखीं। गोल महल के बग़ीचे में बैठकर दोपहर का खाना खाया और वहाँ का म्यूज़ियम देखा। यहाँ भोपाल रियासत में तीन पीढ़ियों तक बेगमों का शासन रहा। किताबों में लिखा हुआ इतिहास इमारतों, मूर्तियों, तालाबों, तस्वीरों और संग्रहालयों में रखी प्राचीन पोशाकों, हथियारों, फ़र्नीचरों, बर्तनों और सिक्कों के रूप में हमारे सामने था।

सीखने के मौक़े...

इतिहास किताबों से पढ़ा और पढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा, उसकी झलक देखी जा सकती है और उसे इस तरह समझा जा सकता है। पुरानी इमारतों और संग्रहालय की गैलरियों में समय का एक क्रम दिख रहा था, सिर्फ़ जानकारी भर नहीं थी अब ये। बच्चों ने भोपाल के इतिहास पर अपनी-अपनी अकार्डियन बुक तैयार की जिसमें तस्वीरों के साथ उन्होंने काल क्रम के अनुसार पूरा विवरण लिखा। दहलीज़ पारकर सामाजिक विज्ञान का संसार और फैल गया था। सामाजिक विज्ञान शिक्षण के लिए हमारे पास ऐसे अनेक तरीक़े हैं। हमें उनके मौक़े बनाने हैं। ये सिर्फ़ चार उदाहरण भर हैं। आप हर रोज़ कुछ नया सोच सकते हैं और योजना के साथ बच्चों को उसमें सहभागी बनाकर उनके सीखने को मज़ेदार, प्रत्यक्ष और अर्थपूर्ण बना सकते हैं।

अनिल सिंह पिछले 20 बरसों से भी अधिक समय से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। गए 15 सालों से प्राथमिक शिक्षा ही उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र है। सात सालों तक भोपाल में वैकल्पिक स्कूल के मॉडेल आनन्द निकेतन से जुड़े रहे हैं और वहाँ भाषा व सामाजिक विज्ञान शिक्षण का काम किया। वर्तमान में पराग के लाइब्रेरी एजुकेटर कोर्स में बतौर फ़ैकल्टी जुड़े हुए हैं।

सम्पर्क : bihuanandanil@gmail.com

बच्चों ने बनाया अपनी कक्षा के संविधान का संकल्प प्रस्ताव

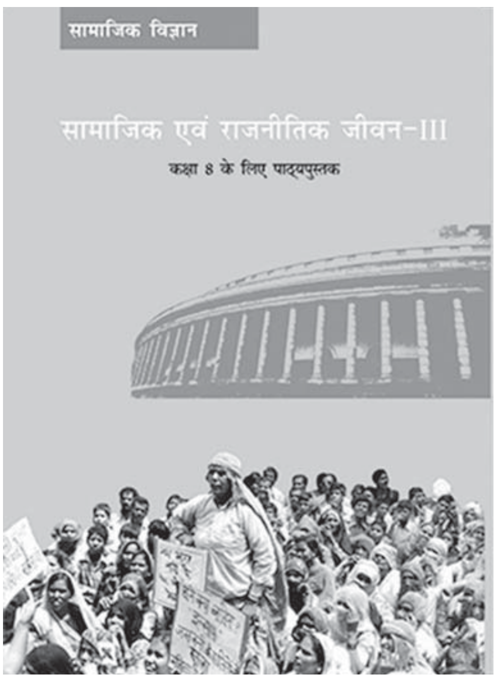
केवल आनन्द कांडपाल

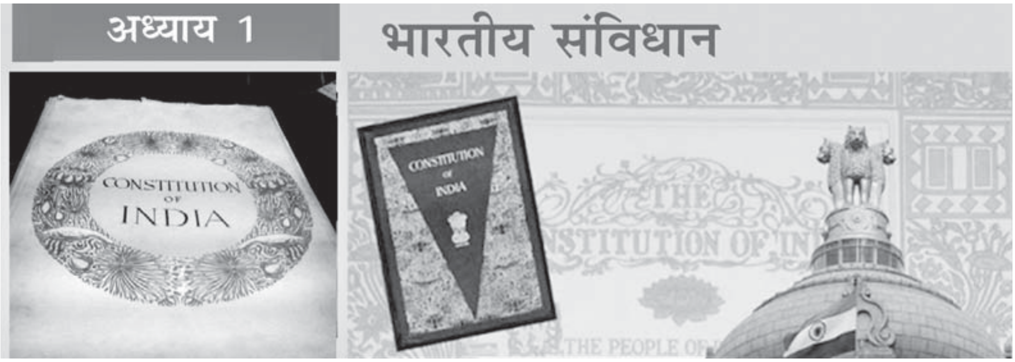
सामाजिक विज्ञान में कई अवधारणाएँ जटिल और अमूर्त होती हैं, जैसे– भारत का संविधान। यह लेख इस सवाल का जवाब ढूँढ़ने की कोशिश करता है कि इन अवधारणाओं से बच्चों का परिचय कैसे कराया जाए। लेख में चार दिनों में फैली गतिविधि के सहारे कक्षा 8 के बच्चे ठोस उदाहरण के ज़रिए संविधान और क़ानून जैसी अवधारणाओं को समझते हैं, उसपर बात करते हैं और साझा प्रयासों से कक्षा के लिए एक संकल्प तैयार करने की कोशिश करते हैं। –सं.

सामाजिक अध्ययन में अवधारणाएँ व्यापक और अमूर्त होती हैं। बच्चों के लिए उनका सन्दर्भ व आशय समझना मुश्किल होता है। राष्ट्र का संविधान एक ऐसी ही अवधारणा है। मैंने कक्षा 8 के बच्चों के साथ संविधान की समझ पर कार्य किया। यह लेख उसी अनुभव का नतीजा है। इस कक्षा में 8 बालक और 10 बालिकाएँ थीं। कक्षा 8 की सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक की पहली इकाई 'भारतीय संविधान और धर्मनिरपेक्षता', का पहला अध्याय हमें पढ़ना था– 'भारतीय संविधान'।

यह अध्याय इस प्रश्न से शुरू होता है कि 'किसी देश को संविधान की ज़रूरत क्यों पड़ती है?' शुरुआती पैराग्राफ़ में संविधान की सरल परिभाषा दी गई है, जिसके अनुसार, "संविधान नियमों का एक ऐसा समूह होता है जिसको एक देश के सभी लोग अपने देश को चलाने की पद्धति के रूप में अपना सकते हैं। इसके ज़रिए वे न केवल यह तय करते हैं कि सरकार किस तरह की होगी, बल्कि उन आदर्शों पर भी एक साझी समझ विकसित करते हैं जिनकी हमेशा पूरे देश में रक्षा की जानी चाहिए।" इस बात पर बच्चों से चर्चा की गई। संविधान की यथासम्भव सरल व्याख्या होने के बावजूद, अवधारणा की अमूर्तता के कारण बच्चे इस बात को ठीक-ठीक पकड़ने में सफल नहीं हो पा रहे थे।

इस पाठ के एक अन्य अनुच्छेद में पड़ोसी देश नेपाल के दो अलग-अलग संविधानों, यथा– वर्ष 1990 के राजतंत्र के और 2006 के लोकतंत्र





के संविधान, के बारे में चर्चा है। इस घटनाक्रम को बॉक्स में भी दिया गया है। इसपर भी ख़ूब बातचीत हुई, पर बच्चे संविधान की अवधारणा को समझने में कठिनाई महसूस कर रहे थे। कक्षा सम्पन्न हो गई, लेकिन समझ नहीं आया कि संविधान का मूल भाव पकड़ने में बच्चों की मदद कैसे करें। निरन्तर यह उथल-पुथल चल रही थी कि क्या किया जाना चाहिए, और कोई ठीक रास्ता सूझ नहीं रहा था। मैं अच्छी तरह से समझ रहा था कि केवल पुस्तक का पाठ पढ़ देने या पढ़ा देने भर से बच्चे संविधान की अवधारणा और ज़रूरत नहीं समझ पाएँगे। बहुत देर तक सोच-विचार करने के बाद तय किया कि इसके लिए बच्चों को मूर्त अनुभव देने होंगे, पर यह स्पष्ट नहीं था कि यह होगा कैसे? ईमानदारी से कहूँ तो इस बारे में मेरे दिमाग़ में कोई रूपरेखा भी नहीं थी, लेकिन इस बात का विश्वास था कि बच्चों से लगातार बातचीत एवं चर्चा से कोई रास्ता निकलेगा ज़रूर।

अगले दिन दूसरे अनुच्छेद पर चर्चा शुरू की। यह संविधान के दूसरे मुख्य उद्देश्य 'देश की राजनीतिक व्यवस्था तय करना' पर है। इसके ठीक अगले पैराग्राफ़ में लोकतंत्र को समझाने की कोशिश की गई है, जिसका मन्तव्य सम्भवतः इस बात को स्थापित करना है कि लोकतांत्रिक समाज में निर्णय प्रक्रिया के नियम तय करने के लिए संविधान बहुत ज़रूरी है। इसके बाद पाठ में दिए गए चित्रकथा-पट्ट में कक्षा मॉनीटर द्वारा अपनी सत्ता का दुरुपयोग करते हुए किसी निर्दोष बालक को अध्यापिका द्वारा दण्ड दिलवाने का विवरण है। इसको पढ़ने में बच्चों ने बहुत रुचि दिखाई। एक बच्ची ने कहा, "कभी-कभी हमारी कक्षा का मॉनीटर भी तो यही करता है। जो बच्चा चुपचाप बैठा है उसकी शिकायत गुरुजी से कर देता है, और अपने दोस्तों की कोई शिकायत नहीं करता चाहे वो कितना भी शोरगुल क्यों न करें।" बच्ची की बात को आगे बढ़ाते हुए उचित दिशा में ले जाना ज़रूरी था। अतः बच्ची से पूछा, "ऐसा क्यों होता है?" बच्ची ने तो इसका कोई जवाब नहीं दिया, लेकिन एक बच्चा बोला, "अध्यापक को केवल मॉनीटर की ही बात नहीं सुननी चाहिए। जिस बच्चे की शिकायत की जा रही है, उसकी बात भी तो सुननी चाहिए।" मैंने कहा, "बात तो आपकी एकदम ठीक है परन्तु यह होगा कैसे?" बच्चों की आपसी चर्चा के लगभग 10 मिनट बाद एक अन्य बच्चा बोला, "सर, हमें इसके लिए नियम बनाने होंगे।" चर्चा सही दिशा में जा रही थी। मैंने पूरी कक्षा को सम्बोधित करते हुए पूछा, "नियम बनाने क्यों ज़रूरी हैं, नियम बनाने से क्या बदलाव आएगा?" एक बच्ची बोली, "मॉनीटर यदि ठीक ढंग से काम नहीं करता है, तो उसे हटाने का नियम होना चाहिए।" एक अन्य बच्चे ने कहा, "कब हटाया जाना है, कैसे हटाया जाना है, यह तय होना चाहिए।" एक अन्य बच्ची बोली, "ऐसे तो हमें बहुत-से नियम बनाने होंगे। एक यही बात थोड़ी होती है। और भी बहुत-सी बातें होती हैं।" अगले दिन बातचीत यहीं से आगे बढ़ाने की बात तय हुई। बच्चों को इस बारे में अपने दोस्तों से और अपने घर पर भी चर्चा करने के लिए कहा गया।

अगले दिन कक्षा-कक्ष में कुछ अधिक गहमा-गहमी दिखी। ऐसा लगा, मानो बच्चों के पास कहने के लिए बहुत कुछ है। बातचीत आगे बढ़ी तो बच्चों ने बताया कि वे कहाँ-कहाँ ग़लतियाँ करते हैं, कब-कब बच जाते हैं, और यह भी कि ऐसा क्यों होता है? मुझे लगा कि इसकी तह तक पहुँचने की ज़रूरत है, तभी नियमों के बनाने और उनको लिखने की ज़रूरत स्थापित हो पाएगी। मैंने बच्चों को पुनः पिछले दिन के उसी बिन्दु की याद दिलाते हुए आगे की बातचीत के लिए आमंत्रित किया। मैंने सवाल रखा, "आप अपने लिए किस तरह की कक्षा चाहते हैं?" बच्चों के बहुत-से जवाब आए। मसलन,

- नियमों का ठीक तरह से पालन हो;
- हमें पढ़ने में मज़ा आए;
- सबको अपनी बात कहने की आज़ादी हो;
- सभी को सीखने के बराबर मौक़े मिलें;
- कक्षा में कोई किसी का मज़ाक़ न उड़ाए;
- हमारी कक्षा विद्यालय की सबसे अच्छी कक्षा के रूप में जानी जाए;
- जिसको जो विषय अच्छा लगे, उसे पढ़ने के मौक़े मिलें;
- कक्षा में हम एक-दूसरे की मदद करें;
- कोई नियम का पालन नहीं कर रहा है तो उसको नियम पालन के लिए मजबूर कर सकें; आदि।

हस्तक्षेप करने का यह उपयुक्त अवसर था। मैंने पूछा, "इस तरह की कक्षा हो जाए, इसके लिए क्या किया जाना चाहिए?" एक बच्ची बोली, "जिस तरह की कक्षा होनी चाहिए, हम उसकी बात कर रहे हैं। पहले वे बातें तो तय कर लें, नियम तो बाद में बनाते रहेंगे।" मुझे लगा कि यह बात संविधान की मूल अवधारणा के बिलकुल क़रीब पहुँच रही है। अतः इस उपयुक्त अवसर को एकदम लपकते हुए मैंने सभी बच्चों के सामने एक चुनौती रखी, "जिस तरह की कक्षा हम चाहते हैं, क्या आप उसके महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं की सूची बना सकते हैं? और इन बिन्दुओं पर कक्षा के सभी बच्चों की सहमति होनी चाहिए।" लगभग सभी बच्चे एक स्वर में बोले, "हाँ, हम कर सकते हैं।" इतने में एक बच्चे ने अचानक पूछा, "तो क्या यह हमारी कक्षा का संविधान होगा?" यह कहना मुश्किल है कि वह संविधान की अवधारणा समझने के क़रीब था या नहीं, परन्तु उसका यह कथन महत्त्वपूर्ण प्रगति दिखा रहा था। मैंने कक्षा को कहा, "यह आपकी कक्षा का संविधान नहीं है, वरन् इसका सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। इसके आधार पर ही आप अपनी कक्षा के लिए नियम बनाएँगे। इसे कक्षा के संविधान की प्रस्तावना / संकल्प कह सकते हैं। इसपर हम कल

किसी देश को संविधान की ज़रूरत क्यों पड़ती है?



चर्चा करेंगे। मैंने बच्चों से अपनी पाठ्यपुस्तक के आमुख व प्राक्कथन को पढ़कर आने को कहा। आज के अनुभव से मैंने महसूस किया कि कल की कक्षा के लिए शिक्षण लक्ष्य निर्धारित करने में दो काम ज़रूर होने हैं। पहला, कक्षा के संविधान की प्रस्तावना या संकल्प तैयार करना; और दूसरा, इस प्रस्तावना या संकल्प की अहमियत और इसके अनुरूप नियम बनाने की प्रक्रिया पर चर्चा करना।

मेरी अगले दिन की शिक्षण योजना बहुत हद तक स्पष्ट थी। आज बच्चे दो समूहों में चर्चा करके प्रस्तुतिकरण करने वाले थे कि उनके मस्तिष्क में अपनी कक्षा की किस तरह की कल्पना है। इससे पहले, यह स्पष्टता ज़रूरी थी कि वे अपने संकल्प / प्रस्ताव को किस रूप में तैयार करेंगे। मैं स्वयं एक चार्ट पर भारतीय संविधान की प्रस्तावना यह मानकर लिख लाया था कि आज इसकी ज़रूरत होगी। कक्षा आरम्भ होते ही बच्चों से बातचीत शुरू हो गई। यही सही मौक़ा था कि मैं भारतीय संविधान की प्रस्तावना का पहले से ही तैयार चार्ट बच्चों के बीच रख दूँ। इस चार्ट को पढ़ने के बाद बच्चों में उत्सुकता के साथ असमंजस साफ़ नज़र आ रहा था। हमारे संविधान की प्रस्तावना में उन ख़ास बातों का ज़िक्र है, जिस प्रकार के समाज की परिकल्पना हमारा संविधान करता है। यह अन्दाज़ा देता है कि हमारे संविधान द्वारा परिकल्पित समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें किन बातों पर ध्यान देना होगा, किस दिशा में आगे बढ़ना होगा, और इसके लिए हमारी शासन प्रणाली का स्वरूप क्या होगा। कुल मिलाकर, यह संविधान के निचोड़ को सामने रखता है। मैंने बच्चों से पूछा, "क्या वे इस तरह का संकल्प अपनी कक्षा के लिए तैयार कर सकते हैं?" संविधान की प्रस्तावना का प्रत्येक शब्द गहन रूप से अमूर्तता लिए हुए है, अतः समानता, स्वतंत्रता, न्याय, आदि जैसे कुछ शब्दों पर चर्चा की गई। इन बातों को संविधान में किस तरह से सुनिश्चित किया गया है, इसपर बातचीत हुई। बच्चों को यह भी बताया गया कि हमारे संविधान की प्रस्तावना, संविधान बनाने के साथ-साथ तैयार की गई थी, जबकि हम अपनी कक्षा के संविधान की प्रस्तावना या संकल्प पहले बना रहे हैं। बाद में इसके विस्तृत नियम बनाएँगे। बच्चे इस समझ पर पहुँच रहे थे कि जिस तरह के समाज की परिकल्पना हमारा संविधान करता है, उसके प्रमुख बिन्दुओं को संविधान की प्रस्तावना में लिखा गया है। वे समझ रहे थे कि हमने अपनी कक्षा के लिए संविधान नहीं बनाया है। हम अभी इस मुद्दे पर काम कर रहे हैं कि 'हम अपनी कक्षा को किस रूप में देखना चाहते हैं'। इसलिए हम जो दस्तावेज़ तैयार करेंगे, उसे 'संकल्प' कहेंगे। अतः हम दोनों समूहों में चर्चा करने के बाद सर्व-सम्मति से, दोनों समूहों की बातों को शामिल करते हुए, अपनी कक्षा के संविधान का संकल्प तैयार करेंगे।

बच्चों को दो समूहों में बाँटकर आवश्यक लेखन सामग्री (चार्ट, स्केच पेन, पटरी, आदि) उपलब्ध करा दी गई। बच्चों के सामने टास्क स्पष्ट था। सामने भारतीय संविधान की प्रस्तावना

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथ-निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय**,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता**,

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब मे व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली **बंधुता** बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

का चार्ट टँगा था, क्योंकि इसका सन्दर्भ लेने की ज़रूरत पढ़ सकती थी। दोनों समूहों के प्रस्तुतिकरण का ब्योरा इस प्रकार है :

पहला समूह

- हमारी कक्षा विद्यालय की सबसे अच्छी कक्षा हो।
- हमें पढ़ने में मज़ा आए।
- जिसको जो विषय अच्छा लगे, उसे पढ़ने का मौक़ा मिले।
- कोई नियम का पालन नहीं कर रहा है तो उसको नियम पालन के लिए मजबूर किया जा सके।
- कक्षा में अध्यापक किसी बच्चे का मज़ाक़ न उड़ाएँ।
- नियम सबके लिए बराबर लागू हों।

दूसरा समूह

- कक्षा के हरेक बच्चे को अपनी बात कहने की आज़ादी हो।
- सभी बच्चों को सीखने के बराबर मौक़े मिलें।
- कक्षा में हम एक दूसरे की मदद करें।
- हमारी कक्षा विद्यालय की सबसे शान्त कक्षा हो।
- हमको कक्षा में किसी प्रकार का भय न हो।
- कक्षा के नियमों का पालन शिक्षक भी करें।
- कक्षा के संविधान की जानकारी सभी को ज़रूर हो।

कक्षा के संविधान के लिए संकल्प की लगभग सभी बातें आ ही चुकी थीं। सुगमकर्ता के रूप में मुझे बच्चों के साथ इसे कक्षा के संविधान की प्रस्तावना / संकल्प के रूप में व्यवस्थित करना था। दोनों समूहों के विचार समाहित करते हुए हमने कक्षा के संविधान के संकल्प को अन्तिम रूप में निम्नवत तैयार किया :

भारतीय संविधान में उल्लिखित मौलिक अधिकारों में से कुछ अधिकार–

1. समानता का अधिकार

कानून की नज़र में सभी लोग समान हैं। इसका मतलब है कि सभी लोगों को देश का कानून बराबर सुरक्षा प्रदान करेगा। इस अधिकार में यह भी कहा गया है कि धर्म, जाति या लिंग के आधार पर किसी भी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता। खेल के मैदान, होटल, दुकान इत्यादि सार्वजनिक स्थानों पर सभी को बराबर पहुँच का अधिकार होगा। रोज़गार के मामले में राज्य किसी के साथ भेदभाव नहीं कर सकता। लेकिन इसके कुछ अपवाद हैं जिनके बारे में इसी किताब में हम आगे पढ़ेंगे। छुआछूत की प्रथा का भी उन्मूलन कर दिया गया है।

2. स्वतंत्रता का अधिकार

इस अधिकार के अंतर्गत अभिव्यक्ति और भाषण की स्वतंत्रता, सभा/संगठन बनाने की स्वतंत्रता, देश के किसी भी भाग में आने-जाने और रहने तथा कोई भी व्यवसाय, पेशा या कारोबार करने का अधिकार शामिल है।

3. शोषण के विरुद्ध अधिकार

संविधान में कहा गया है कि मानव व्यापार, जबरिया श्रम और 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को मज़दूरी पर रखना अपराध है।

4. धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार

सभी नागरिकों को पूरी धार्मिक स्वतंत्रता दी गई है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छा का धर्म अपनाने, उसका प्रचार-प्रसार करने का अधिकार है।

5. सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार

संविधान में कहा गया है कि धार्मिक या भाषाई, सभी अल्पसंख्यक समुदाय अपनी संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए अपने-अपने शैक्षणिक संस्थान खोल सकते हैं।

6. संवैधानिक उपचार का अधिकार

यदि किसी नागरिक को लगता है कि राज्य द्वारा उसके किसी मौलिक अधिकार का उल्लंघन हुआ है तो इस अधिकार का सहारा लेकर वह अदालत में जा सकता है।

"हम, कक्षा 8 के समस्त विद्यार्थी, कक्षा में सीखने को आनन्ददायक बनाने के लिए, जहाँ कक्षा के सभी बच्चों को सीखने के बराबर अवसर मिल सकें, सभी को अपनी बात रखने की पूरी आज़ादी हो, किसी भी बच्चे का मज़ाक़ न उड़ाया जाए, सभी बच्चे साथ-साथ सीखते हुए आगे बढ़ें, हमारी कक्षा विद्यालय की सबसे अच्छी कक्षा के रूप में पहचानी जाए, इस उद्देश्य से, कक्षा 8 का संविधान बनाने का संकल्प लेते हैं और इसे कक्षा के सभी बच्चों पर लागू करने का निर्णय करते हैं।"

यह उल्लेख करना ज़रूरी है कि इस संकल्प को अन्तिम रूप देने से पहले इसके एकाधिक ड्राफ्ट बने, ख़ारिज हुए, और सामने टँगा चार्ट सन्दर्भ बिन्दु बना रहा।

बच्चों द्वारा अपनी कक्षा के संविधान के संकल्प से कुछ महत्त्वपूर्ण बातें स्पष्ट हो रही हैं। मसलन,



संविधान सभा के सदस्यों के बीच एकता की एक ज़बरदस्त भावना थी। भावी संविधान के एक-एक प्रावधान पर जमकर चर्चा हुई और सभी लोग सहमति विकसित करने के बारे में गंभीर थे। उपरोक्त चित्र के मध्य में सरदार वल्लभभाई पटेल दिखाई दे रहे हैं जो संविधान सभा के एक महत्त्वपूर्ण सदस्य थे।

- वे अपनी कक्षा को किस रूप में देखा जाना पसन्द करते हैं?
- कक्षा के लिए संविधान की ज़रूरत क्यों है?
- इसके ख़ास उद्देश्य क्या हैं?
- किस प्रकार की कक्षा की परिकल्पना की गई है?
- कक्षा की प्रक्रिया एवं कक्षा में व्यवहार के क्या मानक होंगे?
- अध्यापक एवं बच्चों का आपसी रिश्ता और व्यवहार किस प्रकार का होना चाहिए?
- बच्चों का आपसी व्यवहार कैसा हो?

कक्षा में बच्चों की गरिमा एवं सम्मान की चिन्ता इसमें झलकती है और साथ-साथ आगे बढ़ने की मंशा भी नज़र आती है।

इस संकल्प को पढ़ते हुए आगे के लिए यह तय किया गया कि अब हमें अपनी कक्षा के संविधान के संकल्प के अनुसार नियम बनाने होंगे। उदाहरणार्थ,

- कक्षा में सीखने के आनन्द के लिए क्या ज़रूरी है? यह कैसे तय होगा कि सीखना आनन्ददायक हो रहा है या नहीं?
- सभी बच्चों को सीखने के बराबर अवसर मिल सकें, इसका क्या मतलब है? ऐसा हो सके, इसके लिए क्या करना ज़रूरी होगा?
- अपनी बात रखने की आज़ादी का क्या मतलब है? यह कैसे सुनिश्चित किया जाएगा?
- बच्चे का मज़ाक़ न उड़ाने का क्या अर्थ है? कौन-कौन सी ऐसी बातें हैं, जो इसमें शामिल होंगी?



के लिए ही बनाया गया है। इसका मतलब यह हुआ कि संविधान की भावना लागू करने के लिए हमें क़ानून बनाने की ज़रूरत होती है।...'' मेरी बात पूरी हो, इससे पहले एक बच्ची बोली, ''उफ़, हमें अभी बहुत काम करने हैं ! संविधान के नियम बनाने हैं, इनको लागू करने के लिए कुछ और नियम-क़ानून बनाने हैं। अभी तो हमने शुरू का ही कुछ काम पूरा किया है।'' यह सुनकर पूरी कक्षा ज़ोर से हँस पड़ी। मैं, इस हँसी में अपनी वजह से शामिल था कि बच्चों ने संविधान की अवधारणा को कुछ हद तक समझने का रास्ता तय कर लिया है। अब यह उनके लिए एकदम अमूर्त नहीं रहा।

- सभी बच्चों का साथ-साथ सीखना और आगे बढ़ना किस तरह से होगा? इसके लिए क्या-क्या किया जाना ज़रूरी होगा?

एक बच्ची अचानक बोली, ''अब हमें कक्षा के लिए क़ानून बनाने होंगे!'' बच्ची की बात से लग रहा था कि संविधान एवं क़ानून के बीच अन्तर करना ज़रूरी है। अतः इस बारे में बात करना ज़रूरी था। एक उदाहरण से मैंने इसे स्पष्ट करने की कोशिश की। मैंने कहा, ''हमारा संविधान देश के नागरिकों में किसी भी आधार पर भेदभाव करने की मनाही करता है। इसका विवरण संविधान के नियम (अनुच्छेद) 14 से 18 तक में दिया गया है। यदि कोई व्यक्ति इन नियमों का उल्लंघन करते हुए जाति के आधार पर कोई भेदभाव, छुआछूत का व्यवहार, आदि करता है तो उसे दण्डित करने के लिए अलग से एक क़ानून बनाया गया है। यह क़ानून संविधान की मंशा / उद्‌देश्य को लागू करने

इन चार दिनों की कक्षा के अनुभवों के आलोक में कहा जा सकता है कि संविधान की ज़रूरत क्यों है, दरअसल संविधान है क्या, इसकी मोटा-माटी समझ बच्चों में बनी। संविधान की अवधारणा की अमूर्तता को समझने के लिए बच्चों के साथ काम करने का यह अनुभव मेरे लिए बहुत यादगार है। यह मेरे इस विश्वास को पुख़्ता करता है कि यदि बच्चों की क्षमताओं पर विश्वास किया जाए और धैर्य से काम लिया जाए, तो कोई-न-कोई राह निकल ही आती है। किस राह पर आगे बढ़ना होगा, अव्वल तो कई बार इसके संकेत बच्चे ही दे देते हैं।

डॉ. केवल आनन्द कांडपाल ने तक़रीबन 15 वर्ष वरिष्ठ माध्यमिक में अध्यापन और एक दशक तक ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान में शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में कार्य किया है। आपने पाँच साल राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में प्रधान अध्यापक के रूप में अपनी सेवाएँ दी हैं। वर्तमान में राजकीय इंटरमीडियट कॉलेज में प्रधानाचार्य की भूमिका में कार्यरत हैं। पत्र-पत्रिकाओं में शिक्षा पर लेख लिखते रहते हैं।

सम्पर्क : kandpalkn@rediffmail.com

पढ़ना, अक्षर–मात्रा से आगे...

मीनू पालीवाल

शुरुआती पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया में हमारा बोला और सुना हुआ भाषा का संसार काम आता है। कुछ शब्दों की पहचान के बाद बच्चे भाषा संरचना का यही आधार लेकर अपने पढ़ने का सफ़र शुरू करते हैं। भाषा एक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में हमारे साथ चलती है और बच्चे उसका एक पूरा सन्दर्भ बनाकर पढ़ना सीख रहे होते हैं। ऐसे में शिक्षक की भूमिका एक सहयोगी की है, न कि मूल्यांकनकर्ता की। लेखिका मीनू पालीवाल ने अपने इस आलेख में कक्षा 2 और 3 के बच्चों के साथ कुछ लेखन नमूनों और उनके पढ़ने की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए इस बात का विस्तृत अनुभव प्रस्तुत किया है। -सं.

ठीक से पढ़ो...

देखकर पढ़ो...

अरे 'म' लिखा है, 'ल' क्यों पढ़ रहे हो...

हाथ में आटा लिपट गया... 'लिपट गया' क्यों पढ़ रहे हो, 'चिपक गया' लिखा है...

'आ' और 'ग' को मिलाओ न... दोनों तो पहचान लिए तुमने, अब मिलाकर ही तो बोलना है...

'वीरता' लिखा है, 'वीरत' क्यों पढ़ रहे हो... 'आ' की मात्रा तो तुम जानते हो...

अरे, अक्षर-मात्रा जोड़कर बोलो न...

आज भी कई कक्षा अवलोकनों के दौरान ऐसे अनुभव होते हैं। यही नहीं, आसपास के अभिभावकों को देखती हूँ तो कई अभिभावक भी बच्चों के साथ इसी तर्ज़ पर काम करते हुए मिलते हैं।

मैं 36 वर्ष की हूँ। मेरी माँ जब पढ़ती थीं तब भी अक्षर-मात्रा जोड़कर पढ़ना सिखाया जाता था। जब मैं पढ़ती थी, तब भी वही और आज जब स्कूलों में जाती हूँ तब भी पढ़ना सिखाने का वही तरीक़ा प्रयोग में है। पढ़ना सिखाने की प्रक्रिया का इतने लम्बे समय तक एक-सी बने रहना मुझे एक ढाँचागत समस्या प्रतीत होती है।

इस तरीक़े का आधार है कि हमें बच्चों को सिखाना है। यदि हम अपनी सोच में यह बदलाव लाएँ कि हमें बच्चे की सीखने में मदद करनी है तो हमें कई ऐसी बातें नज़र आएँगी जो सिखाने वाले दृष्टिकोण में नज़र नहीं आतीं। मसलन, पहली कक्षा के बच्चे के साथ हो रही बातचीत को देखें :

'आ' और 'ग' को मिलाओ न... दोनों तो पढ़ लिए तुमने, अब मिलाकर ही तो बोलना है...

बच्चे ने दोनों अक्षर एकदम सही पहचाने, फिर भी वह जोड़कर नहीं बोल पा रहा था। इसका उत्तर यह हो सकता है कि उस प्रक्रिया के दौरान बच्चा इन अक्षरों को जोड़कर अपने लिए कोई सार्थक शब्द नहीं बना पा रहा था। थोड़ी देर बाद, इस बच्चे को जब छोटी-सी मदद दी गई कि इनको जोड़ने से एक ऐसी

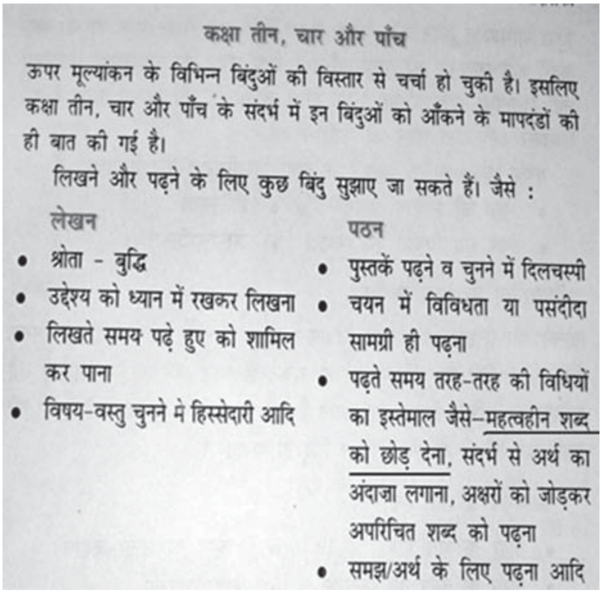
चीज़ का नाम बनता है जो गर्म होती है तो बच्चा तुरन्त बोलता है, 'आग'।

प्राथमिक कक्षाओं के अवलोकनों में मैंने यह भी पाया कि जो बच्चे थोड़ा पढ़ना सीख लेते हैं, माने वे अक्षरों और मात्राओं को काफ़ी हद तक पहचान लेते हैं और शब्दों व वाक्यों के अर्थ भी समझने लगते हैं, ऐसे बच्चे भी पढ़ते वक़्त कई शब्दों को बदल देते हैं या नहीं पढ़ते हैं और छोड़ देते हैं। जैसे– 'पूँछ' को 'पूँच', 'मानी' को 'पानी', 'तार' को 'टार'। इसके बावजूद, बच्चे अर्थ समझ जाते हैं क्योंकि वे पहले पढ़े गए और आगे आने वाले वाक्यों को देखकर अनुमान लगाने लगते हैं। कई बार ऐसा होने पर मैंने बच्चों से पूछा, "क्या यह मानी है?" वे कहते हैं, "नहीं, मैंने पानी ही समझा लेकिन पढ़ने में मानी बोल गया।" मैंने पाया कि वयस्क पाठक भी ऐसा करते हैं, लेकिन क्योंकि वे अकसर मौन वाचन करते हैं तो वे इसे ख़ुद ही ठीक कर लेते हैं।

इसी से सम्बन्धित एक बिन्दु मैं कक्षा 2 की शिक्षिका से साझा कर रही थी। उस समय हमने बच्चों को *बरखा* की किताबें पढ़ने के लिए दी हुई थीं। एक बच्ची ने किताब में एक शब्द पर उँगली रखी और पूछा, "यह क्या लिखा है?" मैडम ने बच्ची को बता दिया और वह अपने स्थान पर चली गई। मैंने मैडम से पूछा, "क्या यह बच्ची, जो किताब वह लेकर आई थी उसे पूरा पढ़ पा रही होगी, क्योंकि उसने केवल एक शब्द पूछा कि यह क्या लिखा है?" उसने मैडम से पूरी कहानी पढ़कर बताने के लिए नहीं कहा। मैडम ने कहा, "नहीं, यह बच्ची उस किताब में और भी बहुत-से शब्द नहीं पढ़ पा रही होगी।" फिर सवाल उठता है कि उस बच्ची ने एक वही शब्द क्यों पूछा कि क्या लिखा है?

शायद इसका जवाब यह हो सकता है कि किसी लिखी हुई बात या कहानी को समझने में हर शब्द एक बराबर ज़रूरी नहीं होता। यह बात एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित शिक्षक सन्दर्शिका *कैसे पढ़ाएँ रिमझिम* में भी पढ़ने को मिलती है।

बच्चों को पढ़ते-पढ़ते पता चल जाता है कि उनके लिए कौन-सा शब्द महत्त्वपूर्ण है और



कक्षा तीन, चार और पाँच

ऊपर मूल्यांकन के विभिन्न बिंदुओं की विस्तार से चर्चा हो चुकी है। इसलिए कक्षा तीन, चार और पाँच के संदर्भ में इन बिंदुओं को आँकने के मापदंडों की ही बात की गई है।

लिखने और पढ़ने के लिए कुछ बिंदु सुझाए जा सकते हैं। जैसे :

लेखन
- श्रोता - बुद्धि
- उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिखना
- लिखते समय पढ़े हुए को शामिल कर पाना
- विषय-वस्तु चुनने मे हिस्सेदारी आदि

पठन
- पुस्तकें पढ़ने व चुनने में दिलचस्पी
- चयन में विविधता या पसंदीदा सामग्री ही पढ़ना
- पढ़ते समय तरह-तरह की विधियों का इस्तेमाल जैसे-महत्वहीन शब्द को छोड़ देना, संदर्भ से अर्थ का अंदाज़ा लगाना, अक्षरों को जोड़कर अपरिचित शब्द को पढ़ना
- समझ/अर्थ के लिए पढ़ना आदि

चित्र 1

इस वजह से वे वही शब्द पूछते हैं। जब हम पढ़ रहे होते हैं तो हम अर्थ पर निगरानी रखते हुए पढ़ते हैं। जैसे– यदि कोई बात हमें तार्किक नहीं लगती तो हम उसे फिर से पढ़ते हैं। बच्चे भी इसी प्रक्रिया के द्वारा यह पता लगा लेते हैं कि कौन-से शब्द अर्थ के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। पर यह सब तभी होता है जब बच्चों को किताबों से जूझने के मौक़े दिए जाएँ और उनसे ढेर सारी बातें की जाएँ।

आइए, मैं अपनी बात को कुछ और उदाहरणों के साथ रखने का प्रयास करती हूँ।

उदाहरण 1

कक्षा 3 में 'प्रतिभा पर्व' के प्रश्नपत्र में यह प्रश्न पूछा गया था : "अपने घर के कार्यों का अवलोकन करिए व कामों की सूची बनाइए।"

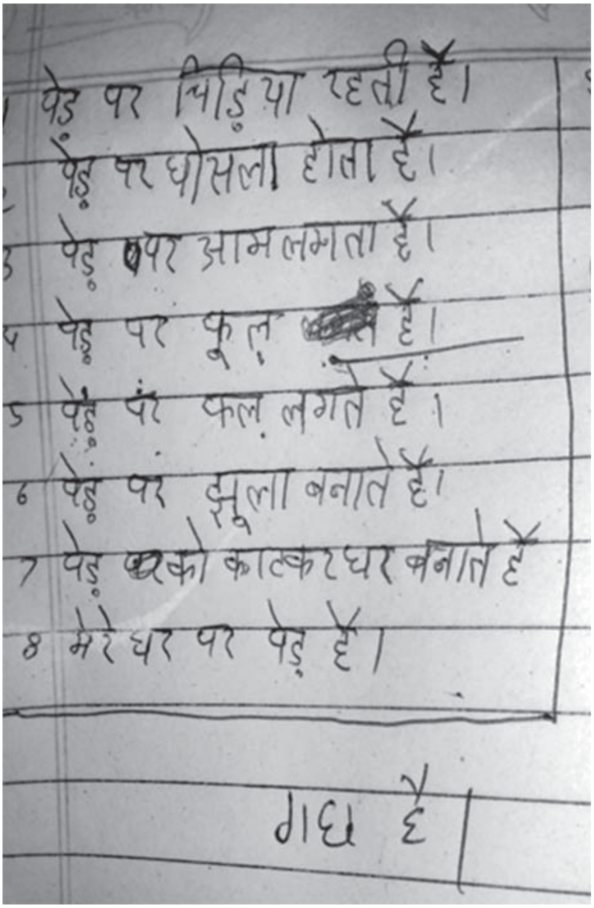
एक बच्चा मेरे पास आया और पूछने लगा, "मैडम, इस प्रश्न में क्या करना है?" मैंने उससे पूछा, "क्या उसे सूची का अर्थ पता है?" वह बोला, "हाँ।" मैंने उससे कहा कि वह अपनी जगह पर जाकर दोबारा उस निर्देश को पढ़े। थोड़ी देर बाद जब मैं उसके पास गई, उसने घर में होने वाले कामों की सूची लिख ली थी। अब ज़रा सोचें, इस वाक्य में कौन-से शब्द अर्थ बनाने के लिए बहुत ज़रूरी हैं– घर, काम, सूची। कोई बच्चा यदि इन तीन शब्दों को पढ़ लेता है तो वह अपने मन से इन तीनों को जोड़कर सही अर्थ तक पहुँच जाएगा।

उदाहरण 2

कक्षा 2 में मैंने बच्चों से पेड़ विषय पर बहुत-सी बातें कीं, फिर बच्चों के बोले हुए कुछ वाक्य बोर्ड पर लिख दिए। इसके बाद एक-एक बच्चे को बुलाकर लकड़ी से पॉइंट करते हुए पढ़वाया।

एक बच्ची 7 वाक्यों में पेड़ को पेड़ पढ़ती रही, लेकिन अन्तिम वाक्य में उसने पढ़ा, "मेरे घर पर गछ है" (छत्तीसगढ़ी में 'पेड़' को 'गछ' कहते हैं)। मुझे भी एहसास हुआ कि मुझे पेड़ की बजाय 'गछ' शब्द ही बोर्ड पर लिखना चाहिए था, क्योंकि बच्चों को पेड़ पढ़ने के कारण अर्थ निर्माण में परेशानी महसूस हो रही होगी।

एक दूसरी बच्ची ने 7वें वाक्य को इस प्रकार पढ़ा, "पेड़ से लकड़ी को काटकर घर बनाते हैं।" ऊपरी तौर पर देखने से लग सकता है कि बच्ची को वाक्य याद है। वह असल में पढ़ नहीं रही है बल्कि उसे याद है। परन्तु फिर यह सवाल होगा कि यह वाक्य उसने 7वें नम्बर पर ही क्यों पढ़ा? इसका एक उत्तर यह हो सकता है कि बच्ची इस पूरे वाक्य में किसी शब्द या शब्दों को सटीकता से पढ़ सकती है, जिस वजह से उसने वाक्य को थोड़ा बदलाव के साथ पढ़ा।

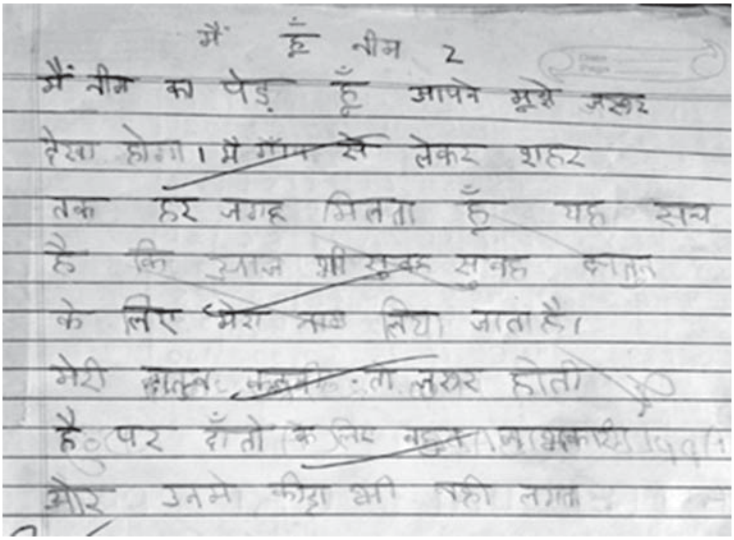


चित्र 2

उदाहरण 3

एक बच्ची किताब से देखकर स्वयं का लिखा हुआ एक पाठ 'मैं हूँ नीम' पढ़ रही थी। टेक्स्ट के लिए देखें पेज़ 30 पर चित्र 3।

मैंने बच्ची से पूरा अनुच्छेद पढ़ने के बाद पूछा कि उसने क्या पढ़ा। उसने बताया, "शहर में नीम को बेचते हैं। नीम से दाँत में कीड़ा नहीं लगता।" आप सोच रहे होंगे कि शहर में नीम को बेचने की बात तो लिखी ही नहीं है। मेरे अनुमान से लेख की इस पंक्ति, "मैं गाँव से शहर तक हर जगह मिलता हूँ", से उसने यह अर्थ निकाला है। इसमें निश्चित ही बच्ची ने अपने पढ़े हुए को अनुभव से जोड़कर एक सार्थक विचार लाने की कोशिश की है।



चित्र 3

उदाहरण 4

इसी तरह एक बच्चा 'दादाजी और राजू' कहानी पढ़ रहा था। उस बच्चे ने एक पंक्ति, “हाथ पैर मारने लगा”, में 'मारने' को 'मरने' पढ़ लिया। उस बच्चे से पूछा, “क्या पढ़ा?” तो वह बोला, “राजू नदी में डूब रहा था, दादाजी ने उसे बचा लिया।” मैंने बच्चे से दोबारा पढ़ने के लिए कहा। वह “हाथ पैर मारने लगा” में 'मारने' पर रुक गया और पूछने लगा, “मैडम, यह क्या लिखा है?” मैंने कहा, “मारने”, और फिर पूरा वाक्य पढ़ा : “वह पानी में हाथ पैर मारने लगा।” इसके आगे बच्चे को पूरी कहानी पढ़ने दी। अबकी बार उससे पूछा, “बताओ, क्या पढ़ा?” वह बोला, “मैडम, दादाजी राजू को तैरना सिखा रहे हैं।” मैंने पूछा, “क्या राजू तैरना सीख गया?” वह बोला, “हाँ, वह तैरना सीख गया।”

दादा जी और राजू रोज नदी की तरफ जाते थे। एक दिन दादा जी नदी में तैर रहे थे। राजू किनारे पर बैठा था। उसको भी तैरने का मन हुआ। वह नदी में उतर गया। वह पानी में हाथ पैर मारने लगा। दादा जी उसे तैरना सिखाने लगे। राजू को बहुत मजा आया। अब वह रोज तैरने जाता है। कुछ ही दिनों में उसने तैरना सीख लिया।

चित्र 4

उदाहरण 5

दूसरे बच्चे ने 'नदी' को 'नींद' पढ़ लिया। जब इस बच्चे से पूछा, “क्या पढ़ा बताओ?” वह बोला, “राजू को नींद आ गई। वह सपने में दादाजी से तैरना सीख रहा था।”

बेहतर पढ़ पाने वाले बच्चों के अनुभव

इस कहानी को पढ़ने के दौरान बहुत-से बच्चे, जो बेहतर पढ़ लेते हैं, उनके पढ़ने में एक और बात देखने को मिली। “वह नदी में हाथ पैर मारने लगा।” इस वाक्य को पढ़ने के दौरान बहुत-से बच्चों की पढ़ने की रफ़्तार में कमी देखने को मिली। यह शायद इसी बात को इंगित करता है कि बच्चे इस वाक्य का अर्थ नहीं समझ पा रहे थे। एक बच्ची जिसने काफ़ी प्रवाह और हाव-भाव से यह कहानी पढ़ी, उससे मैंने कहानी में 'हाथ पैर मारना' लिखा हुआ पॉइंट करते हुए पूछा, “इसका मतलब क्या होता है?” उसने कहा, “हाथ पैर धोना।” यह मुझे काफ़ी अजीब

बात लगी। मैंने सोचा, यदि इसे ख़ुद तैरना आता होगा तो उससे मैं उसे 'हाथ पैर मारना' के अर्थ तक ले जा पाऊँगी। उस बच्ची से मैंने पूछा, "तुम्हें तैरना आता है।" वह बोली, "नहीं।" हालाँकि, इस बच्ची ने कहानी में क्या हुआ, यह ठीक से बताया।

मैंने यह काम दो स्कूलों में किया। एक वह जहाँ शिक्षिका बच्चों से बहुत बातचीत करती हैं (ब) और दूसरा, जहाँ पर कम बातचीत होती है (अ)। 'हाथ पैर मारना', इस मुहावरे का अर्थ जब (अ) स्कूल में पूछा तो सिर्फ़ एक ही बच्चा थोड़ा सही उत्तर दे पाया, काफ़ी बच्चे तो चुप ही रहे। वहीं (ब) स्कूल में अलग-अलग उत्तर आए जो लगभग सभी सही थे। मसलन, 'पानी उछालने लगा', 'डूबने से बचने के लिए', 'हाथ पैर मारने से तैरने लगते हैं', 'तैरने की कोशिश कर रहा था', आदि।

उदाहरणों पर मेरे विचार

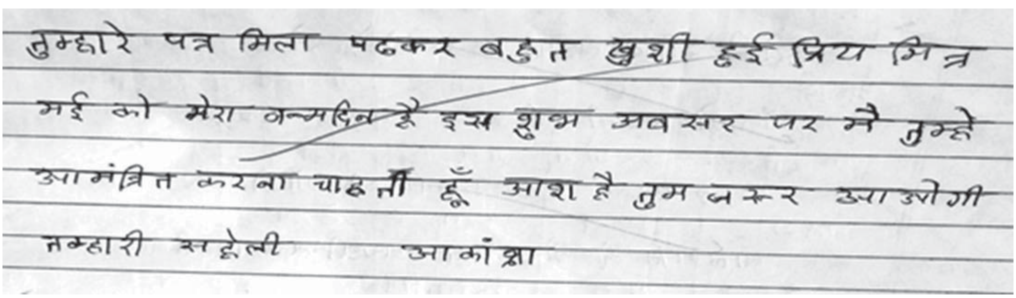
इन उदाहरणों से आप इस बात का अन्दाज़ा लगा पा रहे होंगे कि किसी अनुच्छेद में कौन-से शब्द अर्थ निर्माण के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण होते हैं और उन शब्दों की मदद से पूरा अर्थ बनाने का 'गैप' कैसे पूरा होता है। मसलन, हर शब्द एक अवधारणा होता है। जब बच्चे ने 'नदी' को 'नींद' पढ़ा तब उसने नींद से 'सपना' शब्द जोड़ा और एक सार्थक कहानी बना ली। इसी तरह, 'मारना' को 'मरना' और 'नदी' के साथ 'डूबने' को जोड़कर एक सार्थक कहानी की रचना कर ली।

इन सभी उदाहरणों में बच्चे अर्थ बनाने की प्रक्रिया सीख रहे हैं। वे इस बात से रूबरू हो रहे हैं कि लिखे हुए का अर्थ होता है। बेशक, अनुमान में कुछ ग़लतियाँ हुई हैं जिनपर काम ज़रूरी है। अब ज़रा सोचिए, उसे डाँटकर बोला गया होता कि देखकर पढ़ो, 'मरना' नहीं 'मारना' लिखा है तो इसके क्या नतीजे होते?

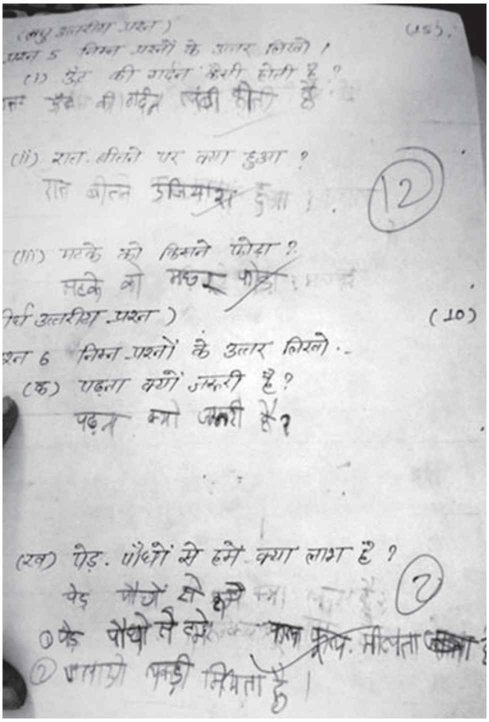
1. बच्चे का ध्यान अर्थ बनाने से हटकर एकदम सटीकता से अक्षर पहचानने पर चला जाता।
2. बच्चा अपनी ग़लती पहचानना नहीं सीख पाता।
3. पढ़ने में डर का एहसास होता, बजाय पढ़ लेने की ख़ुशी के।

पढ़ना सिखाना

पढ़ना सिखाने की प्रक्रिया में अवलोकन बेहद महत्त्वपूर्ण कौशल होता है। जैसा कि आपने उदाहरणों से देखा कि पढ़ने में भाषा, अनुमान और पूर्व-ज्ञान (शब्दों की अवधारणा) किस तरह दिखाई देते हैं। आपको बच्चे के पढ़ने से ही इस बात का एहसास हो जाना चाहिए कि वह समझकर पढ़ रहा है अथवा नहीं। कक्षा 5 की एक बच्ची नीचे उसके द्वारा लिखा हुआ आमंत्रण पत्र पढ़ रही थी। पढ़ने में उसने एक महत्त्वपूर्ण शब्द 'मई' को 'भाई' पढ़ दिया। बच्ची से जब मैंने पूछा कि उसने क्या पढ़ा, तो वह कुछ नहीं बोली। उस बच्ची के पढ़ने के तरीक़े से मेरा अनुमान था कि जब वह इस पत्र को दोबारा पढ़ेगी तो अपनी ग़लती सुधार लेगी। और हुआ भी यही। दोबारा पढ़ने


तुम्हारे पत्र मिला पढकर बहुत खुशी हुई प्रिय मित्र
मई को मेरा जन्मदिन है इस शुभ अवसर पर मै तुम्हे
आमंत्रित करना चाहती हूँ आश है तुम जरूर आओगी
तुम्हारी सहेली आकांक्षा

चित्र 5



चित्र 6

पर उसने 'मई' पढ़ा। इसके बाद मैंने फिर पूछा कि क्या पढ़ा, तो वह चुपचाप खड़ी रही। हम काफ़ी हद तक यह कह सकते हैं कि बच्ची समझ के साथ पढ़ रही थी वरना वो अपनी ग़लती ख़ुद से नहीं सुधार पाती।

एक और बच्ची ने 'राजू और दादाजी' कहानी पढ़ी। उसके पढ़ने के आधार पर मैंने अनुमान लगाया था कि इस बच्ची को यह कहानी समझ आ रही है, लेकिन जब यह बच्ची अपनी पाठ्यपुस्तक का कोई पाठ पढ़ेगी तो नहीं समझ पाएगी। अपना अनुमान जाँचने के लिए मैंने कहानी से सम्बन्धित कुछ सवाल पूछे, जिनके उत्तर वह दे पाई। अब दूसरा अनुमान पाठ्यपुस्तक के विषय में था। मैंने उस बच्ची से कहा, "तुम अपनी कक्षा की किताब से अपनी पसन्द का कोई पाठ पढ़ो और मुझे पाठ के बारे में कुछ बताना, जितना भी तुम्हें समझ आए।" वह 'ईदगाह' कहानी के दूसरे पन्ने से कहानी पढ़ने लगी। कुछ देर देखने के बाद मैंने पूछा, "आप कहानी शुरू से क्यों नहीं पढ़ रही हो?" वह बोली, "पहला पन्ना मैंने कल घर में पढ़ लिया था।" मैंने पूछा, "क्या लिखा है पहले पन्ने में?" वह बोली, "मुझे नहीं पता।"

यहाँ आप देख सकते हैं कि बच्ची पहले पन्ने से आगे पढ़े हुए को जोड़ने के बारे में सोच ही नहीं रही है। इसी सन्दर्भ में तीसरे और चौथे उदाहरण बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, जहाँ बच्चे मुख्य शब्द पहचान रहे हैं और उन्हें पिरोकर एक सार्थक कहानी बनाने की कोशिश कर रहे हैं (नींद-सपना, मरना-दादाजी द्वारा बचाना)।

हमें यह बात बहुत अच्छे-से ध्यान रखनी चाहिए कि पढ़ने के साथ ही हम बच्चों को 'सोचना' सिखा रहे हैं। सोचना, अपना मत बनाने, सही-ग़लत की पहचान करने और नया कुछ सीखने के लिए। यह काम बहुत पेचीदा है। हमें अपने-आप को पूरे समय देखने की ज़रूरत होती है। यह एहसास मुझे कुछ महीनों पहले अपने एक विद्यार्थी के टेस्ट पेपर को देखकर हुआ। आज भी जब मैं इसे देखती हूँ तो उतनी ही गम्भीरता महसूस करती हूँ, क्योंकि मेरी इस विद्यार्थी ने, 'पढ़ना क्यों ज़रूरी है?', प्रश्न के उत्तर में प्रश्न ही उतार दिया (देखें चित्र 6)। हालाँकि, बाक़ी प्रश्नों के उत्तर उसने सही लिखे क्योंकि वे सब पाठ्यपुस्तक से थे। बच्ची का यह उत्तर देखकर मुझे लगा कि मैंने पढ़ना सिखाने की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण चरण छोड़ दिया है।

मीनू पालीवाल ने अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में 6 वर्ष काम किया है। आप फ़ेलोशिप प्रोग्राम के ज़रिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़ीं। इससे पहले उन्होंने 6 वर्ष आईसीआईसीआई बैंक में काम किया। वे अपने मन में आने वाले सवालों की तलाश में शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ीं। उन्हें प्राथमिक कक्षाओं में काम करना अच्छा लगता है।

सम्पर्क : paliwal.meenu@gmail.com

बच्चों का लेखन पोर्टफ़ोलियो : एक विश्लेषण

कमलेश चंद्र जोशी

यह लेख कक्षा 5 के बच्चों के साथ लेखन के सन्दर्भ में किए गए काम प्रस्तुत करता है। ये बच्चे ऐसे थे जो कक्षा 5 के स्तर तक तो पहुँच गए थे लेकिन फिर भी पढ़ने और लिखने में कमज़ोर ही थे। इस स्तर पर स्कूल में शुरू की गई पढ़ने की घण्टी और लेखन के अभ्यासों से बच्चों की लेखन क्षमता में कुछ विकास तो हुआ लेकिन यह अपेक्षा से कम था। बच्चों के लेखन नमूनों का विश्लेषण करते हुए लेखक बताते हैं कि बच्चों के लेखन में विस्तार और बेहतरी के लिए लेखन के नियमित अभ्यास और बच्चों द्वारा किए गए कामों पर शिक्षक का बातचीत करना ज़रूरी है। यह भी ज़रूरी है कि बच्चों को साथ शुरुआती कक्षाओं से ही स्वतंत्र लेखन पर अभ्यास कराए जाएँ। कक्षा में लिखने-पढ़ने पर गहनता से काम करने के लिए किस तरह के संसाधनों, प्रयासों व प्रक्रियाओं की ज़रूरत होती है, इन बिन्दुओं पर भी लेख प्रकाश डालता है। -सं.

भाषा व प्रारम्भिक साक्षरता के वर्तमान विमर्श में सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना, इन सभी कौशलों को साथ-साथ विकसित होने वाली प्रक्रियाओं के रूप में देखा जाता है। अध्येताओं के बीच यह आम सहमति है कि भाषा के सभी कौशल एक दूसरे से जुड़े हैं और एक दूसरे को समृद्ध भी करते हैं। अतः इन्हें एक सम्पूर्णता में देखे जाने और इसके अनुसार ही कक्षा में काम करने पर ज़ोर दिया जाना चाहिए। इसको ध्यान में रखते हुए उत्तराखंड के ऊधम सिंह नगर ज़िले में शिक्षकों के एक समूह के साथ 2014-15 में दो कार्यशालाएँ व समय-समय पर अकादमिक बैठकें आयोजित की गईं। कार्यशाला के बाद कुछ स्कूलों में नियमित भ्रमण कर अध्यापकों के साथ कुछ साझा काम भी किया गया।

इनमें से एक अध्यापक, जिन्होंने कार्यशाला के दौरान रुचि प्रदर्शित की थी, के स्कूल की कक्षा 5 के साथ काम किया। वे चाहते थे कि हम उनके साथ नियमित तौर पर कार्य करें। विद्यालय में नामांकित 47 बच्चों में से अधिकतर बच्चे हाशियाकृत सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से थे व उनके माता-पिता मज़दूरी करते थे।

कार्यशाला में हुई बातचीत के अनुरूप विद्यालय में एक छोटा पुस्तकालय स्थापित किया गया और बच्चों के लिए 'पढ़ने की घण्टी' भी शुरू की गई। यह बच्चों के लिए पढ़ने का लगभग नियमित अभ्यास बनी।

कक्षा 5 के दस बच्चों में से आठ ही नियमित रूप से स्कूल आते थे। सभी बच्चों के लेखन को संकलित कर प्रत्येक का एक पोर्टफ़ोलियो बनाया गया। इस लेख में इन आठ में से पाँच विद्यार्थियों के लेखन के नमूनों को लेकर, लेखन की प्रक्रिया और लेखन में हुए विकास को समझने का प्रयास है। बाक़ी 3 के नमूने इसलिए नहीं लिए गए क्योंकि उनके लेखन नमूनों जैसे उदाहरण इन 5 नमूनों में भी दिख रहे थे। बच्चों के लेखन के इन्हीं पोर्टफ़ोलियो में से दो नमूनों, एक शुरुआती और दूसरा सत्रान्त, का गहरा परीक्षण इस लेख में किया है।

काम की शुरुआत

बच्चों के साथ इस कार्य में पहली चुनौती यह थी कि पढ़ने की घण्टी के दौरान उन्होंने किताबें पढ़ना तो शुरू कर दिया था, पर स्वतंत्र रूप से लिखने का उन्हें कोई अनुभव नहीं था। उन्होंने किसी बात, कहानी, आदि को ख़ुद से सोचकर लिखने के कोई प्रयास नहीं किए थे।

लिखने की शुरुआत के लिए जो किताब वे पढ़ रहे थे, उसके बारे में लिखने का सुझाव दिया गया। मसलन, वह किताब कैसी लगी? या किताब पर चर्चा के दौरान जो ख़ुद के अनुभव, विचार उभरे, उन्हें लिखें; या फिर किसी चित्र को देखकर लिखें; या उनके मन में कोई आसपास का अनुभव या कहानी आती है तो उसे लिखें। इस तरह कुछ-कुछ स्वतंत्र लेखन शुरू हुआ और हर बच्चे ने अपने मन से कुछ-न-कुछ लिखने का प्रयास किया। धीरे-धीरे बच्चे किताबों को देखकर लिखने की बजाय ख़ुद से लिखने के प्रयास करने लगे। यहाँ तक पहुँचने में उन्हें लगभग एक से डेढ़ महीने का समय लगा। स्वतंत्र लेखन के ऐसे अभ्यास महीने में 4-5 बार होते थे। यानी, हमारे इस 4-5 महीनों के काम में कुल 16 से 20 अभ्यास हुए और यह सभी उनके पोर्टफ़ोलियो में रखे जाते रहे।

आगे तालिका में विद्यार्थियों के शुरुआती लेखन और सत्र के अन्त के लेखन के नमूने दिए गए हैं।

इनको पढ़ते हुए यह सोचना होगा कि हम बच्चों के लेखन को कैसे समझें। इन नमूनों में बच्चों की वर्तनी, व्याकरण, आदि की थोड़ी-बहुत अशुद्धियाँ थीं, हमने उन्हें महत्त्वपूर्ण नहीं माना। हालाँकि, यहाँ उनके लेखन को सुधारकर प्रस्तुत किया गया है। जैसा कि भाषा सीखने की राह में ज़रूरी है, उनके लेखन में विषयवस्तु, विचारों की स्पष्टता, निरन्तरता (कोहेरेंस) आदि को हम समझने का प्रयास कर रहे हैं।

तालिका 1

विद्यार्थी	शुरुआती लेखन	सत्र के अन्त का लेखन
1	एक गाँव था। उसमें एक पीपल का पेड़ था। उस पेड़ पर एक छत्ता था। स्कूल में जब बच्चे आ रहे थे तो मधुमक्खियाँ उड़कर जा रहीं थी तो एक लड़की ने देख लिया और बोली वहाँ देखो। सब देखने लगे। वहाँ से एक आदमी आ रहा था बोला बेटे क्या? उन्होंने कहा कि- वो देखो। आदमी बोला यह काट लेती है। फिर सूजन आ जाती और बच्चे घर चले गए।	तालाब के बीचो-बीच में एक मगरमच्छ बैठा था। नाश्ते का समय हो गया था। पानी में एक मछली आ रही थी। मगरमच्छ मछली को देखने लगा। मछली तैरती रही फिर वह आगे जाने लगी। मगरमच्छ ने आँखें निकाल दीं। मछली डरने लगी फिर मगरमच्छ ने मछली को खाने के लिए कदम बढ़ाया। मगरमच्छ ने मछली को खा लिया।
2	एक बार की बात है। एक था चूहा। एक थी बिल्ली। बिल्ली चूहे को खाने लगी। बिल्ली के हाथ में चूहा नहीं आया। बिल्ली रोया करती म्याऊँ-म्याऊँ। बिल्ली को दूसरा चूहा दिखा। बिल्ली खुश हुई कि मैं ये चूहा खाऊँगी। चूहे की लात टूटी हुई थी। चूहा धीरे-धीरे चल रहा था। बिल्ली ने चूहे को खा लिया।	एक बार की बात है एक पेड़ पर एक चिड़िया रहती थी और वह बोल सकती थी। एक दिन वह एक नदी के पास पानी पी रही थी। तभी वहाँ एक मगरमच्छ आ गया और चिड़िया को खाने के लिए भागा। चिड़िया उड़ गई तब वह उड़कर अपने घोंसले में आ गई और छिप गई। चिड़िया को गुदगुदी होने लगी। जब उसने देखा कि उसके नीचे एक गिलहरी थी और

		चिड़िया बोली, ए छोटे-से बच्चे तुम यहाँ क्या कर रहे हो? गिलहरी बोली, मेरे माता-पिता खो गए हैं और मैं अपने घर का रास्ता भी नहीं जानती। तब चिड़िया बोली, मैं तुम्हें घर छोड़ आऊँगी। चिड़िया गिलहरी को उसके घर पर छोड़ आई और वह दोनों दोस्त बन गईं।
3.	किसी गाँव में एक लड़का रहता था। वो रोज नदी में नहाने जाता था। एक दिन उसे मगरमच्छ ने खा लिया। उसकी मम्मी उदास थी। मेरा बेटा कहाँ गया। दूसरे दिन मगरमच्छ रेत पर लेट रहा था। उस लड़के के पास चाकू था। उसने मगरमच्छ का सीना चीर कर बाहर निकल आया। उसने अपने मम्मी-पापा को यह सारी बात बताई। अब वो अपने बेटे को स्कूल के अलावा और कहीं नहीं जाने देते।	एक आम का पेड़ था। आम बहुत लगे थे। एक दिन दो लड़के आम खाने निकले। एक लड़के ने आम का पेड़ देखा और वे दोनों आम खाने गए। दोनों ने बहुत सारे आम खाए। एक लड़का बोला, हम आम घर पर भी ले जाएँगे और घर पर आम खाएँगे। और दोनों घर पर आम ले गए। दोनों लड़कों ने खूब सारे आम खाए। उन्होंने सोचा अब हम बेर खाने चलते हैं, फिर दोनों बेर खाने चल पड़े। और दोनों को रास्ते में उन्हें बेर दिखाई दिए। और दोनों लड़के बेर खाने लगे और बेर घर ले गए। उनको बहुत मजे आए थे। उनकी माँ बोली, ये आम और बेर कहाँ से ले आते हो? आज मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी और आम का अचार भी डालेंगे।
4.	एक बहुत बड़ा स्कूल था। उसमें बहुत सारे लोग पढ़ते थे। उसमें तीन लड़के ऐसे थे वो पेपर में फर्स्ट आते थे और उनके नाम थे– रोहन, सोहेब, सोनू। इसके अलावा कोई फर्स्ट नहीं आता था और वो तीनों बहुत पढ़ते थे। जब पेपर आते थे तो वो तीनों जने बहुत जल्दी कर लेते थे। उन तीनों को पेपरों में बहुत नंबर मिलते थे और उनके अलावा और किसी को ज्यादा नंबर नहीं मिलते थे। जब वो तीनों पास हो जाते थे। उनके सर उनको इनाम देते थे। वो तीनों बहुत खुश थे। जब वो तीनों अपने-अपने घर जाते थे, वो तीनों अपने मम्मी-पापा से कहते थे कि हम सब पास हो गए तब उनके मम्मी-पापा खुश हो जाते थे।	पूर्वा एक आठ वर्ष की साहसी लड़की थी। वह अपने माता-पिता और अपने भाई के साथ गाँव में रहती थी। एक दिन पूर्वा के माता-पिता घर पर नहीं थे। पूर्वा घर के पास खेल रही थी। उसका भाई घर में सो रहा था। अचानक गाँव में आग लग गई। आग फैलते-फैलते पूर्वा के घर तक पहुँच गई। सभी लोग आग बुझाने का प्रयास कर रहे थे। अचानक पूर्वा को अपने भाई की रोने की आवाज सुनाई दी। वह अपने भाई को बचाने घर भागी। जैसे-तैसे वह अपने भाई को उठा लाई। इस प्रयास में वह कई जगह से झुलस गई थी पर उसने अपने भाई की जान बचा ली। सभी लोगों में उसके साहस की प्रशंसा हुई।

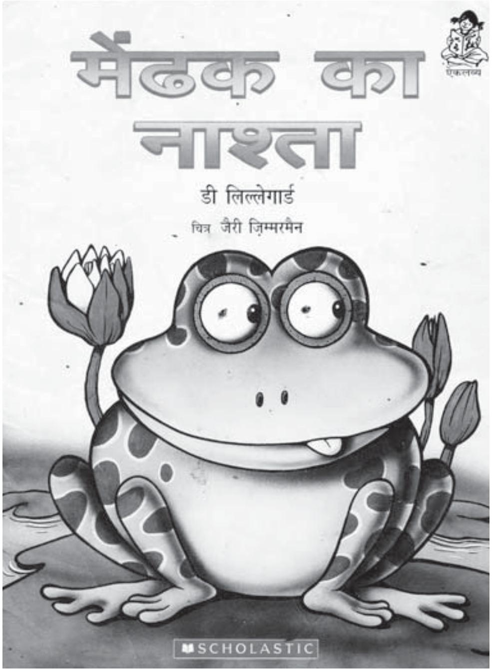
5.	एक स्कूल में बहुत सारे लोग पढ़ते थे। दो लड़के ऐसे थे कि उन्हें कुछ नहीं आता था। वह स्कूल जाते थे। मेम जो काम देती थी स्कूल के लिए वो करते नहीं थे। तभी मेम उन्हें मारती थी। जब छुट्टी हो जाती थी मेम घर के लिए काम देती थी। वो दोनों काम नहीं करते थे। दिन भर खेलते थे। जब सुबह होती थी दोनों स्कूल जाते थे और कुछ काम नहीं करते थे। एक का नाम सोनू था। एक का नाम जतिन था। तो दोनों काम नहीं करते थे। मेम से रोज पिटते थे और एक अक्षर भी नहीं लिखते थे जो मेम उन्हें बताती थी।	एक दिन की बात है। एक लड़का पतंग लेने गया था। जब वो पतंग लाया तब उसने पतंग में छेद किया फिर धागा बाँधने लगा तब उसने धागा बाँध दिया। जब वो छत पर चला गया तब वो पतंग उड़ाने लगा। जब वो उसकी पतंग आसमान में चली गई तब इतनी तेज हवा चली तब उसकी पतंग टूट गई और उसका धागा भी टूट गया और वो पतंग लेने लगा तो उसने एक पतंग ले ली। फिर वो घर आ गया तब उसने पतंग में छेद कर दिया। फिर वो धागा बाँधने लगा। फिर उसने धागा बाँध दिया। फिर वो छत पर चला गया फिर वो पतंग उड़ाने लगा। फिर उसकी पतंग के पास दो कौवे आए और उसकी पतंग फाड़ने लगे तब उन कौवों ने उसकी पतंग फाड़ दी और वो नीचे आ गया।

विद्यार्थियों के लेखन नमूनों के कुछ अवलोकन

पहले विद्यार्थी ने शुरुआती लेखन में 'मधुमक्खी का छत्ता' के इर्द-गिर्द कुछ लिखने की कोशिश की है। इसमें निरन्तरता व तारतम्य कम है। बच्ची एक मधुमक्खी के छत्ते को देखती है, बताती है, एक आदमी आ जाता है और कुछ बताता है। बस एक विवरण दिया गया है, पर ठीक से कोई बात नहीं उभरती। हालाँकि शुरुआत, मध्य व अन्त तो है, लेकिन पाठक को रोकने वाली कुछ बात नहीं है।

इसी विद्यार्थी की सत्र के अन्त की रचना को देखें तो उसने पुस्तकालय की किताब *मेंढक का नाश्ता* के आधार पर 'मगरमच्छ का नाश्ता' नामक कहानी बनाई है।

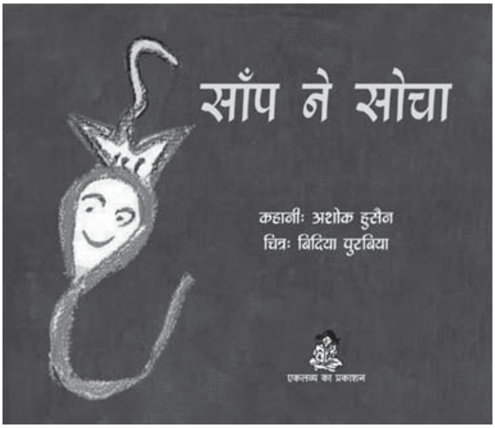
कहानी में अब एक तारतम्य है, तार्किक क्रमबद्धता है और एक शुरुआत व अन्त दिख रहा है। इसमें विद्यार्थी ने मगरमच्छ ने 'आँखें निकाल दीं' मुहावरे का बख़ूबी इस्तेमाल किया है। उसने किताब की शब्दावली व वाक्य संरचना का इस्तेमाल भी किया है। हम देखते



हैं कि बच्चे पढ़ी हुई कहानियों की संरचना को पकड़ते हुए नई कहानी भी बनाते हैं, अतः लिख पाने के लिए अधिक-से-अधिक पढ़ने की आवश्यकता है।

दूसरे विद्यार्थी ने शुरुआती लेखन में 'बिल्ली और चूहे' की जो कहानी बनाई है, उसमें मात्र जानकारी है, कुछ रोचक विवरण नहीं है। पहला चूहा भाग गया व दूसरा पकड़ा गया। हालाँकि, उसने तर्क दिया है कि चूहा चोटिल है। बाद की कहानी का नाम भी है व विवरण भी बहुत है, लेकिन यह पता नहीं चलता कि गिलहरी कहाँ रहती थी और उसके माता-पिता कैसे खोए। पर निश्चित तौर पर, यह पहले से बेहतर लेखन है। कहानी लिखने में ज़्यादा बातें 'चिड़िया और गिलहरी' कहानी में दिखती हैं।

तीसरे विद्यार्थी ने अपने लेखन की शुरुआत में 'साँप ने सोचा' की कहानी को किताब से ज्यों-का-त्यों उतारा था। कुछ बाद में बनाई



'लड़के की चतुराई' कहानी में कुछ नए बिन्दु जुड़े प्रतीत होते हैं, किन्तु इस कहानी में घटनाएँ एकदम से घट रही हैं और कहानी में कक्षा में सुनाई गई कहानी 'अजगर का पेट' का अंश भी है। बाद में लिखी रचना 'आम का पेड़' में यह स्पष्ट नहीं होता कि इस कहानी से वह क्या बताना चाहता है। उन्हें पहले आम का पेड़ मिला, फिर बेर का, फिर माँ भी गई और अचार बनाने की बात हुई। इसमें भी कोई सन्दर्भ नहीं है, बस सपाट रूप से बात कही गई है।

चौथा विद्यार्थी स्कूल का एक ऐसा बच्चा था जिसके बारे में हम कह सकते थे कि वह पाठक बनने की ओर तेज़ी से बढ़ रहा था। वह 'पढ़ने की घण्टी' में मन लगाकर पढ़ता था। इसके अलावा, किताबों पर चर्चा में अग्रणी रहता और किताबें घर भी ले जाता था। उसने सत्र के अन्त तक काफ़ी किताबें पढ़ ली थीं। इसका प्रभाव उसके लेखन में भी देखा जा सकता है। उसने लिखने का काम ख़ूब किया है। उसने शुरुआत किताब से नक़ल करने से ही की थी, पर जल्दी ही अपने मन से लिखना शुरू किया। शुरू वाली उसकी कहानी में बस तीन बच्चों का सरल-सा विवरण है और एक ही वाक्य पैटर्न बार-बार दोहराया गया है। कहानी पाठक में पढ़ने की कोई उत्सुकता नहीं जगा पाती।

सत्र के अन्त में लिखी उसकी कहानी 'साहसी पूर्वा' भी कहीं पहले से पढ़ी हुई कहानी ही लगती है। इसमें मौलिकता नज़र नहीं आती। वह पढ़ता बहुत है, लेकिन उससे बहुत बात नहीं हो पाई और शायद उसे फ़ीडबैक भी नहीं मिल पाया।

पाँचवें विद्यार्थी के लेखन का क़िस्सा यह था कि वह पढ़ तो लेता था, लेकिन लिखने से कतराता था। ऐसा अनुभव अकसर हम कई बच्चों के साथ महसूस कर सकते हैं। लिखने में उसका मन नहीं लगता था। उसकी लिखने की आदत कुछ समय बाद पड़ी जब उसने देखा कि उसके साथी भी कुछ-न-कुछ लिख रहे हैं। उसके शुरुआती लेखन को देखें तो उसमें यह बात निहित थी कि जो बातें हम किताब पढ़कर सीख व समझ रहे हैं, उन्हें अपने मन से लिखने का प्रयास कर रहे हैं। उनमें *बरखा* सीरीज़ की किताबें *हमारी पतंग, भुट्टा* के अंश हैं। इस प्रकार, उसने भी किताबों के आधार पर लिखने की शुरुआत की।

आगे उसने दो बच्चों के पढ़ने में मन न लगा पाने पर कहानी बनाने की कोशिश की है। उसका शीर्षक रखा है 'कहानी बनाई है', जिससे कहानी की कोई बात स्पष्ट नहीं होती। यह भी बस एक-सा ही विवरण है। इसमें क्रमबद्धता भी नज़र नहीं आती। इसमें शुरुआत है और बीच में शिक्षिका बच्चों को काम देती हैं, लेकिन ऐसा





कुछ नहीं होता जो बच्चों में रोचकता जगा सके। उसने बच्चों के नाम आगे लिखे हैं, वह पहले आ जाते तो और निरन्तरता बनती।

सत्र के अन्त के नमूने में कहानी का शीर्षक तो है, पर यह ‘पतंग की कहानी’, शुरुआत अच्छी होने व कुछ कल्पना के बावजूद एक ही जगह घूमती रहती है। शायद विद्यार्थी को यह स्पष्ट नहीं हो रहा है कि वह कैसे आगे बढ़े? इसके अलावा, लेखन में प्रवाह की ज़रूरत है। शिक्षक की मदद की आवश्यकता यहाँ महसूस होती है।

विद्यार्थियों का लेखन क्या दर्शाता है ?

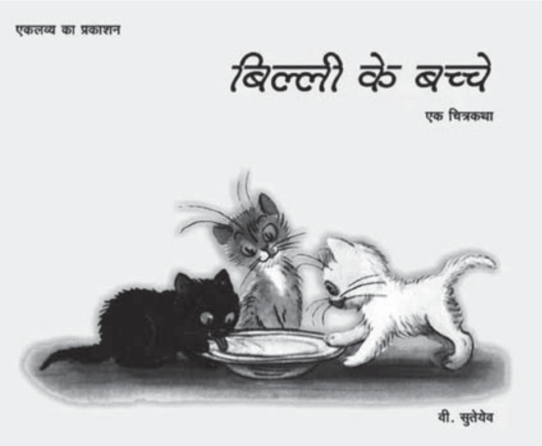
बच्चों के उक्त लेखन में कुछ बातें स्पष्ट नज़र आती हैं। सबसे पहले, बच्चों ने समझा कि वे भी लिख सकते हैं। लिखने के लिए कोई विषय तो चाहिए। यह विषय कल्पित, कुछ वास्तविक और कुछ कल्पित, या वास्तविक घटना पर आधारित हो सकता है। यह बात भी समझ में आती है कि बच्चों का लिखना सीखना भी एक सोचा-समझा काम है। दूसरी बात यह कि नियमित मौक़े देने से लिखने की आदत भी बनती है और लिखने में कुछ आगे बढ़ा जा सकता है। यह भी अच्छा है कि बच्चों को पढ़ने के साथ-साथ लिखने के अवसर भी मिलें और वे लिखने का काम स्वयं करें।

हमने यह भी पाया था कि सभी बच्चों ने अपने लेखन की शुरुआत किताबों से देखकर लिखने से की। चूँकि ये बच्चे पढ़ना जानते थे तभी किताबों को पढ़कर लिख पाए। ये बच्चे किताब के वाक्यों की संरचना पकड़ सके और फिर वैसे ही लिखने का प्रयास करते दिखे जिसमें वे काफ़ी हद तक सफल भी रहे। कक्षा में ऐसे बच्चे हों जो पढ़ना नहीं जानते, लेकिन जो लिखना है वह उनके साथ दो-तीन बार पढ़ा जाए और तब लिखने को कहा जाए तो भी वे यह कर सकते हैं।

बच्चों के इस लेखन को हम एक प्रक्रिया के रूप में देख सकते हैं। हमने देखा कि बच्चों को लेखन में किताबों का साथ मिला जिनसे उनका पढ़ना-लिखना एक सार्थक माहौल में संचालित हो पाया। अकसर देखने में आता है कि पढ़ने-लिखने का कार्य सिर्फ़ पाठ्यपुस्तकों के टेक्स्ट और अभ्यासों के लिए होता है और इससे उसमें एक नीरसता-सी आने लगती है। स्कूल के शिक्षक का भी कहना था कि अधिक किताबें पढ़ने से नियमित रूप से आने वाले बच्चों के पढ़ने में काफ़ी सुधार देखने को मिला।

किताबों का साथ बच्चों को लिखने की प्रेरणा देता है। किताबों से बच्चे लिखने के विचार, शब्दावली व संरचनाएँ भी पकड़ते हैं। यह कुछ बच्चों के लेखन में दिखाई भी देता है। इस प्रक्रिया से यह समझ भी बनती है कि अगर बच्चों को नियमित रूप से पढ़ने-लिखने के मौक़े मिलें तो वे ख़ुद से लिखने का प्रयास करते हैं। इस तरह, लेखन में धीरे-धीरे वे अपने विचार भी प्रकट करते हैं। इस प्रक्रिया के आरम्भ में कुछ बच्चों के लेखन के विवरण हैं, फिर कुछ उनके अपने अनुभव हैं और वे धीरे-धीरे स्वतंत्र रूप से लिखने की ओर आगे बढ़े हैं। कुछ बच्चो के लेखन में शुरुआत में शीर्षक ही नहीं है, केवल ‘कहानी बनाई है’ लिखा है। लेकिन आगे उन्होंने शीर्षक भी लिखा। उनके

लेखन की बाद की रचनाओं में हम थोड़ा विस्तार भी देख पा रहे हैं। साथ ही, लेखन में बच्चे अपने पूर्व अनुभवों और अपनी भाषा को भी लाते दिखते हैं।



स्वतंत्र लेखन के लिए कुछ सुझाव

इन विद्यार्थियों के साथ शुरुआती कक्षाओं में पढ़ने-लिखने को लेकर कुछ अर्थपूर्ण काम नहीं हो पाया था। अतः बच्चों में लेखन क्षमताओं के विकास के लिए ज़रूरी हैं कि शुरुआती कक्षाओं से ही स्वतंत्र लेखन के प्रयास किए जाएँ। लेखन के शुरुआत की यह प्रक्रिया कुछ और भी हो सकती है। उदाहरण के लिए, अपना और अपने दोस्तों का नाम लिखना, किसी चित्र पर एक-दो वाक्य लिखना, अधूरी कहानी पूरा करना, कविता की ग़ायब हुई पंक्तियाँ लिखना, दिए गए कुछ शब्दों के द्वारा कहानी कहना और फिर लिखना, अपने अनुभव लिखना, आदि कई कार्य दिए जा सकते हैं। मेरा मानना है, यदि शुरुआत से ही ऐसी कोशिशें हों कि बच्चे पढ़ी हुई कहानी में अपने अनुभव और कल्पना जोड़ते हुए लिखें तो उनके लेखन में कुछ मौलिकता भी आएगी। मिसाल के तौर पर, 'बिल्ली के बच्चे' कहानी को पढ़ते हुए बिल्ली के बच्चों से जुड़े अपने कुछ अनुभव लिखें, 'तोता' कहानी पढ़ते हुए किसी पशु-पक्षी को पालने और उसे बचाने के अनुभव लिखें तो बच्चों के लेखन में मौलिकता देखने को मिलेगी। इस प्रकार, बच्चों को लिखना सिखाने के बहुत-से तरीक़ों पर सोचा जा सकता है। यह सब स्कूल की परिस्थिति, शिक्षकों की समझ, आदि पर भी निर्भर करता है।

इस प्रक्रिया में, मैंने यह भी महसूस किया कि अगर बच्चों के साथ उनके लिखने पर कुछ नियमित चर्चा होती तो हो सकता है उनके लिखने में और व्यापकता एवं विस्तार दिखता। मसलन, अधिकांश बच्चों ने यहाँ कहानी और अपने अनुभवों को ही लिखने की कोशिश की है। इस उम्र के बच्चों से चित्रकथा लिखने, कविता लिखने, अख़बार की ख़बर लिखने जैसे काम भी करवाए जा सकते हैं। बच्चों के कार्य को देखकर यह बात भी उभरती है कि शिक्षक को लिखना सिखाने के लिए एक नज़रिए की ज़रूरत होती है। इस मसले पर सामान्यतः कार्यशालाओं में बहुत अच्छे-से बात नहीं हो पाती। इस नज़रिए में लिखने का मतलब भी स्पष्ट होना ज़रूरी है। इसके साथ ही, लिखना सिखाने के तरीक़ों और उसके आकलन पर भी बात करनी चाहिए। केवल ऐसा न हो कि बच्चों ने कहानी के ढाँचे में कुछ लिखकर दे दिया तो काम हो गया।



यह बात भी समझ में आई कि इस कार्य में लिखने के मौक़े देना तो अच्छा है, लेकिन इसपर एक योजना के साथ काम करने में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। लिखने के मौक़े मिलने के बाद उन्हें शिक्षकों के सहयोग की ज़रूरत पड़ती है।

इन बच्चों के लेखन पर कक्षा में अकसर उनसे कोई बात नहीं होती थी। इस कारण बच्चे ख़ुद से लिखते रहे, और अन्त तक आते-आते, माने लगभग छह महीनों बाद भी, उनके लेखन की गुणवत्ता में बहुत सुधार नहीं दिखाई पड़ता। अतः यह ज़रूरी है कि पढ़ने और लिखने के अभ्यास के दौरान और उसके बाद शिक्षक बच्चों से उनके द्वारा किए गए काम के बारे में बात करें और उन्हें, उससे आगे बढ़ने में मदद करें, जहाँ वे हैं। मिसाल के तौर पर, बच्चे एक-दूसरे को अपना लेख दिखाएँ, बताएँ कि कहाँ रिक्तता लग रही है। इस स्तर पर वाक्यों की संरचना और मात्राओं के बारे में भी बात हो सकती है। शिक्षक कह सकते हैं कि लिखे को फिर से पढ़ो, क्या कहीं उन्हें कुछ ग़लत लग रहा है, यदि हाँ, तो उसे चेक करें, आदि।

शायद बच्चों को अच्छे लेखन के नमूने दिखाने से लाभ हो। यहाँ इसके न हो पाने के मुख्य कारण व्यवस्थागत (एकल शिक्षक व ढेरों प्रशासनिक काम भी) व स्पष्टता की कमी ही कहे जा सकते हैं।

स्पष्टता, यानी यह समझ कि भाषा सिखाने का क्या मतलब है, पढ़ना-लिखना सिखाने का क्या आशय और क्या उद्‌देश्य हैं? इसके बाद यह समझ कि अच्छी पढ़ने-लिखने की प्रक्रियाएँ क्या होंगी? इसी से वे समझ पाएँगे कि बातचीत किसपर करें और कैसे? यह भी लगता है कि यह सब करने के लिए शिक्षक की भी पढ़ने-लिखने में रुचि होनी चाहिए। ख़ुद पढ़ेंगे-लिखेंगे, तभी वह पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया को एक सहज रूप में देख पाएँगे।

बच्चों के लिखना सीखने की शुरुआत पहली कक्षा से ही होनी चाहिए। साथ ही, इसे बच्चों की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जाना चाहिए न कि केवल सुन्दर लिखावट के रूप में। इसकी शुरुआत चित्र बनाने से हो सकती है, और बच्चों से किताब अथवा उन्हें सुनाई गई अन्य कहानियों पर चित्र बनवाए जा सकते हैं।

आख़िर में, शिक्षकों को वर्तनी व व्याकरण की ग़लतियों पर अतिरिक्त ध्यान की उपादेयता पर भी सोचना होगा। ग़लतियों पर कितना ध्यान दें, और किस स्तर पर पहुँचने के बाद इसपर ध्यान दें? गोला लगाएँ या नहीं? सवाल यह है कि यदि सुधारेंगे नहीं तो क्या बच्चा अशुद्ध ही लिखता रहेगा! जिस तरह बोलने में सुधार की ज़रूरत नहीं होती और धीरे-धीरे सुधार हो जाता है, कुछ हद तक लिखने में भी वैसा ही होता है। लिखने में सुधार के लिए चौथी-पाँचवीं के स्तर से व्यवस्थित रूप में काम की ज़रूरत है। बच्चों के लेखन के नमूनों पर उनसे चर्चा की जा सकती है। इस बातचीत में उनके विचारों को उभारने का प्रयास हो न कि शब्दों को दोहराने का। इसके अलावा, नियमित रूप से पढ़ने से बच्चों के लेखन में भी सुधार होता है और वे स्वतः वर्तनी भी सीखते रहते हैं। लेखन में बच्चों के विचार, उनकी नई शब्दावली और कल्पना देखना ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है।

इस आलेख को लिखने की प्रेरणा रामकिशोरजी द्वारा अपने विद्यालय में बच्चों के लिए की गई सार्थक पढ़ने-लिखने के मौक़े देने की पहल से मिली है। इसके लिए उनका बहुत आभार।

कमलेश चंद्र जोशी प्राथमिक शिक्षा से लम्बे समय से जुड़े हुए हैं। प्राथमिक शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयों–शिक्षक शिक्षा, बाल साहित्य, प्रारम्भिक भाषा एवं साक्षरता आदि में गहरी रुचि है। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ऊधम सिंह नगर में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : kamlesh@azimpremjifoundation.org

चरित्र निर्माण : किशोरों की विरोधों से निपटने की संस्कृति

अमन मदान

परिवार, समाज, संस्था या जहाँ भी एक से अधिक लोगों का समूह है, वहाँ एक दूसरे के मतों पर कभी-न-कभी टकराव होना या मतों का फ़र्क़ होना स्वाभाविक-सी बात है। और चूँकि यह होंगे ही, इसलिए ये ज़रूरी हो जाता है कि हर इंसान इन टकरावों और संघर्षों से समझदारीपूर्वक निपटना सीखे।

यह लेख संवाद की संस्कृति बनाने की बात करता है और एक शोध कार्य का हवाला देते हुए इसपर अपने विचार प्रस्तुत करता है कि स्वस्थ संवाद करने की दिशा में आगे बढ़ने के लिए क्या किया जा सकता है। -सं.

एक दूसरे के साथ टकराव होना तो हमारे सामाजिक जीवन में अनिवार्य है। आपस में जितना मर्ज़ी प्यार हो, फिर भी कहीं-न-कहीं मतों और भावनाओं में विरोधाभास तो होता ही है। यह बड़े ही साधारण स्तर पर हो सकता है, जैसे कि शाम को मूँग की दाल खाई जाए या मसूर की, जातीय स्तर पर भी हो सकता है, जैसे कि दाल ही बने या चिकन, या फिर सामाजिक ढाँचे के स्तर पर, जैसे कि उपभोक्तावादी संस्कृति वाला खाना खाया जाए या स्थानीय संस्कृति वाला।

विरोध, संघर्ष और टकराव क्योंकि हर जगह हैं, इसलिए हर इंसान और हर नागरिक के लिए यह सीखना ज़रूरी है कि इनके साथ अच्छी तरह से कैसे निपटा जाए। टकराव अपने-आप में बुरे नहीं हैं। कई समाजशास्त्रियों का मानना है कि बिना टकराव के कोई भी समाज बदल नहीं सकता। उन्हें ज़्यादा अच्छे और विवेकशील तरीक़े से कैसे करते हैं, यह सीखना सभी के लिए लाभकारी है। दुर्भाग्यवश, भारत में इसके बारे में स्कूली शिक्षा में ज़्यादा ध्यान नहीं दिया गया है। मगर इसे समझना और इसके लिए उचित शिक्षा व्यवस्था बनाना ज़रूरी है।

आज शाम को क्या खाएँ, इसे तय करने के कई तरीक़े होते हैं। हम औरों को विवश कर सकते हैं कि वे हमारी बात मानें। उन्हें कह सकते हैं कि अगर हमारा मन-पसन्दीदा खाना नहीं मिला तो हम ग़ुस्सा हो जाएँगे। रूठ जाना, यह भी एक क़िस्म का विवश करना ही है। और भी कई तरीक़े हैं समस्याओं को हल करने के, जैसे कि उनसे पीछे हट जाना (मैं आज कहीं और खा रहा हूँ), समर्पित हो जाना (जो आप कहेंगे, वही खा लेंगे), इत्यादि। मगर शायद सबसे अच्छा और स्थाई तरीक़ा होता है संवाद करना, जिसमें दोनों पक्ष एक दूसरे को समझने की कोशिश करते हैं और दोनों की मनोभावनाओं का सम्मान करते हुए ऐसी राह ढूँढ़ते हैं जो सबको स्वीकृत हो। इस संवाद के रास्ते में कई अड़चनें भी आती हैं : जब लोगों के बीच में बहुत सामाजिक स्तर और ताक़त का अन्तर हो तो संवाद करना मुश्किल होता है। जब हमारे आसपास सभी लोग मार-पीट और युद्ध की भाषा बोलते हैं तब भी संवाद की बात करना मुश्किल होता है। इस तरीक़े को



चित्र : हीरा धुर्वे

सीखना पड़ता है, इसकी संस्कृति बनानी पड़ती है और हालात भी अनुकूल बनाने पड़ते हैं। इन सब में मेहनत लगती है। मगर इसके फल सभी को विरोध को हल करने के दूसरे तरीक़ों से ज़्यादा मीठे और सही लगते हैं।

बच्चों, किशोरों और बड़ों को विरोधों के हल ढूँढ़ने के ज़्यादा अच्छे तरीक़े कैसे सिखाएँ? इसपर पहुँचने से पहले यह समझना ज़रूरी है कि हमारे किशोरों के आज की स्थिति में टकरावों के हल ढूँढ़ने के क्या तरीक़े हैं। इस सवाल को लेकर मैंने नवीन कुमार पासवान और नूपुर रस्तोगी के साथ मिलकर एक अध्ययन किया है। नवीन और नूपुर झारखंड आदिवासी बाहुल्य संथाल परगना के पोरईयाहाट ब्लॉक में रहते हैं और उन्होंने कुछ सवालों को लेकर वहाँ के 6 गाँवों में 60 किशोरों का इंटरव्यू किया। इनमें से आधे लड़के थे और आधे लड़कियाँ। दो गाँव आदिवासी बहुल थे, दो ओबीसी बहुल और दो में मिली-जुली आबादी थी। इन किशोरों को तीन स्थानीय परिस्थितियों से जुड़ी टकराव दर्शाती हुई कहानियाँ सुनाई गईं और पूछा गया कि इनके पात्रों की जगह अगर आप होते तो क्या करते!

किशोरों के टकराव को हल करने के तरीक़े

एक महत्त्वपूर्ण बात जो देखने को मिली, वह थी कि अन्त में प्रेम की ही जीत को सर्वप्रथम स्थान दिया जा रहा था। कई तरह के मसलों और झगड़ों की बातें की गईं। मगर उन सबके बाद यह अपेक्षा थी कि आख़िर में फिर सब ठीक हो जाएगा और आपस में समरसता व प्रेम का रिश्ता वापस बरक़रार हो जाएगा। हमारे लिए यह थोड़ी हैरानी वाली बात थी। जब हम न्याय, समानता, स्वतंत्रता, इत्यादि के बारे में सोचते हैं तो हमारे मन में सच की जीत और झूठ की हार की कल्पना होती है। मगर यहाँ पर अन्तिम उद्देश्य कुछ और था, एक दूसरे के साथ प्रेम भाव और सम्मान में रहना ज़्यादा महत्त्वपूर्ण था। टकराव को हल करने के बहुत सारे तरीक़े विवशता और ज़ोर-ज़बरदस्ती की तरफ़ ज़रूर जा रहे थे। मगर एक हद के बाद बाक़ी समाज से इसे बन्द करने का दबाव आना शुरू हो जाता था। अन्त में उम्मीद यही रहती थी कि सामाजिक बन्धन फिर से क़ायम हो जाएँ, यह नहीं कि सत्य की जीत ही हो।

विवश करना — डाँटकर बात करना

किशोरों का सबसे ज़्यादा प्रयोग में आने वाला तरीक़ा था डाँटकर बात करना। बहुत सारी समस्याओं का हल वे दूसरों को डाँटकर ढूँढ़ते थे। राधा (असली नाम बदल दिए गए हैं) 17 साल की ओबीसी युवती है जो कि ज़िला मुख्यालय डुमका के निजी स्कूल में पढ़ती है। उसे एक कहानी सुनाई गई जिसमें संतोष के चाचा उसे पैसा लौटाने से मना कर रहे हैं।

प्रश्नकर्ता : क्या करेगा संतोष अब?

उत्तरदाता : उससे जाके पूछेगा कि हम एक महीना का टाइम दिए थे फिर भी पैसे लौटा के नहीं दिए हो, कब दीजिएगा। उसके बाद वो बोलेगा क्या हम नहीं देंगे, वो करेंगे, उसके बाद बात-बात में ही झगड़ा होगा, फिर आगे बात बढ़ेगी, मारपीट भी हो सकती है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर कुछ सुलझेगा या नहीं सुलझेगा?

उत्तरदाता : अगर वो लोग सुलझाना चाहेंगे तो सुलझेगा। अगर वो ये कह देंगे कि हम दे देंगे कुछ दिन में पैसे आपको लौटा देंगे तो सुलझ सकता है या अगर नहीं तो फिर बात बढ़ सकती है।

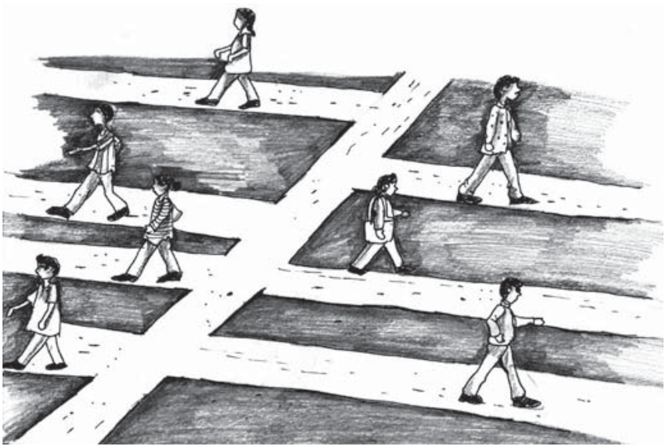
जैसे कि राधा की बात से दिखता है, जब कोई विवाद है तो बात सीधी रखी जाती है और डाँटकर कही जाती है। अगर दूसरा व्यक्ति सीधे ही मान जाता है तब तो ठीक है, और उसे बात का 'सुलझना' कहा जाता है। अगर वह नहीं मानता तो इस तरीक़े को और तीव्र किया जाता है। दूसरे पक्ष की क्या समस्या या क्या सोच है, इसके बारे में बहुत कम किशोरों ने ज़िक्र किया। यह थोड़ी चिन्ता का विषय है क्योंकि संवाद के लिए दूसरों के नज़रिए से भी बात को देखना अनिवार्य है।

विवश करना — समझाना

कई किशोरों ने कहा कि हम समझाएँगे। 'समझाने' का अर्थ यहाँ पर है, स्नेहपूर्ण तरीक़े से दूसरे द्वारा अपनी बात मनवाना। इसमें ख़ुद द्वारा समझने को नहीं जोड़ा जाता। अपनी बात मनवाने के लिए नैतिक तर्क भी दिए जा सकते हैं और भावनाओं को भी झँझोड़ा जा सकता है, रौब भी जमाया जा सकता है और धमकियों व थप्पड़ों का भी प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ के किशोरों के व्यवहार के अनुसार, अगर यह सबकुछ प्रेम भाव से किया जाता है तो वह समझाना ही है। मगर हम इसे फिर भी संवाद नहीं कह सकते, क्योंकि इसमें दूसरे पक्ष को समझने की कोशिश मौजूद नहीं है।

शिवराज 17 वर्षीय ओबीसी लड़का है जिसने स्कूल छोड़ देश के दूसरे हिस्सों में जाकर मज़दूरी करना शुरू कर दिया है। उसे एक कहानी सुनाई गई, जिसमें एक बड़ी बहन अपने छोटे भाई से किसी बात पर नाराज़ है।

प्रश्नकर्ता : तो अब रानी क्या करेगी?



चित्र : हीरा धुर्वे

उत्तरदाता : वही करना चाहिए, एक-दो थप्पड़ लगाके समझा देना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : एक-दो थप्पड़ लगाके समझा देगी, ऐसे में तो लड़ाई हो जाएगी दोनों में, है न?

उत्तरदाता : नहीं होगा वो छोटा है न, तो बड़ा मारेगा तो उसके लिए कोई टेंशन नहीं है और उतना रिस्क भी नहीं है।

थप्पड़ लगाकर समझाने में उनको कोई विरोधाभास महसूस नहीं हो रहा था। बड़ों का छोटों के साथ स्नेहशील रिश्ता होता है,

इसीलिए उनके द्वारा की गई हिंसा में उन्हें कुछ ग़लत नहीं दिखता था। यह एक तरीक़े का विवश करना ही है। मगर इसके पीछे स्नेह की भावना है तो इसे वहाँ की समझ में अनुचित नहीं माना जा रहा। यह भी संवाद नहीं है क्योंकि इस सारे स्नेह के बावजूद दूसरों की क्या समस्या या उनका क्या नज़रिया है, इसके बारे में कोई बात नहीं की जा रही।

पीछे हटना और झुकना

यहाँ पर एक आम नैतिक समझ यह है कि बड़ों के विपरीत ज़्यादा नहीं जाना चाहिए। चाचा, बड़ी बहन, इत्यादि के साथ जब टकराव हो और अगर अपने-आप को सही भी माना जा रहा हो, फिर भी आपसी प्रेम और रिश्ता बनाए रखने के लिए पीछे हट जाना चाहिए या उनके सामने झुक जाना चाहिए। इस तरह की बातें लड़कियाँ, लड़कों से ज़्यादा कर रही थीं। पीछे हटने और अपनी हार मानने में इस बात का भी असर है कि स्वयं अपनी ताक़त कितनी है। राधा, जिससे हम पहले भी मिले हैं, कहती है कि वह आगे पढ़ना चाहती है मगर परिवार से उसे इसके लिए सहयोग नहीं मिल रहा। उससे अपेक्षा की जा रही है कि वह अपने बड़े परिवार के लिए खाना बनाने में मदद करे और घर के दूसरे काम करे। राधा से और बातचीत हुई :

प्रश्नकर्ता : जब विवाद होता है, तो आप क्या करते हो उसमें फिर?

उत्तरदाता : ऐसे ही मतलब बातों-बातों में थोड़ा-सा बात होता है ऐसे ही उसके बाद फिर सब सही हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : और सही कैसे होता है फिर?

उत्तरदाता : सही, फिर अपने-आप को समझा देते हैं कि ये सब करने से अच्छा नहीं होता है। क्या फ़ायदा एक ही जगह रहेंगे, एक ही गाँव में रहते हैं, आमने-सामने होता है, अच्छा नहीं लगेगा ऐसे झगड़ा करने से।

प्रश्नकर्ता : और क्या करने से लड़ाई कम हो जाती है?

उत्तरदाता : समझाने से मतलब समझने से। अपने-आप को समझाना पड़ता है उसके बाद अगर ज़्यादा उलझाने से ऐसे ही झगड़ा होता है।

इस लड़की की परिस्थिति है कि उसका परिवार उसपर हावी है। उनके विरुद्ध कुछ भी करने के लिए उसके पास न तो कोई सहयोगी है, न ही साधन। ऐसे में वह अपने-आप को समझा रही है कि पीछे हट जाना और दूसरों की बात मान लेना ही सबसे अच्छा रास्ता है। इस तरह के तर्क भी यहाँ कई किशोरों के मुँह से सुनाई दिए जिनके पास कोई और विकल्प खोजने की ताक़त या समय नहीं था।

तीसरे पक्ष से हल ढुँढ़वाना

यहाँ विवश करने पर इतना ज़ोर है तो फिर समाज में नैतिक व्यवस्था कैसे बनी रहती है? यहाँ सबकुछ ज़ोर-ज़बरदस्ती से क्यों नहीं होता? इस सवाल का जवाब यहाँ की प्रथा में है कि जब भी बात बढ़ती है, किसी तीसरे पक्ष को बीच-बचाव में लाया जाता है। चाहे स्कूल के झगड़े हों या रिश्तेदारों के, बार-बार यह किशोर कह रहे थे कि वे किसी और के पास



चित्र : हीरा धुर्वे

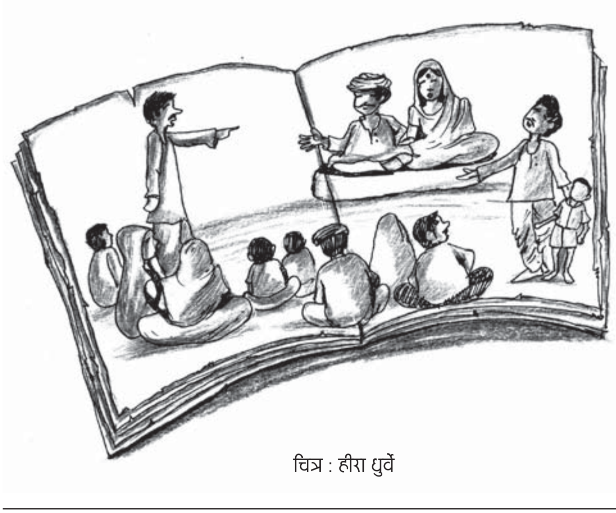
जाएँगे जिससे कि झगड़े को रोका जा सकता है और उचित हल ढूँढ़ा जा सकता है। वे उनके माता-पिता हो सकते हैं, पड़ोसी, या शिक्षक इत्यादि भी हो सकते हैं। अपने समाज के दूसरे लोगों से अनुमोदन लेना यहाँ पर बहुत महत्त्व रखता है। अगर बहुत सारे लोग कह रहे हैं कि यह ग़लत है, तो उसका व्यक्ति पर भारी प्रभाव पड़ता है। नैतिकता का भावनात्मक आधार यहाँ पर है, बाक़ी समाज में स्वीकृत होना।

यहाँ पर 'बैठक' या 'पंचायत' बुलाने की प्रथा है। इसमें रिश्तेदार या पड़ोसी इकट्ठा होकर समस्या पर चर्चा करते और हल बताते हैं। बैठक गाँव के पुरुषों और मुखिया की भी हो सकती है। इसमें सभी को शराब पिलाई जाती है और अपना-अपना पक्ष रखा जाता है। बैठक काफ़ी देर तक चलती है और इसमें जो निर्णय निकलता है वह सबपर बाध्य माना जाता है। एक युवक ने कहा कि बैठक में सही निर्णय ही पाया जाता है क्योंकि वहाँ कोई भी ग़लत बात बोलकर सबके सामने बुरा नहीं बनना चाहता। अधिकांश किशोरों का कहना था कि जब बात बढ़ती है तो पुलिस के पास जाने से अच्छा यही है कि बैठक बुलाई जाए।

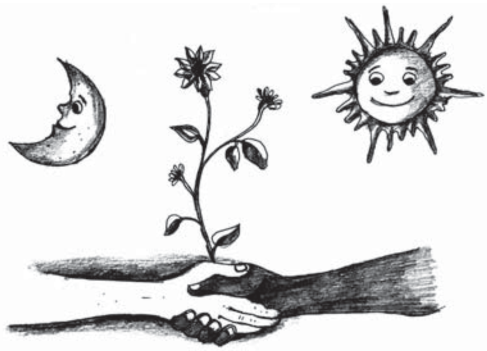
तीसरे पक्ष के पास जाने का विकल्प डाँटने के तरीक़ों को ज़्यादा बढ़ने से रोक देता है। जब बहस झगड़े में बदल जाती है तो अन्य लोग उसमें शामिल होकर उसे समाधान की दिशा में ले जाना शुरू कर देते हैं। यह यहाँ पर इसलिए सफल है क्योंकि पास-पड़ोस में जान-पहचान के और सगे सम्बन्धी लोग ही रहते हैं। इन सबका हमारी अपनी पहचान पर गहरा भावनात्मक असर रहता है। जब यहाँ के किशोर मज़दूरी के लिए बाहर निकलते हैं तो वहाँ पर उन्हें यह वातावरण नहीं मिलता।

विरोधों को पार करना — शैक्षणिक दिशाएँ

अगर यहाँ की यही संस्कृति और प्रथाएँ हैं तो फिर शिक्षा इसमें क्या जोड़ सकती है? समाज तो वैसे ही बच्चों और बड़ों को यह सब सिखा ही रहा है। क्या यह पर्याप्त है? विशेषज्ञों का मानना है कि विरोधों और मतभेदों को हल करने के अच्छे तरीक़े के लिए कई गुण ज़रूरी हैं। मिसाल के तौर पर, अपनी बात को स्पष्ट तरीक़े से रख पाना, उसे ऐसे कहना कि वह सुनी जाए, दूसरे पक्ष की बात को भी ध्यान से सुनना और दोनों के दावों पर नैतिक सिद्धान्तों के प्रयोग से चिन्तन करना और ऐसा हल निकालना जो कि दोनों पक्षों की नैतिकता को स्वीकृत हो। इस सबके लिए, दूसरे पक्ष के लिए दिल में सम्मान और स्नेह भी चाहिए, चाहे उनके साथ हमारी कोई रिश्तेदारी और मित्रता हो या न हो। यहाँ का अध्ययन जो तस्वीर सामने रख रहा है वह इससे थोड़ी भिन्न है। दूसरों को समझने और नैतिक सिद्धान्तों पर मनन करने का काम सामूहिक तौर पर हो रहा है और कई बार वह पुरुषों की बैठक में ही हो रहा है। व्यक्तिगत सोच और महिलाओं की समझ को इसमें महत्त्व नहीं दिया जा रहा। एक और समस्या है कि जिन नैतिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जा रहा है, वे सभी पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित हैं। एक जटिल, सर्वव्यापी औद्योगिक समाज में यह सिद्धान्त पर्याप्त नहीं



चित्र : हीरा धुर्वे



चित्र : हीरा धुर्वे

हैं। यहाँ के ग्रामीण युवक जहाँ जाकर काम कर रहे हैं, वे फ़ैक्ट्रियाँ, शहर और बाज़ार हैं। वहाँ पर इन्हें स्वयं ही सोचना पड़ेगा कि क्या सही है और क्या ग़लत। और विवाद के समय यह अपेक्षा नहीं कर सकते कि उनके रिश्तेदार बात को सँभालने आ जाएँगे। ऐसी परिस्थितियों में वे विवश करने और पीछे हटने के तरीक़ों पर ज़्यादा भरोसा कर सकते हैं और नैतिक तार्किकता या संवाद में कमज़ोर रह सकते हैं। अपनी संस्कृति की अच्छाइयों के साथ-साथ इन्हें यह भी सीखने की आवश्यकता है कि एक ज़्यादा विस्तृत समाज में टकरावों को कैसे हल किया जा सकता है।

एक स्थानीय अध्ययन से हम पूरे भारत के युवकों के बारे में निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। मगर यह ज़रूर लग रहा है कि टकराव और विरोधों को विवेकपूर्ण और शान्तिमय तरीक़े से हल करने की संस्कृति को स्कूली शिक्षा में जगह देना फ़ायदेमन्द होगा। इसपर विश्व भर में कई तरह के प्रयोग हुए हैं और भारत में भी कई प्रगतिशील विद्यालयों ने अलग-अलग तरह से इसे अपनाया है। उदाहरण के लिए, बच्चों को दूसरों की बात और समस्या को ध्यान से सुनना सिखाया जाता है। उन्हें यह भी सिखाया जाता है कि अपनी बात को बिना डाँटे या आक्रामक सुर का प्रयोग किए, कैसे प्रभावशाली तरीक़े से रखा जा सकता है। सर्वव्यापी नैतिक सिद्धान्तों में प्रतिबद्धता भी बनाई जा सकती है। इन सबको सामाजिक विज्ञान, साहित्य, कला, खेल-कूद और अन्य विषयों के द्वारा सिखाने में कई सम्भावनाएँ हैं।

भारतीय परम्पराओं में शान्ति की शिक्षा और दूसरों को प्रेम भाव से देखने पर बहुत काम है। यूनाइटेड नेशन्स और विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों ने भी इसपर सामग्री ऑनलाइन डाल रखी है जिसे 'conflict resolution education' के नाम से ढूँढ़ा जा सकता है। इस सामग्री को भारतीय परिवेश के अनुकूल बनाकर प्रयोग करने की सख़्त ज़रूरत है।

आगे आने वाला समय कैसा होगा, यह पूरी तरह से तो कोई नहीं कह सकता। मगर यह ज़रूर लग रहा है कि इसमें लोग पहले की तुलना में बहुत ज़्यादा संख्या में यहाँ से वहाँ जाएँगे और नए समूहों व जगहों के साथ रहना पड़ेगा। कई तरह के नए सामाजिक तनाव उपज रहे हैं। ऐसे वर्तमान और भविष्य के लिए अगर हमें बच्चों और युवकों को तैयार करना है तो उनके लिए यह सीखना लाभकारी होगा कि विवेकशील तरीक़े से अपने टकरावों और विरोधों के साथ कैसे निपटते हैं। कई पुराने तरीक़े अभी भी उतने ही उचित हैं जितने पहले थे। मगर बदलती परिस्थितियों के अनुकूल नए तरीक़ों को सीखना पड़ता है। उन्हें समझना और सिखा पाना, यही आज के स्कूली शिक्षण का धर्म है।

इस विषय पर अमन मदान, नवीन कुमार पासवान और नूपुर रस्तोगी का ज़्यादा विस्तृत विवरण देता हुआ लेख NUEPA द्वारा प्रकाशित पत्रिका *परिप्रेक्ष्य* में प्रकाशन के लिए भेजा हुआ है।

अमन मदान ने मानवशास्त्र और समाज शास्त्र का अध्ययन किया है। पिछले तीन दशकों से शिक्षा और समाज के मुद्दों पर अध्यापन एवं शोध के क्षेत्र में संलग्न हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : amman.madan@apu.edu.in

सामाजिक विज्ञान की कक्षा में विद्यार्थियों का दैनन्दिन ज्ञान

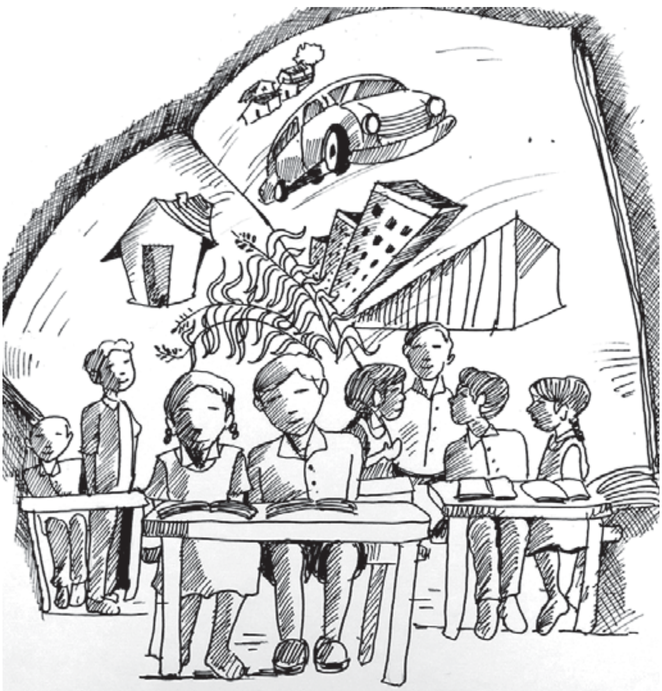
ऋषभ कुमार मिश्र

उच्च माध्यमिक कक्षाओं में सामाजिक विज्ञान शिक्षण की प्रक्रियाओं को समझने में यह लेख मददगार होगा। लेख के शुरुआती हिस्से में लेखक सामाजिक विज्ञान शिक्षण के उद्देश्यों को रेखांकित करते हुए यह तर्क रखते हैं कि इन उद्देश्यों को हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ते रहने के लिए कक्षा में बच्चों की भागीदारी को सुनिश्चित करना ज़रूरी है। यह भागीदारी एक लोकतांत्रिक समाज के लिए आवश्यक मूल्यों को विकसित करने और बच्चों को एक ज़िम्मेदार नागरिक बनाने के लिए बहुत ज़रूरी है। वे सामाजिक विज्ञान की अवधारणाओं पर काम करने के अपने अनुभवों को प्रस्तुत करते हुए यह चित्रित करते हैं कि कक्षा में बच्चों की भागीदारी को कैसे सुनिश्चित किया जा सकता है। -सं.

एक शिक्षक जो अपनी कक्षा में 'शिक्षार्थी-केन्द्रित' शिक्षणशास्त्रीय परिवेश का विकास करना चाहता है, उसका लक्ष्य होता है कि वह विद्यार्थियों के सन्दर्भजनित अनुभवों और दैनन्दिन ज्ञान को कक्षा में सम्मिलित करे। इसके आधार पर विद्यार्थियों को ज्ञानानुशासन की अवधारणाओं, तकनीकी शब्दावलियों और जानने की विधियों से युक्त करे। वह कक्षा में एकालाप के स्थान पर संवाद की संस्कृति विकसित करे। इन शिक्षणशास्त्रीय लक्ष्यों के समान्तर वह यह भी चाहता है कि अपने शिक्षार्थियों को सामाजिक यथार्थ से परिचित कराते हुए उन्हें इसके प्रति आलोचनात्मक चिन्तन की क्षमता से युक्त करे। वह विद्यार्थियों में ऐसी कुशलताओं का विकास करे जिससे वे अपने दैनन्दिन परिवेश में एक समाज वैज्ञानिक की तरह सक्रिय रहें। उसके विद्यार्थी एक स्वायत्त विचारक और कर्ता की पहचान के साथ न केवल कक्षा में योगदान करें, बल्कि कक्षा के बाहर भी समानता, न्याय और बन्धुत्व जैसे मूल्यों को अपने व्यवहार में उतारते हुए न्याय-आधारित समतामूलक समाज की ओर उन्मुख हों। इस आकर्षक परिकल्पना को साकार करने का प्रयत्न स्वाभाविक रूप से इन सवालों को जन्म देता है कि कक्षा चर्चा में किताबों के अतिरिक्त किन अधिगम संसाधनों का प्रयोग किया जाए? इनके द्वारा कक्षा चर्चा में विद्यार्थियों की भागीदारी को कैसे बढ़ाया जाए? कैसे आकलन किया जाए कि उन्होंने अपेक्षित अवधारणाओं को सीख लिया है? ये शिक्षणशास्त्रीय प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं लेकिन तब तक अधूरे हैं जब तक शिक्षक यह सवाल नहीं करता कि क्या उसने सामाजिक सच्चाइयों को अपनी कक्षा में स्थान दिया? क्या उसने अपने विद्यार्थियों के अनुभव वैविध्य को सीखने का संसाधन बनाया? क्या इसके मार्फ़त उसने हाशिए के समूहों की आवाज़ों को कक्षा का हिस्सा बनाया? कहीं उसके द्वारा कक्षा में दी गई प्रस्तुति सामाजिक सच्चाइयों के बारे में आदर्शवादी और यूटोपियन उपदेश तक तो सीमित नहीं है? जब शिक्षक ऐसे सवालों पर विचार आरम्भ करते हैं तो वे किताब, पाठ्यक्रम और परीक्षा के 'रुटीन' के साथ यह भी विचार करते हैं कि वे और उनके विद्यार्थी समाज की सच्चाइयों को देखने और उनसे टकराने के क़ाबिल कैसे बनें?

इस लेख में ऐसे ही एक प्रयोग की विवेचना की गई है जहाँ लेखक ने सामाजिक विज्ञान की शिक्षिका के साथ मिलकर विद्यार्थियों के अनुभव वैविध्य को ध्यान में रखते हुए ‘मानव संसाधन’ प्रकरण का शिक्षण किया। इस लेख में कक्षा शिक्षण के जिस आख्यान की चर्चा की गई है, वह दिल्ली के उत्तरी ज़िले में स्थित एक सरकारी विद्यालय का है।

इस विद्यालय की कक्षा आठ में सामाजिक विज्ञान विषय के अन्तर्गत ‘मानव संसाधन’ प्रकरण पढ़ाया गया। विद्यालय की शिक्षिका ने स्वेच्छा से इस अध्ययन में सहभागिता की। इस कक्षा में कुल तीस विद्यार्थी थे। अधिकांश विद्यार्थी दिल्ली के बाहर के राज्यों से आए प्रवासी परिवारों से सम्बन्धित थे, जिनके अभिभावक निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों से आते थे। इन विद्यार्थियों में 14 से 16 साल की आठ लड़कियाँ और बाईस लड़के थे। इस लेख में दो क्रियाकलापों पर विस्तृत चर्चा करते हुए उनके निहितार्थों को प्रस्तुत किया गया है।



चित्र : हीरा धुर्वे

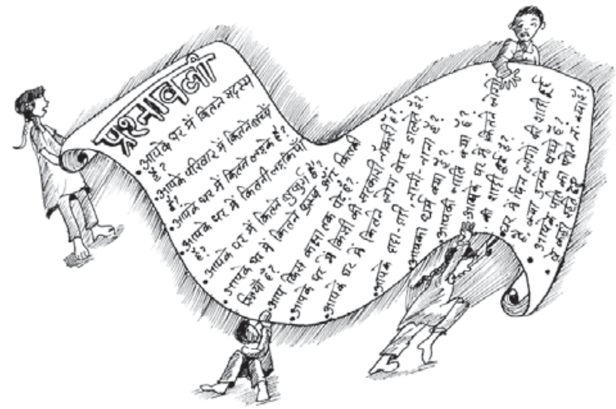
क्रियाकलाप 1 : जनगणना के लिए प्रश्नावली निर्माण

कक्षा को प्रारम्भ करते हुए शिक्षक ने विद्यार्थियों के सामने एक काल्पनिक स्थिति प्रस्तुत की। उन्होंने निर्देशित किया कि मान लीजिए, कक्षा के विद्यार्थियों को अपने मोहल्ले की जनगणना करनी है। वे इस कार्य को कैसे करेंगे? कक्षा में इस तरह से अधिगम समस्या की प्रस्तावना विद्यार्थियों को अधिकार सौंपती है कि वे ख़ुद को समर्थ मानते हुए समाधान के लिए एक योजना बनाएँ। विद्यार्थियों ने इस अधिकार का बख़ूबी उपयोग किया। उनके द्वारा ही यह प्रस्ताव आया कि वे इस कार्य को प्रश्नावली के द्वारा करेंगे। उन्होंने इसके दो कारण प्रस्तुत किए। सबसे पहले, विद्यार्थियों ने अपने दैनिक जीवन से उदाहरण देते हुए इस प्रकार के सर्वेक्षण के अवलोकनकर्ता और प्रतिभागी होने का अनुभव साझा किया। दूसरा, उन्होंने अपनी कक्षा के पूर्व के क्रियाकलापों में इस विधि के प्रयोग का सन्दर्भ दिया। इसी तरह, विद्यार्थियों ने यह निर्णय लिया कि वे इस कार्य को समूह में करेंगे क्योंकि ‘सब मिलकर करेंगे तो आसान हो जाएगा’; ‘सबके प्रश्न मिलाकर बढ़िया प्रश्नावली बनाएँगे जिससे ज़्यादा लोगों की जनगणना कर लेंगे’। विद्यार्थियों की प्रस्तुत कार्ययोजना दर्शाती है कि वे प्रस्तावित अधिगम समस्या को एक वास्तविक समस्या मान रहे हैं और उसके लिए ऐसी योजना का विकास कर रहे हैं जो वैयक्तिक प्रयास के बदले समूह के प्रयास पर आधारित है। इससे कक्षा को सीखने वालों के समुदाय के रूप में भी स्थापित करने में मदद मिलती है। इसी अधिगम

परिवेश के अनुरूप विद्यार्थियों ने अपने-अपने समूहों में प्रश्नावली बनाई।

प्रत्येक समूह द्वारा बनाई गई प्रश्नावली के आरम्भ में परिवार के सदस्यों से जुड़े प्रश्न थे। उदाहरण के लिए, आपके घर में कितने सदस्य हैं? आपके परिवार में कितने बच्चे हैं? आपके घर में कितने लड़के हैं? आपके घर में कितनी लड़कियाँ हैं? आपके घर में कितने बुज़ुर्ग हैं? आपके घर में कितने पुरुष और कितनी स्त्रियाँ हैं? आप किस कक्षा तक पढ़े हैं? आपके घर में किसी की सरकारी नौकरी है? आपके घर में कितने लोग वोट डालते हैं? आपके दादा-दादी, नाना-नानी हैं? आपका धर्म क्या है? आपकी जाति क्या है? आपके घर में कितने लोगों की शादी हुई है? घर में जिन लोगों की शादी हुई है, क्या उनके बच्चे हैं? आपके पति का फ़ोन नम्बर क्या है? वे कहाँ रहते हैं? आपका बाल विवाह हुआ है या नहीं?

इन प्रश्नों से स्पष्ट है कि विद्यार्थी लिंग, आयु, व्यवसाय और शिक्षा के स्तर पर जनसंख्या को वर्गीकृत करने का प्रयास कर रहे हैं। विशेष यह है कि उनके लिए धर्म और जाति भी जनसंख्या के वर्गीकरण के आधार हैं। जबकि किताब में जनगणना के सम्प्रत्यय पर चर्चा करते हुए उसमें जाति और धर्म को जनसंख्या की विशेषताओं के अन्तर्गत नहीं रखा गया, लेकिन कक्षा विमर्श में ये मुद्दे प्रकट हुए। इसे पाठ्यान्तर समझकर छोड़ देना सरल, लेकिन घातक रास्ता है जो विद्यार्थियों के पूर्वग्रह और रूढ़ियों को ही पुनरुत्पादित करता है। जब विद्यार्थियों से पूछा गया कि वे जाति और धर्म को इतना महत्त्वपूर्ण कारक क्यों मानते हैं, तो एक विद्यार्थी का उत्तर था, “सर, वजीफ़ा लेने के लिए जाति प्रमाण-पत्र बनवाना होता है, इसलिए जाति जानना ज़रूरी है।” एक अन्य कारण दिया गया, “सर, सरकार इसके (धर्म) आधार पर योजनाएँ बनाती है इसलिए जानना ज़रूरी है।” इस तर्क की पुष्टि के लिए उदाहरण



चित्र : हीरा धुर्वे

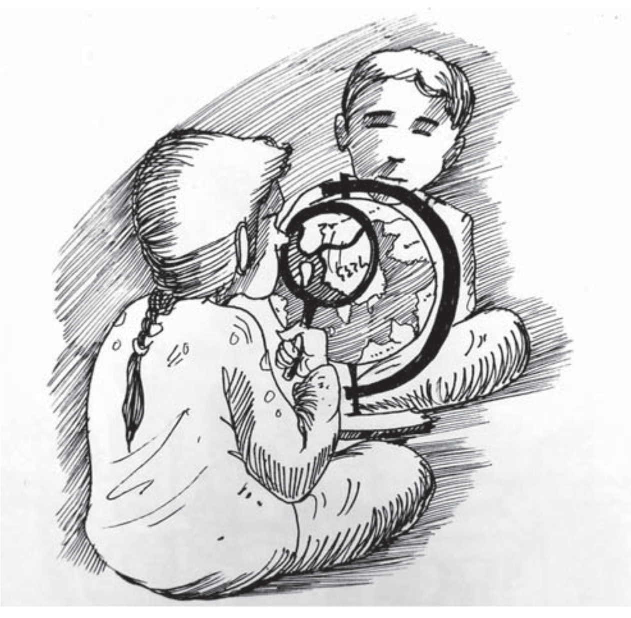
पूछे जाने पर उसने बताया कि उसके गाँव में मुस्लिम बुनकरों को कर्ज़ में छूट दी गई थी। विद्यार्थियों की उक्त दोनों प्रतिक्रियाएँ जाति और धर्म जैसी सामाजिक अस्मिताओं की ‘औपचारिक’ स्वीकृति का परिणाम हैं।

इस चर्चा के दौरान एक अन्य विद्यार्थी का कथन था, “हर व्यक्ति का एक धर्म और एक जाति होती है। इससे उसके पूर्वजों के बारे में पता चलता है।” स्पष्ट है कि वह इसे केवल संज्ञा के रूप में नहीं देख रहा है, बल्कि इससे सामाजिक अन्तःक्रिया में कैसे फ़र्क़ पैदा होता है, इसे भी संज्ञान में ले रहा है। इसी का परिणाम है कि जब कक्षा में चर्चा की गई कि क्या किसी की जाति और धर्म से आपको फ़र्क़ पड़ता है तो प्रथमदृष्टया विद्यार्थियों ने सहमति व्यक्त की कि ज़माना बदल रहा है, अब फ़र्क़ नहीं पड़ता। यहाँ रेखांकित करने वाला शब्द ‘अब’ है। इसका मतलब है कि पहले फ़र्क़ पड़ता था। इस विषय पर विद्यार्थियों ने अपने गाँवों से कुछ उदाहरण दिए जो जाति और धर्म के आधार पर विभेद को व्यक्त करते थे। इसी क्रम में विद्यार्थियों ने बदलते ज़माने का संकेतक देते हुए कहा कि अब छोटी जाति के लोग भी अमीर हो गए हैं। कुछ विद्यार्थियों ने इसी विचार श्रृंखला में जोड़ा

कि 'बड़ी जाति' के लोग भी 'छोटी जाति' का काम करते हैं। यहाँ अवलोकनीय है कि जाति का बड़ा और छोटा होना उनके विचारों में उपस्थित है। इससे वे आर्थिक स्थिति और व्यवसाय के निष्कर्ष भी निकाल रहे हैं। इसे वे ऐसे लेंस की तरह देख रहे हैं जो सामाजिक अन्तःक्रियाओं का योजक और विभाजक, दोनों है। सम समूह की स्थिति में उक्त सामाजिक आयाम योजक हैं, जबकि विषम समूह की स्थिति में ये विभाजक की भूमिका निभाते हैं। भारतीय सन्दर्भ में दूसरी स्थिति घातक है। इसे केवल 'सराहना' और 'जागरूकता' कहकर टाल नहीं सकते हैं। इसके लिए किताबी दुनिया के बाहर उपस्थित ख़बरों, आख्यानों और मिथकों पर आलोचनात्मक मनन आवश्यक है। यह कार्य हमारी कक्षाओं में होना चाहिए।

विद्यार्थियों की प्रश्नावली में कुछ रोचक प्रश्न बाल विवाह पर भी थे। इसपर चर्चा के दौरान एक विद्यार्थी ने कहा, "पहले के ज़माने में बाल विवाह होते थे।" उसके इस कथन के पूरे होने के साथ दूसरे विद्यार्थी की आवाज़ आई, "सर, आज भी मेरे गाँव में बाल विवाह होता है।" एक अन्य विद्यार्थी ने बाल विवाह पर आधारित टीवी धारावाहिक का उदाहरण दिया। छात्रों के अनुसार, बाल विवाह का कारण लड़कियों का विद्यालय न जाना है, जिससे 'वे घर पर ख़ाली रहती हैं और घर वाले शादी कर देते हैं'; जबकि लड़कियों के अनुसार बाल विवाह का कारण 'मजबूरी है क्योंकि उमर बढ़ जाने पर दहेज़ देना होता है'। कक्षा से पूछा गया कि बाल विवाह का क्या अर्थ होता है? एक विद्यार्थी ने बताया, "जब लड़की की उम्र 18 साल से कम हो और उसकी शादी कर दी जाए।" पूरक प्रश्न जब लड़के की उम्र को लेकर पूछा गया तो आयु सीमा 18 वर्ष ही बताई गई। यहाँ उन्हें सही सूचना प्रदान करते हुए उल्लेख किया गया कि लड़के की आयु 21 और लड़की की 18 वर्ष होनी चाहिए।

बाल विवाह के होने और उसके कारण को देखें तो छात्र और छात्राओं के प्रत्यक्षण में अन्तर का पता चलता है। यह अन्तर पितृसत्ता को खाद-पानी देता है। यदि हम पितृसत्ता की जकड़ को कमज़ोर करना चाहते हैं तो हमें प्रत्यक्षण में उक्त अन्तर को कक्षा में गहन संवाद का माध्यम बनाना होगा। सम्बन्धित शिक्षक ने ऐसा ही किया। जब विद्यार्थियों से पूछा गया कि यदि उनका विवाह कर दिया जाए तो? विद्यार्थियों ने इस काल्पनिक स्थिति को स्वीकार नहीं किया और इसके कुछ कारण बताए, मसलन 'अभी हम पढ़ रहे हैं', 'कुछ बन जाएँगे तब करेंगे', 'मेरे माता-पिता चाहते हैं कि मैं अपने पैर पर खड़ी होऊँ', 'ऐसा गाँव में होता है' आदि। विद्यार्थियों के जवाब शिक्षा की भूमिका को दर्शाते हैं जो व्यक्ति में कर्ता भाव का पोषण कर रही है। इसके साथ विद्यार्थियों ने सामाजिक बदलाव को भी इंगित किया कि 'माता-पिता ऐसा नहीं चाहते'। फिर भी, इस सवाल का उत्तर आना शेष



चित्र : हीरा धुर्वे

रह गया था कि जिनका आज भी बाल विवाह हो रहा है, वहाँ क्या कारण हैं? इस प्रश्न पर कक्षा के उत्तर 'ग़रीबी' को मुख्य कारण बता रहे थे, लेकिन कुछ छात्राओं ने इसे महिला हिंसा के सापेक्ष बताया। इन छात्राओं का मानना था कि सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से लड़कियों का विवाह कम उम्र में कर दिया जाता है। इनका यह भी मानना था कि ऐसी प्रवृत्ति गाँव में अधिक है। आप देख सकते हैं कि कैसे साफ़गोई से ये छात्राएँ सामाजिक सच्चाइयों के आख्यान को कक्षा में रख रही हैं। इन्हें दरकिनार नहीं किया जा सकता है। इन्हें ऐसे ताक़तवर कर्ता की भूमिका के लिए तैयार करना है जो समानुभूति के भाव के साथ सामाजिक बदलाव में भूमिका निभाएँ।

दूसरे प्रकार के प्रश्नों में सम्पत्ति से जुड़े प्रश्न थे : आपका घर कितने गज बड़ा है? आपके घर में संचार के कितने साधन हैं? आपके घर में कितने कमरे हैं? आपके पास कोई वाहन है? क्या आपका अपना घर है? घर में पीने का पानी कहाँ से आता है? आपके घर में टीवी, फ्रिज, कूलर है? आपके घर में शौचालय है या नहीं? आपके घर में शौचालय भारतीय शैली का है या पाश्चात्य? इस प्रकार के प्रश्नों का औचित्य सिद्ध करते हुए बताया कि 'घर से, रहने से, हैसियत पता चलती है इसलिए घर के बारे में सूचना माँगी गई है'। इससे यह भी पता चलेगा कि किसके पास राशनकार्ड और वोटर आईडी है? कितने किराएदार हैं? कितने लोगों के पास घर नहीं है? विद्यार्थियों की यही समझ उन प्रश्नों में भी देखी जा सकती है, जहाँ उन्होंने घर की गुणवत्ता को जानने के लिए शौचालय, पानी और बिजली से जुड़े सवाल बनाए थे। उपभोग की वस्तुओं से सम्बन्धित सवालों का औचित्य सिद्ध करते हुए विद्यार्थियों का कहना था, "सर, बिज़नेस कई प्रकार का होता है। कोई रेहड़ी लगाता है तो वो भी बिज़नेस कर रहा है। कोई बड़ी दुकान वाला है तो वो भी बिज़नेस कर रहा है। जब हम पूछेंगे कि सामान कहाँ से ख़रीदते हैं, किस ब्रांड का ख़रीदते हैं तो पता चलेगा कि कितने अमीर हैं या ग़रीब। विद्यार्थी सम्पत्ति के आकलन के लिए घर और उसकी विशेषताओं को संकेतक मान रहे हैं। इसके अलावा, वे जनसंख्या की विशेषता के रूप में किराएदारों की मौजूदगी को भी उभार रहे हैं। यह प्रवृत्ति उनके दैनिक सामुदायिक विमर्श का हिस्सा है जिसे संज्ञान में लेते हुए चर्चा का हिस्सा बनाया गया। इस प्रकरण में रेखांकित करने वाला तथ्य यह है कि यदि वे सार्वजनिक सुविधाओं और राज्य के विविध तंत्रों के ज़मीनी क्रियान्वयन की हक़ीक़त से परिचित हैं, तो उसे कक्षा में कैसे स्थान दिया जाए? कैसे उन्हें मकान मालिक और किराएदार जैसे नए पदानुक्रम के बारे में मनन का अवसर दिया जाए? इन सामाजिक सच्चाइयों के बीच आलोचनात्मक चिन्तन करने वाले विद्यार्थियों को तैयार करेगा। वे पहचान और हैसियत का वर्गीकरण मात्र नहीं करेंगे, बल्कि उनमें निहित कारणों की पड़ताल भी करेंगे।

क्रियाकलाप 2 : परिवार का मौखिक इतिहास

सम्बन्धित पाठ्यपुस्तक में प्रवासन को जनसंख्या परिवर्तन को प्रभावित करने वाले कारक के रूप में बताया गया है। इसमें यह सूचना भी दी गई है कि लोग आर्थिक अवसरों, शिक्षा और स्वास्थ्य की तलाश में एक स्थान से दूसरे पर चले जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्राज्यीय प्रवास के कारणों की चर्चा की गई। प्रस्तुत प्रयोग के अन्तर्गत शोध के सहभागी विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि के अनुरूप विद्यार्थियों को अपने परिवार के मूल स्थान (ग्रामीण परिवेश) से जुड़े अनुभव साझा करने को कहा गया। कक्षा के सम्मुख समस्या रखी गई कि क्या उन्हें अपने परिवार के मूल स्थान से नगर आने के इतिहास के बारे में जानकारी है? कुछ विद्यार्थियों ने जानकारी को साझा करने का प्रयास किया। इन जानकारियों के आधार पर कक्षा के विद्यार्थियों को अपने-अपने परिवार का इतिहास जानने का सुझाव दिया गया। कक्षा ने इस सुझाव को

स्वीकार किया। इस इतिहास को जानने का स्रोत विद्यार्थियों द्वारा अपने परिवार के सदस्यों, विशेष रूप से बुज़ुर्गों, को बताया गया। इस इतिहास को जानने के लिए विद्यार्थियों ने प्रश्नों का सुझाव दिया। इन प्रश्नों को ब्लैकबोर्ड पर लिखा गया। तदुपरान्त इन प्रश्नों का सन्दर्भ लेते हुए उन्हें 'अपने परिवार के दिल्ली आने के इतिहास' की खोज करने के लिए प्रश्नावली बनाने को निर्देशित किया गया। विद्यार्थियों ने अपने परिवार के इतिहास को जानने के लिए साक्षात्कार प्रश्नावली तैयार की। इस प्रश्नावली के प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से विद्यार्थियों ने अपने परिवार के दिल्ली प्रवासन के मौखिक इतिहास को जाना। ये आख्यान वयस्क और बच्चों की अन्तःक्रिया के रूप में शिक्षणशास्त्रीय विमर्श को दिखाते हैं जहाँ विद्यालय की संस्थागत औपचारिकताएँ मौजूद नहीं थीं। ये मौखिक इतिहास ही कक्षा चर्चा के लिए शिक्षण सामग्री बने।

अगले कालांश में सभी विद्यार्थी अपने-अपने साक्षात्कार के साथ चर्चा के लिए तैयार थे। उनसे कहा गया कि वे चार-चार के समूहों में बैठ जाएँ और साक्षात्कारों के प्राप्त उत्तरों पर बातचीत करते हुए अपने-अपने परिवार के इतिहास की परस्पर तुलना करें। इसके बाद इन्हीं प्रश्नों पर पूरी कक्षा के साथ भी चर्चा की गई। इस चर्चा में उभरकर आया कि अधिकतर परिवार उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड और राजस्थान से आए हैं।

प्रवास के महत्त्वपूर्ण उत्प्रेरक आर्थिक परिस्थितियाँ, परिवार के साथ आना, देश का विभाजन (पाकिस्तान से आना), आदि बताए गए। यहाँ ध्यान देने योग्य यह रहा कि विद्यार्थियों ने जो साक्षात्कार लिया, उसमें लिखा था :

"मैं नौकरी खोजने दिल्ली आया।"

'मैं ताऊजी के साथ धन्धा करने आया।' (यहाँ 'मैं' विद्यार्थी के अभिभावक द्वारा प्रयुक्त है।)

विद्यार्थियों ने कक्षा में इसी बात को रखते हुए कहा कि वे आर्थिक कारणों से दिल्ली आए। इसी प्रकार एक विद्यार्थी ने कहा, "दिल्ली में संसाधन अधिक थे इसलिए उनका परिवार यहाँ आया।" इन उदाहरणों में दैनिक ज्ञान से अकादमिक ज्ञान में रूपान्तरण को पहचाना जा सकता है। एक छात्रा ने सवाल उठाया, "मेरा घर तो दिल्ली में है और मैं पैदा भी दिल्ली में ही हुई हूँ। क्या मैं भी प्रवासी हूँ?" उसके इस प्रश्न ने कक्षा में एक नई बहस का अवसर दिया। अब कैसे तय किया जाए कि वह प्रवासी है या नहीं? इस समस्या पर जब अन्य विद्यार्थियों को राय देने को कहा गया तो इस प्रकार के विचार प्रकट हुए :

विद्यार्थी 1 : "वह दिल्ली में पैदा हुई है इसलिए वह प्रवासी नहीं है।"

विद्यार्थी 2 : "लेकिन उसके दादा तो बाहर से आए थे।"

विद्यार्थी 3 : "सर, पूछिए कि जन्म प्रमाण-पत्र कहाँ का है?"



चित्र : हीरा धुर्वे

शिक्षक : "जन्म प्रमाण-पत्र से क्या मतलब?"

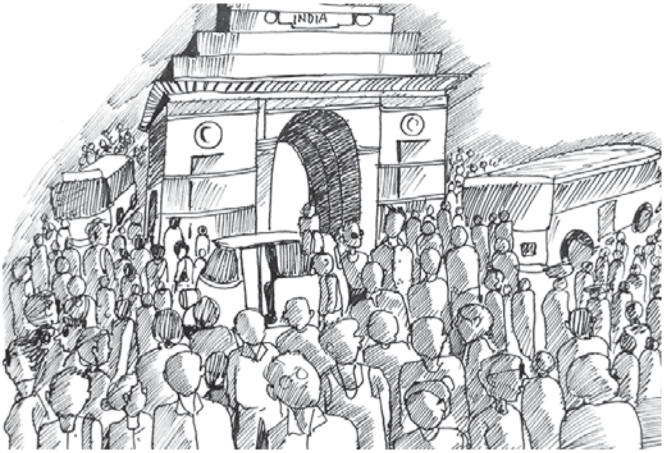
विद्यार्थी 3 : "अरे सर, वही जो एडमिशन के समय देते हैं।"

शिक्षक : "आपको अपने दोस्तों की राय से क्या लगता है?"

छात्रा चुप रहती है। थोड़ी देर बाद बोलती है। "सर, मैं तो यहीं पैदा हुई हूँ लेकिन मेरा परिवार प्रवासी है।"

उपर्युक्त संवाद से स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की बातचीत से उन्हें सोचने के लिए नए प्रश्न मिले। इन प्रश्नों के उत्तरों की खोज ने ज्ञान के सह-निर्माण के अवसर दिए। कक्षा चर्चा में यह भी सामने आया कि लोग अधिकांशतः उन्हीं स्थानों पर प्रवास करते हैं, जहाँ उनके जानने वाले या रिश्तेदार रहते हैं। कुछ बच्चों ने अपने आख्यान में एक से अधिक महानगरों में प्रवासन के बारे में भी साझा किया। जैसे– पिता पहले मुम्बई गए थे बाद में दिल्ली आ गए। साथ ही दिल्ली के भीतर भी एक उपनगर से दूसरे उपनगर के प्रवासन पर बात की। 'धन्धा करने', 'गाड़ी सीखने', 'घर से ग़ुस्सा होकर आने', 'पाकिस्तान से आने', 'दिल्ली घूमने के लिए आने और रुक जाने' की कहानियाँ भी प्रकाश में आईं। एक बात उभरकर आई कि दूसरी पीढ़ी के प्रवासी दिल्ली के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतीकों के आत्मसातीकरण को अपनी पहचान से जोड़कर बता रहे थे। इसके लिए इन्होंने अपनी भाषा, खान-पान की आदतों और दिल्ली के महानगरीय प्रतीकों का उदाहरण दिया। विद्यार्थियों ने दिल्ली की जनसंख्या के बढ़ने में प्रवास की भूमिका को पहचाना और उसपर चर्चा की। यह सवाल भी उठाया कि अगर ग़रीब गाँवों से चलकर दिल्ली आ जाता है तो अमीर लोग कहाँ जाते हैं? क्या वे विदेश चले जाते हैं? इस दिशा में बच्चों का सोचना प्रवास की संकल्पना की इस मान्यता की ओर इशारा करता है कि स्थान का आकर्षण प्रवास का प्रेरक होता है।

जनसंख्या में परिवर्तन को प्रेरित करने वाले कारक के रूप में प्रवास को विद्यार्थी किस प्रकार समझते हैं, इसका उदाहरण यहाँ देख सकते हैं। "मेरे पापा बताते हैं कि हमारी कॉलोनी में पहले बहुत कम लोग थे। वहाँ कोई आकर रहना नहीं चाहता था लेकिन आज पूरी कॉलोनी आबादी से भर गई है।" यहाँ 'आबादी' का प्रयोग प्रमाण है कि विद्यार्थी दैनन्दिन ज्ञान को विषय ज्ञान से जोड़ रहा है। विद्यार्थियों ने एक ओर जहाँ प्रवास की सम्भावनाओं को उभारा, वहीं चुनौतियों को भी वे स्वयं कक्षा में ले आए। कक्षा के एक विद्यार्थी ने प्रवास के इसी पक्ष को सामने रखते हुए बताया कि उसके घर के पास चाय की दुकान पर एक लड़का काम करता है। वह अपने घर से अकेले दिल्ली आया और दिल्ली में 'अपने गाँव के चाचा' के यहाँ रहता है। जैसे ही कक्षा में यह आख्यान सामने आया, एक अन्य विद्यार्थी ने साझा किया कि उसके पापा की दुकान पर भी गर्मियों की छुट्टियों में काम करने के लिए लड़के आते हैं। ये आख्यान सामाजिक यथार्थ को कक्षा का हिस्सा बनाने का माध्यम बने। विशेष रूप से, बाल श्रम जैसी समस्या का कक्षा चर्चा में समावेश हुआ। इस क्रियाकलाप की एक विशेषता यह रही कि विद्यार्थियों ने एक समाज वैज्ञानिक की तरह पता लगाया कि लोग प्रवास क्यों करते हैं। साथ ही, प्रवास किस प्रकार जनसंख्या परिवर्तन से सम्बन्धित है, और प्रवास के मूल में निहित सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक कारण कौन-से हैं? बच्चों के विचारों के उत्स अनेक स्रोतों से जुड़े हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत परिवार के वयस्कों द्वारा बताया गया इतिहास है, जिससे चर्चा प्रारम्भ हुई और जो उनके दैनिक ज्ञान का हिस्सा है। इसी प्रकार, वे मीडिया का भी सन्दर्भ लेते हैं और विज्ञापन व फ़िल्मों की चर्चा करते हैं। कक्षा चर्चा के दौरान विद्यार्थियों से जब इस सवाल पर चर्चा की गई कि क्या वे अपने मूल स्थान को वापस जाना चाहेंगे, एक विद्यार्थी ने सूचनात्मक अन्दाज़ में बताया, "एक फ़िल्म में शाहरुख ख़ान विदेश से अपने गाँव आ गया था।" इसी प्रकार, एक अन्य विद्यार्थी



चित्र : हीरा धुर्वे

कक्षा में शिक्षक की भूमिका अवधारणाओं और परिघटनाओं को जानने, तर्क करने, दैनिक जीवन में उनकी खोज करने, तुलना करने, आदि संज्ञानात्मक क्रियाओं को उत्प्रेरित और निर्देशित करने वाले की है। इसी माध्यम से विद्यार्थियों के परिवार, समुदाय, लोकप्रिय प्रचार माध्यमों से उत्पन्न विमर्शों को कक्षा में सम्मिलित किया गया। इसके अलावा, यह भी देखा जा सकता है कि ऐसे सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक

ने कहा, "सर, लड़की मुंबई जाती है और फ़ोन पर अपना घर मम्मी-पापा को दिखाती है।" वे स्कूल के विमर्श की भी मदद लेते हैं और 'आबादी की समस्या', 'संसाधनों के कारण दिल्ली आने' जैसी बातें कहते हैं। विद्यार्थियों की उक्त प्रतिक्रियाएँ प्रमाण हैं कि वे मीडिया की छवियों को भी अपने परिवेश से जोड़कर देख रहे हैं। इस माध्यम में सामाजिक सच्चाई की प्रस्तुति उनके लिए जानकारी का स्रोत है, लेकिन इसे भी प्रश्नांकित करने की आवश्यकता है। ऐसा करने पर ही काल्पनिक प्रस्तुति और ज़मीनी सच्चाई के बीच अन्तर के प्रति उन्हें सचेत किया जा सकेगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना एक ऐसी अधिगम संस्कृति के आख्यान को प्रस्तुत करती है जिसमें कक्षा में दैनन्दिन और विषय ज्ञान की उपलब्धता, शिक्षक एवं विद्यार्थी में संवाद-आधारित अन्तःक्रिया और शिक्षक के सतत सहयोग (स्कैफ़ोल्डिंग) से ज्ञान का सह-निर्माण हो रहा है। इन क्रियाकलापों द्वारा संचालित कक्षा में किताब के साथ-साथ विद्यार्थियों की आनुभविक दुनिया भी उपस्थित है जो चर्चा की सामग्री को समृद्ध कर रही है। इसी कारण विद्यार्थी अपने परिवेश की परिघटनाओं को एक समाज वैज्ञानिक की दृष्टि से देखने, समझने और जानने का प्रयास कर रहे हैं।

मुद्दों, जो हमारे परिवेश में प्रासंगिक हैं और एक नागरिक की भूमिका में आलोचनात्मक चिन्तन की अपेक्षा करते हैं, के प्रति विद्यार्थी सचेत हैं। इसी कारण वे बढ़ती जनसंख्या, शिक्षा के अवसरों की उपलब्धता, प्रवासन और बाल श्रम जैसे मुद्दों पर विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। यद्यपि उनके विचार इन मुद्दों के प्रति वैयक्तिक राय हैं, लेकिन वे इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण हैं कि इनसे वृहत्तर समुदाय का परिप्रेक्ष्य कक्षा विमर्श का हिस्सा बनता है। इसे आधार बनाते हुए कक्षा में 'बताने और अपनाने' के बदले 'मनन और सम्प्रेषण' के उपागम को अपनाया गया।

ऐसे छोटे प्रयोगों के आधार पर बड़े दावे नहीं किए जा सकते हैं। हाँ, इतना ज़रूर है कि विद्यार्थियों में सामाजिक सच्चाइयों को देखने की दृष्टि और उन्हें बदलने की तत्परता को पोषित किया जा सकता है। इस लेख में जिन दो कक्षा प्रकरणों की चर्चा की गई, उनसे इतना तो स्पष्ट है कि उच्च प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता और विभेद के विभिन्न आधारों से परिचित हैं। वे इससे सम्बन्धित अनुभवों और प्रत्यक्षणों को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं। कक्षा में उनके अनुभवों और प्रत्यक्षणों पर मनन का अवसर देने और उनपर बातचीत करने से न केवल उनके पूर्वाग्रह को सम्बोधित

किया जा सकता है, बल्कि इसके माध्यम से उन्हें अवसर दिया जा सकता है कि वे वैश्वीकरण और नवउदारवाद के प्रभाव में परिवारों और समुदायों में हो रहे बदलावों को संज्ञान में लें। वे अपने परिवेश में बढ़ती सांस्कृतिक विविधता की सराहना करते हुए उसके प्रति सकारात्मक दृष्टि रखें और लोक नीतियों के प्रति आलोचनात्मक मनन करते हुए इनके क्रियान्वयन में निहित वर्चस्व और विचारधारा के पहलुओं के प्रति सचेत रहें।

अकसर ऐसे शिक्षण प्रयोगों को विचारधारा विशेष से जोड़कर देखा और पढ़ा जाता है। ऐसे पाठक ख़ुद को किताबी ज्ञान, परिभाषा, तथ्य और आँकड़ों तक सीमित रखकर तटस्थता की मान्यता को बनाए रखना चाहते हैं। यहाँ उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यचर्या, किताबें और अन्य अधिगम सामग्रियाँ कभी भी अराजनीतिक और वैचारिक दृष्टि से तटस्थ नहीं होतीं। ऐसी स्थिति में उनकी तटस्थता उस विश्व दृष्टि का समर्थन है जिसे किताबों एवं अन्य संचार माध्यमों में प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ में शिक्षक पाठक की बात भी करें तो, शिक्षक केवल तकनीकी कुशलता द्वारा पाठ्यचर्या के ज्ञान को वैध मानने वाला कर्ता नहीं है। उसकी भूमिका ख़ुद को और अपने विद्यार्थियों को इतना सक्षम बनाने की है कि वे 'ज्ञान' को प्रश्नांकित कर सकें, विस्तार दे सकें और ज्ञान की वस्तुनिष्ठता के नाम पर उपेक्षित वैकल्पिक और हाशिए के स्वरों को पहचान सकें। हमें ध्यान रखना होगा कि कक्षा में केवल सराहना और जागरूकता से काम नहीं चलेगा। कक्षा और विद्यालय के अभ्यासों, परिवेश और समुदाय की आलोचना करने और बदलने की तत्परता आवश्यक है। यह बदलाव की आकांक्षा किसी बड़े आन्दोलन या समर्थन की माँग नहीं करती। इसके लिए तो कक्षा ऐसी लघु दुनिया है, जहाँ विद्यार्थियों को बराबरी का स्थान देकर समता, न्याय और लोकतंत्र का अभ्यास किया जा सकता है। ऐसे अभ्यास में आनुभविक ज्ञान का तात्पर्य किताब के अतिरिक्त ऐसी सूचनाओं की माँग करना नहीं है जो परिवार, समुदाय और मीडिया द्वारा प्रसारित हों। इसमें उस भोगे हुए यथार्थ को सम्मिलित करना आवश्यक है, जिसमें मनो-सामाजिक पक्ष महत्त्वपूर्ण है। इससे हम उन अनुभवों और आख्यानों से परिचित होते हैं जो अनसुने रह गए थे। इस तरह से एक विषय या प्रकरण को विविध दृष्टियों से देखने का अवसर मिलता है। ये विविधता वैयक्तिकता के स्थान पर सामुदायिकता को पोषित करती है और अन्ततः समुदाय द्वारा समस्याओं की पहचान और समाधान पर मनन, बदलाव का माहौल तैयार करती है, जिसकी शुरुआत कक्षा से होती है।

ऋषभ कुमार मिश्र महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के शिक्षा विभाग में प्राध्यापक हैं। शिक्षा और समाज से जुड़े विषयों पर लेखन में सक्रिय हैं। इन्होंने केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय से 'बच्चों की सामाजिक विज्ञान की समझ' विषय पर शोध कार्य किया है।

सम्पर्क : rishabhrkm@gmail.com

स्कूली शिक्षा में भाषा का आकलन
सार्थक तरीक़े अपनाने की ज़रूरत

माया मौर्य

यह लेख आकलन पर केन्द्रित है। लेखिका कहती हैं कि सीखने के दौरान किया गया सार्थक आकलन बेहतर सीखने में बच्चों की मदद करता है। कक्षा में उपयोग किए गए आकलन के तरीक़ों के उदाहरण वे इस लेख में देती हैं और यह दर्शाती हैं कि उपयोग में लिए गए इन तरीक़ों ने बच्चों की विभिन्न क्षमताओं को जान पाने में उनकी मदद की। यह उनके लिए काफ़ी मददगार रहा क्योंकि तब वे बच्चों के आगे सीखने के लिए नई गतिविधियाँ व अभ्यास सोच पाईं। -सं.

प्रेमपाल शर्मा अपनी किताब *शिक्षा, भाषा और प्रशासन* में कहते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य बालक को एक बेहतर इंसान बनाना है। ऐसा इंसान जिसके जीवन और आचरण में सबके लिए बराबरी का भाव हो, जो मेहनत और क़ाबिलियत के बलबूते कमा और खा सके, जो संवेदनशील हो, तर्कशील हो और वैज्ञानिक सोच रखता हो। ऐसा नागरिक तैयार करना है, जो हर काम को बराबर सम्मान से देखे व समझे।

तर्कशीलता, वैज्ञानिक सोच, मानवीय मूल्य और जीवन के लिए ज़रूरी संवाद का कौशल अगर शिक्षा के व्यापक लक्ष्य हैं तो इन्हें हासिल करने और अधिगम कर्ता इस दिशा में कितना काम कर पा रहे हैं, यह सही से समझ पाने के लिए हमें आकलन के तरीक़ों पर नए तरीक़े से सोचने और समझने की ज़रूरत भी है।

मूल्यांकन की आम प्रक्रिया

जैसा कि हम सभी जानते हैं, अधिकांश स्कूलों में मूल्यांकन की प्रक्रिया तीन भागों में होती है : त्रैमासिक, अर्धवार्षिक और वार्षिक। इस मूल्यांकन प्रक्रिया में, बच्चे के सीखने की गति व पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु में मेल है या नहीं, इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है। बस, हर जाँच के लिए तय किए गए पाठों के प्रश्न और उत्तर वग़ैरह तय समय-सीमा तक पूरे हो जाने चाहिए, ताकि शिक्षक तय समय पर होने वाली इन जाँचों के लिए प्रश्नपत्र बना पाएँ। बच्चे को पाठ समझ में आया कि नहीं, यह महत्त्वपूर्ण नहीं होता। महत्त्वपूर्ण यह होता है कि तय पाठ्यक्रम पूरा हो जाए।

मूल्यांकन के प्रश्नपत्र को देखने पर हम पाते हैं कि उसमें अधिकांश प्रश्न पाठ्यपुस्तक-आधारित ही होते हैं। ऐसे प्रश्न होते ही नहीं हैं, जिनमें बच्चे की अभिव्यक्ति झलके, या वो अपने शब्दों में कुछ लिख सके। निबन्ध या पत्र में भी बच्चे अपनी समझ से कुछ नहीं लिख सकते। जो कक्षा में बार-बार याद करवाया हो, वही लिखना होता है। यहाँ तक कि, मित्र को भी पत्र में वही लिखना होता है जो कक्षा में लिखाया गया है।

स्कूलों में, अधिकांशतः मूल्यांकन केवल लिखित जवाबों के माध्यम से जाँचा-परखा जाता है। पर क्या यह काफ़ी है? यदि कोई बच्चा मौखिक रूप से प्रश्नों के जवाब दे सके, प्रयोगों के अवलोकन और निष्कर्ष रख सके तो क्या यह नहीं मानेंगे कि वह कुछ समझा है?

सवाल यह भी है कि क्या वाक़ई बच्चे की समझ पूरे सालभर में किसी भी दिशा में नहीं बढ़ी होगी? यह कुछ अविश्वसनीय-सा लगता है।

वयस्कों द्वारा कोई सायास प्रयास किए बिना भी, बच्चे कक्षा में बैठना, एक दूसरे से बातचीत करना, आदि तो सीखते ही हैं। यही नहीं, मेरा कई कक्षाओं का अवलोकन रहा है कि पूरी पाठ्यपुस्तक में कहाँ क्या है, यह लगभग सभी बच्चे पहले से ही जानते हैं। यह वे बच्चे भी बता देते हैं जो लिखना-पढ़ना अच्छे-से नहीं जानते। वे उन पाठों के बारे में भी जानते हैं जो पढ़ाए नहीं गए हैं, और उनको भी जो उन्हें सबसे अच्छे लगते हैं। लेकिन ऐसी विषयवस्तु कभी भी किसी जाँच का हिस्सा नहीं होती। लिखित जाँच की सीमाओं से बाहर ऐसी कई क्षमताएँ बच्चे हासिल कर लेते हैं।

इसका मतलब यह नहीं है कि बच्चे स्वतः ही सभी कुछ सीख जाएँगे। पर इसका मतलब यह है कि बच्चे जो सीख रहे हैं, उसका आकलन करते हुए आगे बढ़ा जाए। मसलन, किसी कक्षा की शुरुआत उस अध्याय से क्यों नहीं हो सकती जो बच्चों को सबसे ज़्यादा पसन्द हो! अध्याय-एक से ही शुरू करना क्यों ज़रूरी है?

सीखने-सिखाने के दौरान बच्चों को आने वाली कठिनाई को समझते हुए, उसपर उनके साथ बात करते हुए काम करना ही सीखने का बेहतर तरीक़ा है। मेरा मानना है कि, असल में आकलन यही है कि सिखाने वाला, सीखने की प्रक्रिया के दौरान यह समझता रहे कि उसके द्वारा उपयोग में लाए जा रहे सिखाने के तरीक़ों और उदाहरणों में कुछ छूट रहा है। दूसरे शब्दों में, सीखने वाले के न सीख पाने के कारणों को समझने का प्रयास और तब उन कारणों पर काम करना आकलन की प्रक्रिया का एक अहम हिस्सा है। मसलन, यदि कोई बच्चा 'मकान' को 'पकान' या 'मछली' को 'पछली' लिख रहा है, लेकिन पढ़ सही रहा है तो यह समझ आ जाता है कि वह 'म' और 'प' में ज़्यादा अन्तर नहीं कर पा रहा। और तब उसे बोलने व लिखने के लिए इन वर्णों वाले ऐसे शब्द दिए जा सकते हैं जो उसके मन के क़रीब हैं, और जिनके अर्थ वह जानता है। जैसे– मामा, मम्मी, पापा, मकड़ी, पकड़ी आदि।



परम्परागत स्वरूप से फ़र्क़ आकलन कैसा ?

हम जानते हैं कि एक ही कक्षा में पढ़ रहे बच्चों के सीखने का स्तर अलग-अलग होता है। बच्चों के स्तर, उनके सीखने की गति, और समझ को आधार मानते हुए ही कक्षा में कोई भी काम करना बेहतर रहता है। उदाहरण के लिए, शुरुआती कक्षाओं में चित्रात्मक कार्ड, बच्चे की मौखिक अभिव्यक्ति और उसके द्वारा प्रयोग की जाने वाली शब्दावली, वाक्य, आदि जानने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके द्वारा बच्चे की सोच, आत्मविश्वास और उसकी मुखरता, झिझक आदि को भी देखा जा सकता है।

ज़्यादा सार्थक आकलन कैसे होता है, इसके कुछ अवलोकित उदाहरण नीचे दिए गए हैं। बॉक्स

में कुछ बुलेट पॉइंट दिए गए हैं जिन्हें अवलोकन के दौरान मूल्यांकन की नज़र से जाना, समझा, और डायरी में नोट किया।

विषय : भाषा

कक्षा 1 से 2 (उम्र : 6 से 8 साल)

चित्रों पर आधारित बातचीत (मौखिक अभिव्यक्ति)

बच्चों को एक चित्र दिया गया। चित्र पेज 57 प्रदर्शित है।

इस चित्र पर बातचीत के लिए निम्नलिखित प्रश्न थे :

- *यह कहाँ का चित्र है?*
- *आपको चित्र में क्या-क्या दिख रहा है?*
- *आपके मोहल्ले में किस-किस दिन बाज़ार लगता है?*
- *आपके घर में से कौन-कौन बाज़ार जाता है?*
- *आपको बाज़ार में से कौन-कौन सी दुकानें लगी दिखती हैं?*
- *आपको बाज़ार में कौन-सी दुकान पर जाना ज़्यादा पसन्द है?*

हर प्रश्न के बाद बच्चों को अपनी बात कहने का समय दिया। सभी बच्चों ने चर्चा में खुलकर भाग लिया।

इस चर्चा का अवलोकन

तन्नु : "मम्मी मुझे बाज़ार नहीं ले जाती हैं।"

कोहिनूर : "बाज़ार के पीछे कबाड़ की दुकान है। मैं, मेरी माँ और दादी सब वहीं कबाड़ का माल बेचते हैं। बस्ती के अन्दर वाली दुकान में हमको कम रेट मिलता है।"

अजय : "ये तो किसी ठेले पर लगी दुकान का फ़ोटो है। हमारे मोहल्ले का बाज़ार ज़मीन पर लगता है, सब नीचे बैठकर सब्ज़ी बेचते हैं। मछली और मटन की दुकान की लाइन अलग होती है। पापा रविवार को मटन लाते हैं।"

सिमरिता : "मुझे कपड़े और चप्पल की दुकान ज़्यादा पसन्द है। मेरी दादी मेरे लिए सैंडल लाई थीं। मुझे बड़ी पड़ गई, मौसी को दे दी।"

बातचीत के बाद मैंने बच्चों से कहा, "सभी बच्चों को बाज़ार में लगी दुकान के चित्र बनाने हैं। आप जिस दुकान में ज़्यादा जाना पसन्द करते हो उसके सामने ख़ुद को खड़ा करना है।"

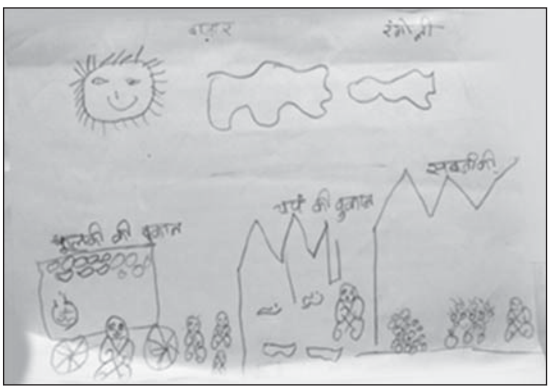
सभी बच्चों ने चित्र बनाए।

बनाए गए चित्रों का अवलोकन

बेसना ने फुलकी की और सब्ज़ी की दुकान बनाई। चित्रों को बनाते वक़्त बच्चों ने अपनी पसन्द की फुलकी की दुकान पर ख़ुद को खड़ा किया।

रंगोली ने दुकान के नाम भी लिखे। विवेक ने सब्ज़ियों में हूबहू रंग भरे। रितिका सबको अपना चित्र दिखाते हुए नज़र आई।

कुछ बच्चों ने चित्र में टमाटर और आलू दोनों समान बनाए और दोनों में एक ही रंग भरा। शायद उनके पास एक ही रंग था, या



चित्र : रंगोली, 9 वर्ष

उन्हें एक ही रंग पसन्द था। अहम बात यह थी कि सभी बच्चों ने चित्र बनाए। अपनी पसन्द की दुकान भी चुनी।

पढ़ने और लिखने का अभ्यास करवाना

कक्षा 1 से 2 (उम्र : 6 से 8 साल) (ये दोनों क्रियाएँ साथ-साथ व अलग-अलग भी चलती हैं)।

टीन, अचार, मेला, जामुन, टमाटर, जूता, थैला, बैल, रिबन, किताब, बादल, पेड़ आदि सभी शब्द बोर्ड पर लिखे गए। बच्चों से इन शब्दों को पढ़ने को कहा गया और तब समझ आया कि कुछ बच्चे इन शब्दों को पढ़ पा रहे हैं, कुछ नहीं। इसे ध्यान में रखते हुए बच्चों को दो समूहों में बाँटा गया।

पहले समूह में वे बच्चे थे जो पढ़ नहीं पा रहे थे। इस समूह के बच्चों को कहा गया कि वे दो-दो के समूह में इन शब्दों को पढ़ने की कोशिश करें। समूह के अन्य बच्चों से भी बातचीत कर सकते हैं। यह भी कि शब्दों को पढ़ने का कोई क्रम नहीं है, कहीं से भी शुरू कर सकते हैं। और इनके अलावा भी, जो शब्द वे पढ़ सकते हैं वे भी पढ़ें।

बच्चों ने पढ़ा। एक बच्चे ने पास लगे पोस्टर की मदद ली और चित्र को देखते हुए नाम पढ़ने की कोशिश की। कुछ बच्चे हिज्जे करके पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। उनके अवलोकन से मुझे यह पता चल रहा था कि इस समूह के बच्चों को मात्रा पढ़ने में कठिनाई है।

दूसरा समूह उन बच्चों का था जो शब्दों को पढ़ पाए थे। इन बच्चों को ब, म, क और ज अक्षर से शुरू होने वाले शब्दों को लिखने का काम दिया। कुछ चित्र कार्ड दिए और उनका नाम लिखने को कहा।

वाक्य पढ़वाना

कक्षा 1 से 2 (उम्र : 6 से 10 साल)

वाक्यों का चुनाव इस लिहाज़ से किया गया कि वे बच्चों के जीवन-सन्दर्भ से जुड़े हों। उनमें से कुछ शब्दों को वे पढ़ना / लिखना जानते हों। पैराग्राफ़ ज़्यादा लम्बा न हो, और बच्चे इन वाक्यों का प्रयोग भी करते हों। मेरे द्वारा चुने गए कुछ वाक्य थे–

आज सोमवार का दिन है।

नेहा ने ठेले से केले ख़रीदे।

सड़क के किनारे पीपल का पेड़ है।

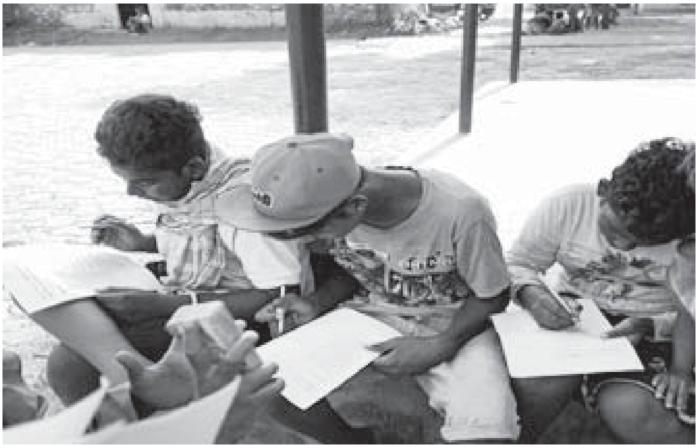
गुड्डी को गन्ना बहुत पसन्द है।

धनकुमारी दीदी हमको पढ़ाती हैं, आदि।

मैंने पाया कि सभी बच्चे इन वाक्यों को समझ रहे थे। हालाँकि, कुछ बच्चे इनमें सिर्फ़ अक्षरों को ही पढ़ पा रहे थे, और बाक़ी बिना किसी कठिनाई के पढ़ रहे थे। साफ़ था कि किन बच्चों को कहाँ मदद की ज़रूरत है।

लिखने का अभ्यास

बच्चों को चित्रात्मक कार्ड देकर कहा गया कि इसको ग़ौर से देखो और समझो। फिर



चित्र : माया मौर्य

उनको चित्र दिखाते हुए कुछ लिखने को कहा। जो बच्चे वाक्य लिखना नहीं जानते वो शब्दों को लिखेंगे, जिनको कहानी लिखनी नहीं आती है वो चित्र देखकर मन से कहानी लिखेंगे।

हर शिक्षक जानता है कि उसे पढ़ने वाले बच्चे का 'आकलन' अलग से करने की आवश्यकता नहीं है। यह सीखने-सिखाने के साथ-साथ चलता रहता है।

जैसा कि हम जानते हैं कि आकलन का आधार अकसर मौखिक व लिखित ही होता है। वैसे देखा जाए तो मौखिक और लिखित के अलावा भी कई कौशल अलग-अलग माध्यम से दिखते रहते हैं। इन कौशलों को पहचानने, देखने व बढ़ावा देने की ज़रूरत है जैसे– खेल, बाग़वानी, साफ़-सफ़ाई की ज़िम्मेदारी, पिकनिक व भ्रमण में।

हम शब्द और वाक्यों को पढ़ने वाले बच्चों से थोड़ा ऊपर तीसरी और पाँचवीं के बच्चों के साथ कक्षा में पढ़ाने के दौरान निम्न अभ्यास जाँच सकते हैं–

कक्षा में सप्ताह के दो दिन तार्किक प्रश्न / काल्पनिक प्रश्न जैसे–

1. *अधूरी कहानी पूरी करो- एक लड़की पतंग उड़ा रही थी, तभी अचानक.............*
2. *तुम उसकी जगह होते तो क्या करते ....*
3. *अगर तुम पक्षी होते तो क्या करते..................*

साक्षात्कार द्वारा मूल्यांकन (मौखिक व लिखित)

एक दूसरे से जुड़कर सवाल-जवाब करने के लिए बच्चों के बीच आपसी भागीदारी को बढ़ाया जा सकता है। इसमें बच्चों को कुछ प्रश्न बनाकर दिए जा सकते हैं, जिनके आधार पर वे समुदाय के कामकाजी लोगों से साक्षात्कार कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, नीचे दिए गए प्रश्न गाँधीनगर बस्ती के बच्चों ने अपनी बस्ती में कर्ज़े से जुड़े विषय पर साक्षात्कार करते हुए पूछे। इस पूरी प्रक्रिया में 8 से 15 साल के बच्चे शामिल थे।

- *आपका नाम क्या है?*
- *आपके घर में कितने लोग रहते हैं?*
- *आपके घर कमाने वाले कितने लोग हैं?*
- *आप रोज़ाना कितना कमाते हैं?*
- *क्या आपको ज़रूरत पड़ने पर कर्ज़ा भी लेना पड़ता है? कितना और किससे कर्ज़ा लेते हो? आप कर्ज़ा कैसे चुकाते हो?*

ऐसे बच्चों को बस्ती में सब्ज़ी बेचने वाली आंटी से, दर्ज़ी, अण्डे बचने वाले, कबाड़ के मालिक, आदि से बातचीत करने और उनसे कुछ चुनिन्दा प्रश्नों के साथ साक्षात्कार लेने भेजते हैं। कुछ बच्चे लिख नहीं पाते, पर प्रश्न पूछने में माहिर हैं। कुछ लिखते हैं, पर थोड़ा संकोची हैं। बच्चों ने अपने अनुभवों की प्रस्तुति दी और पोस्टर भी बनाए। यही छोटे-छोटे काम हम शिक्षकों को मूल्यांकन के समय काम आते हैं।

लिखित और मौखिक अवलोकन को उनकी पोर्टफ़ोलियो फ़ाइल से समझना

जब बच्चा स्कूल आना शुरू करता है, तब चित्रों के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति, रुचि, सोच और अपने आसपास की दुनिया को पहली बार काग़ज़ पर उकेरता है। इन चित्रों के द्वारा वह हमें अपने मन की और वास्तविक बातें बताता है। जैसा भी चित्र वह बनाता और उसमें रंग भरता है, वह सब उसकी पोर्टफ़ोलियो फ़ाइल में जमा किए जाते हैं। इसमें सत्र के शुरू से अन्त तक किए गए उसके कार्यों का लेखा-जोखा होता है। मसलन, सीखे हुए शब्द, वाक्य,

कहानियाँ, मौसम की बात, ख़ुद से रचित कविता, आदि। इन वर्कशीटों पर शिक्षकों द्वारा प्रतिक्रिया भी लिखी होती है कि बच्चे ने क्या अच्छा किया है और उस बच्चे की क्या और सीखने में मदद करना है। हर माह बच्चे अपनी फ़ाइलों से रूबरू होते हैं।

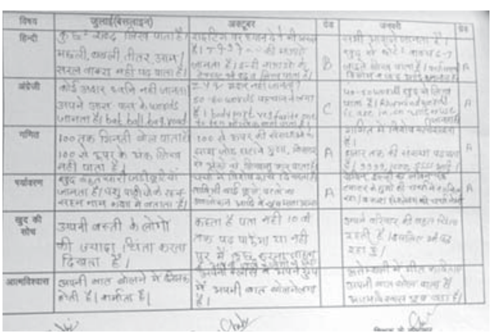


चित्र : कमल मालवीय

बच्चे ख़ुद की वर्कशीट के शुरुआती पन्नों में देखते हैं कि पहले वे क्या ग़लतियाँ करते थे। कैसे वे चार व पाँच लाइनों में लिखते थे, अब बड़ी कहानियाँ लिखने लगे हैं। पहले छोटी और बड़ी मात्रा में फ़र्क़ नहीं मालूम था तो ग़लत भी लिख देते थे। अब सुधार आया है, यह ख़ुद-से समझने लगे हैं। बच्चे इन फ़ाइलों में शिक्षक द्वारा दिए गए नोट को भी पढ़ते हैं। दीदी ने लिखा कि कहानी अच्छी बनाती है। फ़ाइल देखते हुए प्रतिक्रिया भी देते हैं कि दीदी, ये कविता हमने पेड़ के नीचे बैठकर लिखी थी...



चित्र : माया मौर्य



विषय	जुलाई (बेसलाइन)	अक्टूबर	ग्रेड	जनवरी	ग्रेड
हिन्दी	[illegible]	[illegible]	B	[illegible]	A
अंग्रेज़ी	[illegible]	[illegible]	C	[illegible]	A
गणित	100 तक गिनती बोल पाता है। 100 से ऊपर के अंक लिख नहीं पाता है।	100 से ऊपर की [illegible]	A	[illegible]	A
पर्यावरण	[illegible]	[illegible]	A	[illegible]	A
खुद की सोच	अपनी बस्ती के लोगों की ज्यादा चिंता करता दिखता है।	कहता है पता नहीं 10वीं तक पढ़ पाऊँगा या नहीं [illegible]		अपने परिवार की बहुत चिंता रहती है। [illegible]	
आत्मविश्वास	अपनी बात बोलने में [illegible] होती है। शर्मीला है।	[illegible] में अपनी बात बोलने लगा है।		[illegible]	

वग़ैरह। कई बार बच्चे अपनी फ़ाइल समूह में भी दोस्तों को दिखाते हैं। और उनके द्वारा क्या सीखा गया, क्या नहीं इस बारे में बात करते है। एक दूसरे से सीखी हुई अवधारणा को देखकर ख़ुश भी होते हैं।

आकलन के सन्दर्भ में माता-पिता का अनुभव

बस्ती सेंटर के बच्चे फ़ाइलों को घर भी ले जाते हैं, ताकि माता-पिता भी देख पाएँ कि कक्षा में क्या-क्या सिखाया जा रहा है, और बच्चा कैसे सीख रहा है? हम शिक्षक भी साथ में जाते हैं ताकि बच्चे जब माता-पिता को फ़ाइल दिखाएँ, तो हम उनके संवाद सुन पाएँ। पालकों के फ़ीडबैक भी हम शिक्षक सुनें और कक्षा में उन्हें लागू करें। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए गए है।

सावित्री : "मेरी बेटी अब किताब भी पढ़ लेती है। पहले वह थोड़ा अटक-अटक कर पढ़ पाती थी। अभी उसने मुझे 'नटखट गधा' की कहानी सुनाई। घर पर सामान लाने वाले अख़बार से भी कुछ-कुछ पढ़ती रहती है। उसका पापा हिसाब पूछता है तो सोचकर बता देती है। उसने अपनी फ़ाइल से 'I have a Bag' का टेक्स्ट पढ़कर बताया।"

मयूरी : "मेरा बेटा दो साल से स्कूल जा रहा है, पर पढ़ना नहीं सीखा। सेंटर पर जाने से इंग्लिश और हिन्दी लिखना सीखा है और

पढ़ता भी है। वह घर पर भाई को भी पढ़ाता है। कुछ-कुछ इंग्लिश के शब्दों का उपयोग करता है और मुझे बताता है कि दाई, आग को fire और लकड़ी को wood कहते हैं। पोएम भी गाता है। जब भी स्कूल भेजने का सोचती हूँ, सेंटर ही भाग जाता है। कहता है, स्कूल में बोर्ड से उतारते ही रहो। मैडम हर घण्टे बस लिखवाती रहती हैं।"

आज परीक्षा का स्वरूप कुछ अलग हो गया है, जिसने परीक्षा के डर को थोड़ा कम किया है। जैसा कि किताब, *बच्चे असफल कैसे होते हैं,* में लेखक जॉन होल्ट कहते हैं, "भय और असफलता साथ-साथ चलते हैं।" उन्होंने अपने कक्षा के अवलोकन कार्य से समझा कि शारीरिक हिंसा बच्चों पर बहुत अधिक असर डालती है। काम करने के दौरान उन्हें यह महसूस हुआ कि शिक्षक द्वारा सवाल का जवाब पूछे जाने पर और उस सवाल का जवाब न आने की स्थिति में बच्चा घबरा जाता है। सवाल के जवाब में वह कुछ भी उत्तर बिना सोचे-समझे दे देता है। सही जवाब मालूम न होने पर वह ख़ुद को गुनहगार और लाचार महसूस करता है। परीक्षा के समय भी सही जवाब न आने के कारण वह कई बार मानसिक रूप से परेशान होता है। इस तरह की अदृश्य दिखने वाली मानसिक हिंसा भी बच्चों की मानसिक स्थिति को बिगाड़ देती है। शिक्षक बैठकों में इनपर बातचीत के साथ ही, आकलन के वैकल्पिक तरीक़ों पर लगातार सोचने-विचारने और काम करने की ज़रूरत है।

माया मौर्य ने पिछले 15 साल मुस्कान संस्था, भोपाल के साथ एक शिक्षिका के रूप में कार्य किया है। वे बस्ती सेंटर पर कामकाजी और स्कूल ड्रॉपआउट बच्चों को खेल-खेल में मनोरंजक तरीक़े से सीखने-सिखाने का कार्य करती रही हैं। उन्हें बच्चों के बीच पढ़ाने में ख़ुशी मिलती है और उनसे बहुत कुछ सीखती हैं। माया को किताबें पढ़ने में रुचि है। वर्तमान में वे अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन भोपाल में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : maya.mourya@azimpremjifoundation.org

अक्षांश और देशान्तर की बातें

मुकेश मालवीय

यह संक्षिप्त लेख, अक्षांश व देशान्तर रेखाओं की ज़रूरत क्यों पड़ती है, इस प्रश्न पर केन्द्रित है। ब्लैकबोर्ड पर आड़ी और खड़ी रेखाओं के जाल बनाकर शिक्षक बच्चों की यह समझने में मदद करते हैं कि कैसे यह रेखाएँ किसी बिन्दु की जगह पता करने में मददगार होती हैं। बोर्ड पर बने जाल और उसकी अहमियत को बच्चे समझ रहे हैं, यह जानते हुए वे बच्चों से पूछते हैं कि क्या वे गेंद पर दिए गए बिन्दु की स्थिति बता सकते हैं? बच्चे बताते हैं और नए प्रश्न भी उनके सामने रखते हैं। -सं.

सामाजिक अध्ययन, एक कम चर्चा में रहने वाला विषय है। हालाँकि, हर विषय की तरह इस विषय को समझने में भी तार्किकता और विवेक की ज़रूरत होती है। मुझे याद है कि मैंने अपनी स्कूली शिक्षा हासिल करने के दौरान अपने तर्कों का इस्तेमाल कम ही किया। ज़्यादातर बताए गए उत्तरों को रटकर या बिना समझे मैंने विषय के ज्ञान को जाना था। शिक्षक बनने के बाद, अकसर मुझे यह महसूस होता था कि ख़ुद पहले पढ़ लूँ, समझ लूँ, तब बच्चों से ठीक से बात कर पाऊँगा। धीरे-धीरे यह मेरी आदत में शुमार हो गया है कि विषय को पढ़ाते हुए उस विषय को ठहरकर मैं ख़ुद जानने की कोशिश करता हूँ। हर बार मेरी इस कोशिश में यह बात पुख़्ता होती है कि विषय को पहले अपने लिए समझना होता है।

समझते हुए मन में कुछ प्रश्न उठते हैं, या उठाने पड़ते हैं और इनके उत्तर के बारे में सोचना या खोजना पड़ता है। तब बच्चों से भी उन विषयों पर मैं वैसी ही चर्चाएँ और सवाल करने की कोशिश करता हूँ, जो मुझे अपनी समझ बनाने के दौरान ज़रूरी लगते हैं।

कक्षा का एक अनुभव

जैसा कि मैंने कहा भी, इस कक्षा से पहले मैंने, पृथ्वी के ग्लोब पर खींची अक्षांश और देशान्तर रेखाओं को अपने लिए समझा। ये रेखाएँ पृथ्वी पर किसी स्थान का पता बताने में मदद करती हैं। मसलन, यह कहा जाए कि भारत देश, पृथ्वी पर 8 डिग्री से 37 डिग्री उत्तरी अक्षांश एवं 68 डिग्री से 97 डिग्री पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है (डिग्री राउंड ऑफ़ में)। तो इस कथन का मतलब क्या है? यह मेरे दिमाग़ में किस तरह का अर्थ बना रहा है? या बच्चे जब इस बात को पढ़ें तो वे इसका क्या मतलब निकालें? कुल मिलाकर, मैं इसको समझना चाहता हूँ, परीक्षा के प्रश्न के जवाब के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए, समझना चाहता हूँ, ताकि इस तरह की शब्दावली का मैं भी उपयोग कर सकूँ और दूसरों को अपने शब्दों में बता सकूँ।

भूगोल की शुरुआती कक्षा के पाठों में इन रेखाओं के बारे में पढ़ाया जाता है।

मुझे यह काफ़ी रोचक लगा कि इतनी बड़ी पृथ्वी के किसी भी स्थान को अक्षांश और

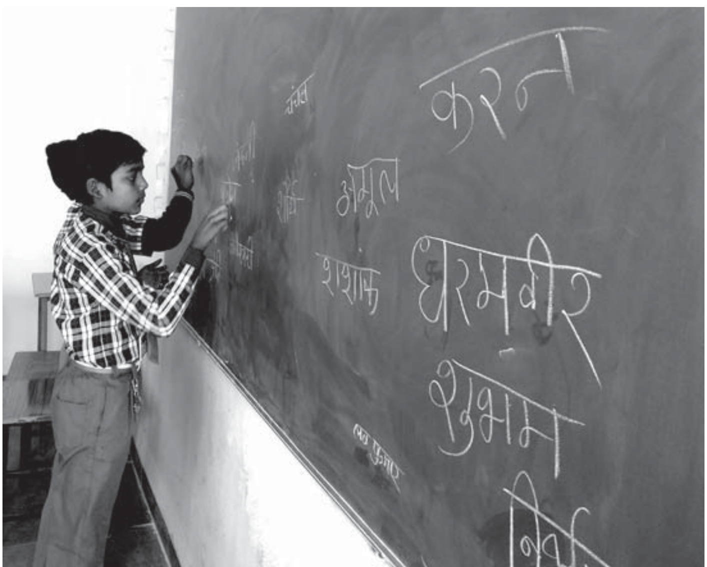


फ़ोटो : मुकेश मालवीय

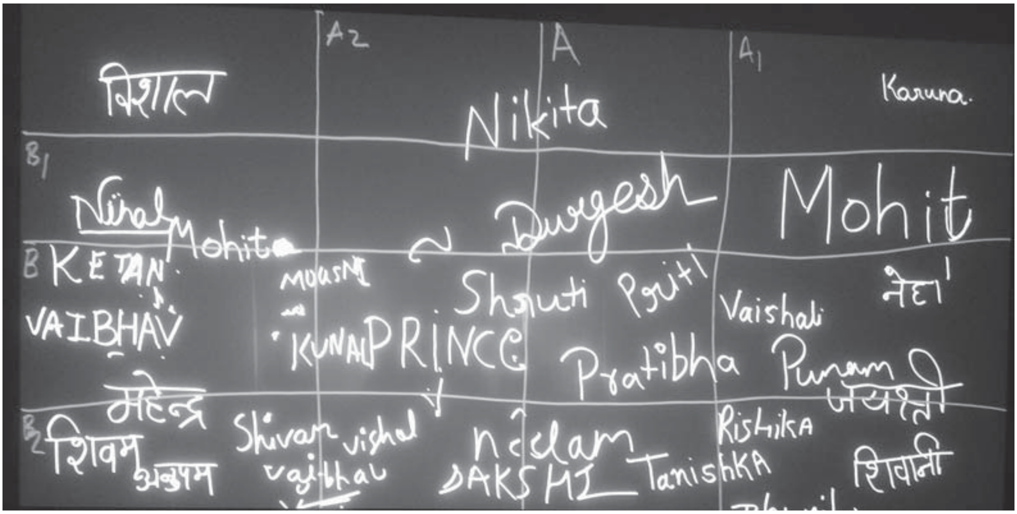
देशान्तर के आधार पर खोजा जा सकता है। बात यह थी कि बच्चों को इस बारे में क्या और कैसे बताया जाए कि वे भी इस बात में रोचकता और रोमांच का अनुभव कर सकें।

कितनी अक्षांश और देशान्तर रेखाएँ हैं? इस जानकारी से ज़्यादा महत्त्वपूर्ण मुझे यह लगा कि इन रेखाओं की ज़रूरत क्यों है, इसका अहसास बच्चों को कराया जाए। मैंने एक गतिविधि सोची और कक्षा के बच्चों के साथ की।

मेरी कक्षा के सभी बच्चों को मैंने ब्लैकबोर्ड पर अपना-अपना नाम लिखने को कहा। बच्चों ने एक-एक कर अपने नाम बोर्ड पर लिख दिए और अपनी जगह बैठ गए। मैंने उनसे कहा, "अच्छा अब बताओ, बोर्ड पर नंदनी कहाँ लिखा है? बच्चों ने कहा, "महेंद्र के बाजू में, ब्रजेश के ऊपर।" तब मैंने पूछा, "अगर आपको यह बताना है कि आपका नाम इस बोर्ड पर कहाँ लिखा है, और किसी के नाम का सहारा भी नहीं लेना है तो कैसे बताएँगे?" सोचने के बाद एक-दो बच्चों ने कहा, "हर नाम पर एक नम्बर डाल देंगे।" मुझे यह आइडिया ठीक लगा। मैंने नाम के आगे क्रमशः नम्बर लिख दिए। पर इससे मैं ख़ुद फँस गया। बात रुक रही थी। आगे बात कैसे बढ़े? तब मुझे सूझा कि कौन-सा नम्बर कहाँ है, इसे देखने के लिए तो मुझे बोर्ड को देखना पड़ेगा। और सिर्फ़ नम्बर सुनकर मुझे पता नहीं चलेगा कि वह नम्बर कहाँ है ! माने, नाम बोर्ड पर कहाँ लिखा गया है, उस जगह का पता नहीं चलेगा। नाम की जगह को पता करने का कोई और तरीक़ा हो सकता है क्या? फिर मैंने ख़ुद ही एक खड़ी लाइन बोर्ड के बीच से खींच दी। इस लाइन को नाम भी दिया : A लाइन। "इस लाइन से कुछ मदद मिलती है क्या?" बच्चों ने कहा, "हाँ, कुछ नाम लाइन के इस तरफ़ हैं कुछ उस तरफ़।" मैंने कहा, "अब कोई नाम कहाँ लिखा है, इसे जानने के दो तरह के



फ़ोटो : मुकेश मालवीय



फ़ोटो : मुकेश मालवीय

जवाब ही हो सकते हैं। वह नाम A लाइन के राइट हैंड साइड है या A लाइन के लेफ्ट हैंड साइड।" बच्चों को सोचने की एक दिशा मिल गई। मैंने पूछा, "किसी नाम की स्थिति को और ज़्यादा सही बताना हो तो क्या करना होगा?" हमने एक आड़ी लाइन और खींच दी, इस लाइन को नाम दिया : B लाइन। अब हमारे नामों की स्थिति चार जवाबों में थी। B लाइन के ऊपर और A लाइन के राइट हैंड साइड। B लाइन के नीचे और A लाइन के राइट हैंड साइड। इसी तरह, दूसरी तरफ़ दो स्थितियाँ। अब सबने अपने-अपने नामों को इन स्थितियों के आधार पर पहचाना। इसके बाद, हमने A लाइन के एक तरफ़ A1 और दूसरी तरफ़ A2 लाइन खींची। इसी तरह, आड़ी रेखा B के ऊपर B1 और नीचे की तरफ़ B2 रेखा बनाई। अब अपने नामों की स्थिति के लिए नई पहचान बारी-बारी से सभी बच्चों ने बताई। इस तरह, बढ़ते हुए पूरे बोर्ड की जगह हमारे पास छोटी-छोटी जगह में बँटी हुई थी और हर एक छोटी जगह को हम एक तरह का नाम दे सकते थे।

अगले दिन के लिए एक नई गतिविधि की योजना बनाई। प्लास्टिक की एक बड़ी गेंद पर एक बिन्दी चिपका दी और बच्चों से पूछा, "बताएँ, ये बिन्दी गेंद पर कहाँ लगी है?"

बच्चों ने बातचीत की और गेंद पर खड़ी और आड़ी रेखा डालने की ज़रूरत को समझा। हम सभी ने स्केच पेन से गेंद पर रेखाएँ बनाईं। पहले गेंद के बीचों-बीच चारों तरफ़ एक रेखा बना दी। हमारी गेंद पर दो भाग बन गए थे– एक ऊपर का भाग और एक नीचे का। हमारी बिन्दी ऊपरी भाग में थी। फिर हमने गेंद के खड़े हिस्से में चारों तरफ़ एक रेखा बनाई। इसे 'सामने वाला भाग' और 'पीछे वाला भाग' नाम दिया। अब हमारी बिन्दी की स्थिति गेंद के ऊपरी हिस्से में आगे वाले भाग की तरफ़ थी। फिर हमने इस सवाल पर विचार किया कि गेंद पर और जगह भी बहुत-सी बिन्दी चिपकाई गई हों तो उन बिन्दियों की स्थिति को कैसे बताएँगे? हमारी यह सहमति थी कि हमें और खड़ी एवं आड़ी रेखाओं की ज़रूरत पड़ेगी।

इसके बाद, मैंने बच्चों को ग्लोब दिखाया और इसपर खींची रेखाओं पर बातचीत की। हमने जाना कि हमारी पृथ्वी का ग्लोब भी गेंद की तरह ही तो है। हम गेंद पर आधे भाग को ऊपरी भाग और निचला भाग कह रहे थे। ग्लोब पर ऊपरी भाग उत्तरी गोलार्ध और निचला भाग दक्षिणी गोलार्ध कहलाता है। बच्चों ने पूछा, "इसे उत्तरी और दक्षिणी क्यों कहें?" यह सवाल मेरे लिए भी सवाल था जिसका



फ़ोटो : मुकेश मालवीय

उत्तर मुझे भी खोजना या सोचना था। हम अक्षांश और देशान्तर रेखाओं की मदद से ग्लोब पर किसी भी स्थान की स्थिति तो बता पा रहे थे, पर सवाल निकल ही रहे थे कि इन्हें हम अंश और मिनट में क्यों पढ़ें अथवा पूर्वी या पश्चिमी देशान्तर क्यों कहें? सवाल अच्छे हैं। सवाल होंगे तो उत्तर मिल ही जाएँगे, हमारे पास सोचने और तर्क करने की क़ाबिलियत जो है। बस, हमें इस क़ाबिलियत को इस्तेमाल करने के मौक़े चाहिए।

मुकेश मालवीय पिछले दो दशक से भी ज़्यादा समय से स्रोत शिक्षक के रूप में सरकारी और ग़ैर-सरकारी भूमिकाओं में सक्रिय हैं। कक्षा अनुभवों को लेकर सतत लिखते रहते हैं। वर्तमान में अनुसूचित जाति विकास विभाग के शासकीय आवासीय ज्ञानोदय विद्यालय, होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में शिक्षक पद पर कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mukeshmalviya15@gmail.com

बारिश और बच्चों के अनुभव

मौखिक बातचीत का शैक्षिक महत्त्व

शिफ़ा ख़ान

सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में बच्चों से बातचीत को एक महत्त्वपूर्ण अवयव के तौर पर देखा जाता है। यदि बच्चों को किसी जाने-पहचाने विषय पर सुव्यवस्थित और सार्थक बातचीत के लिए प्रोत्साहित किया जाए तो उन्हें आत्मविश्वास से अपने अवलोकन व अनुभव साझा करने और उन्हें विस्तार देने के मौक़े मिलते हैं। इससे धीरे-धीरे न केवल बच्चों की अभिव्यक्ति का विस्तार होता है, उनके अवलोकन भी पैने होने लगते हैं। इस लेख में लेखिका ने बच्चों से 'बारिश के मौसम' पर एक ऐसी ही समृद्ध और दिलचस्प बातचीत के अनुभव प्रस्तुत किए हैं। -सं.

बच्चों से बातचीत करना मुझे शुरू से ही मज़ेदार लगता है। बच्चों से बातचीत करके ही मालूम होता है कि बच्चे कैसे अपने अनुभव गढ़ते हैं। दुनिया को देखने का उनका अपना ही नज़रिया होता है। वे अपने आसपास घट रही हर छोटी-से-छोटी चीज़ का बड़ी बारीक़ी से अवलोकन करते हैं और अपने अनुभव व तर्क बनाते हैं। ज़रूरत होती है उनको सुनने की, और उन्हें सोचने के लिए नई दिशा देने की।

जैसी स्कूली शिक्षा से हम सब निकलकर आए हैं और जो वर्तमान में प्रक्रियाएँ चल रही हैं, उनमें बच्चों के अनुभवों और तर्कों को सुनने की कोई जगह नहीं है। हर कक्षा के लिए कुछ तय पाठ्यक्रम होता है। उसके अन्तर्गत दिए गए पाठ और अभ्यासों को पूरा करने में ही पूरा साल और देखते-ही-देखते पूरी स्कूली शिक्षा ख़त्म हो जाती है। इस पूरी प्रक्रिया में बच्चों के ख़ुद के अनुभव और उनके आधार पर बनी समझ की कोई जगह नहीं होती, जबकि वे अपने साथ ख़ुद के अनुभवों का विशाल संसार लाते हैं। उनके कुछ अनुभव तो हम सबको अचम्भित भी कर देंगे। ऐसी ही एक बातचीत का ज़िक्र इस लेख में किया गया है जिसमें तीसरी से पाँचवीं कक्षा तक के बच्चे शामिल थे।

बच्चों से बातचीत के अनुभव

इस स्कूल में बच्चों के साथ काफ़ी समय से काम कर रही हूँ। एक बार कई दिनों की बारिश के बाद जब स्कूल जाना हुआ तो सोचा कि क्यों न आज बच्चों से उनके बारिश के अनुभवों पर कुछ बात की जाए!

शुरुआत ऐसे ही प्रश्न से हुई, "आजकल बहुत बारिश हो रही है। क्या तुम लोगों को पता है कि अभी इतनी बारिश क्यों हो रही है?"

बच्चों ने बताया कि अभी बरसात का मौसम चल रहा है इसलिए इतनी बारिश हो रही है। कुछ बच्चों ने यह भी बताया कि अभी सावन चल रहा है और इसमें बारिश होती है।

बच्चों के जवाब लेने के बाद मैंने उनसे पूछा, "ये मौसम आपको कैसा लगता है?" इसपर बच्चों के जवाब अलग-अलग थे। कुछ बच्चों ने बोला कि उन्हें ये मौसम पसन्द है, और कुछ ने कहा कि उन्हें यह अच्छा नहीं लगता। मैंने अगला प्रश्न

उनसे पूछा, “उन्हें ये मौसम पसन्द या नापसन्द क्यों है?” इसको लेकर उनके अपने-अपने खट्टे-मीठे अनुभव थे। कुछ बच्चों ने बताया कि ज़्यादा बारिश होने पर स्कूल नहीं आना पड़ता। बारिश में घर पर ही खेलते और साइकिल चलाते हैं, इसमें मज़ा आता है। कुछ ने बोला कि बारिश में घर में पानी भर जाता है और छप्पर से पानी चूने लगता है। इससे उनके बिस्तर, खाने का सामान, आदि ख़राब हो जाते हैं और गीला-गीला रहता है। एक बच्चे ने कहा, “मुझे रात में बारिश बिलकुल भी पसन्द नहीं, क्योंकि रात में फिर सबको जागना पड़ता है और घर में भरा पानी बार-बार बाहर निकालना पड़ता है।” ऐसे ही कई कारणों के चलते बहुत-से बच्चों को ये मौसम पसन्द नहीं है।

बच्चों के ये जवाब मेरे लिए काफ़ी सोचने वाले थे कि बारिश को नापसन्द करने के कुछ ऐसे कारण भी हो सकते हैं जो बच्चों से इस तरह जुड़ते हैं।

बच्चों के मत जानने के बाद मैंने बारिश के मौसम से जुड़े उनके कुछ और अनुभव जानने की कोशिश की। मैंने इस मौसम के दौरान अपने आसपास दिखने वाले बदलावों के बारे में उनसे पूछा। बच्चों के जवाब आते गए, और मैंने बोर्ड पर उन्हें लिखना शुरू कर दिया। देखते-ही-देखते बच्चों के अनुभवों से पूरा बोर्ड भर गया। कुछ अनुभव बड़े ही रोचक थे। इनपर और बातचीत करके बच्चों के सोचने और उनके ऐसा बताने की वजह पर और गहराई से सोचा जा सकता है। इन्हीं में से कुछ अनुभव इस प्रकार हैं–

1. बरसात के मौसम में हमें सर्दी और बुख़ार होता है।

तीसरी कक्षा की एक बच्ची ने बताया, “मैडम, बारिश में हम भीगते हैं जिससे हमें सर्दी हो जाती है और बुख़ार भी आ जाता है। मम्मी मना भी करती है कि बारिश में मत भीगो, नहीं तो बीमार हो जाओगे।” बाक़ी बच्चों ने भी सहमति भरी कि उन्हें भी बारिश में भीगने से मना किया जाता है। कुछ बच्चे बोले, “पर हमें तो बारिश में नहाने में बहुत मज़ा आता है और हम बारिश में साइकिल भी चलाते हैं।” मैंने और जानने के लिए पूछा, “अच्छा, ऐसा क्यों होता होगा कि इस मौसम में सर्दी और बुख़ार आता है?” इसपर बच्चे सोचने लगे। कुछ समय लेने के बाद एक बच्चा बोला, “पानी ठण्डा होता है तो उसमें नहाने से सर्दी और बुख़ार हो जाता है।” बाक़ी बच्चे भी अपने साथी के इस तर्क से सहमत लगे। एक-दो जवाब ये भी आए कि बारिश होने से मौसम ठण्डा हो जाता है। चौथी कक्षा के एक छात्र ने बताया, “बारिश के बाद पीने का पानी भी मटमैला आता है। उसमें मिट्टी मिल जाती है और फिर गन्दा पानी पीने से हम बीमार हो जाते हैं।”

बच्चों से बातचीत का ये अनुभव मेरे लिए कुछ नया था, क्योंकि मैंने कभी नहीं सोचा था कि बच्चे इतना कुछ जानते होंगे और बोलेंगे। भले ही वो बारिश के मौसम में ज़्यादा बीमार होने के वैज्ञानिक कारण को न जानते हों, पर मेरी नज़र में उनका ये अवलोकन काफ़ी सराहनीय है। एक बात और जो समझने वाली



चित्र : खुशी जाटव, कक्षा 4

थी कि बच्चे गन्दा पानी पीने और उसके कारण बीमार होने के सम्बन्ध को भी देख पा रहे थे।

2. इन्द्रधनुष निकलता है।

ज़्यादातर बच्चों ने बताया कि उन्होंने बरसात के मौसम में आसमान में इन्द्रधनुष बनते देखा है। मैंने पूछा, “क्या जब बारिश होती है तब हर बार इन्द्रधनुष दिखाई देता है?” इसपर सभी बच्चों का जवाब ‘न’ में था। एक बच्चा तपाक से बोला, “मैडमजी, जब बारिश और धूप साथ में होती है तब इन्द्रधनुष बनता है।” बच्चों से यह भी जानने को मिला कि जब धूप और बारिश एक साथ होती है तो ऐसा बोला जाता है कि लड़इयों की शादी हो रही है और इन्द्रधनुष निकलेगा।

एक बच्चे ने बताया, “जब थोड़ी-थोड़ी बारिश होती है और धूप निकल आती है, तब इन्द्रधनुष निकलता है।” बाक़ी बच्चों का भी यही मत था कि इन्द्रधनुष बनने के लिए बारिश और धूप ज़रूरी हैं। इसपर बच्चों के और अनुभव जानने के लिए मैंने आगे पूछा, “इन्द्रधनुष में कितने रंग होते हैं?” कुछ बच्चे सोच में पड़ गए, और कुछ ने 4, कुछ ने 6, तो किसी ने 3 रंग बोला। बच्चों को और कन्फ़्यूज़ करने के लिए हमारे साथ ही काम कर रही शिक्षिका हँसते हुए बोलीं, “अच्छा! पर मैंने तो इन्द्रधनुष में 12 रंग देखे हैं।” शिक्षिका की बात सुनकर सभी बच्चे हँसने लगे।



चित्र : संदीप पटैल, कक्षा 4

थोड़ा और जानने के लिए मैंने बच्चों से फिर पूछा, “अच्छा, अब ठीक से याद करके बताओ, इन्द्रधनुष में तुम्हें कितने रंग दिखाई देते हैं?”

इस बार बच्चों के उत्तर 3 और 4 रंग पर आकर अटक गए। मैंने बच्चों से पूछा, “वो रंग कौन-कौन से होते हैं?” उन्होंने बताया, “गुलाबी, नीला, नारंगी और पीला।”

ख़ैर, आज की चर्चा का उद्देश्य ये तो था नहीं कि मैं उन्हें बता दूँ कि इन्द्रधनुष में 3 या 4 नहीं, 7 रंग होते हैं। मैंने उन्हें बोला कि अब जब भी इन्द्रधनुष निकले तो अपनी-अपनी कॉपी में उसे बनाना और तब देखना कि उसमें कितने रंग दिख रहे हैं। सभी बच्चों को ये टास्क काफ़ी अच्छा लगा। उन्होंने बोला कि अब वो उसे ठीक से देखेंगे।

अगर आप अच्छे से ग़ौर करेंगे, तो पाएँगे कि हमें भी अगर कक्षा में या किताबों से ये नहीं बताया जाता कि इन्द्रधनुष में 7 रंग होते हैं, तो हम भी बच्चों की ही तरह जवाब दे रहे होते। इन्द्रधनुष जब भी दिखाई देता है तो उसके सभी 7 रंग बहुत साफ़-साफ़ नहीं समझ आते, क्योंकि वे एक दूसरे में काफ़ी मिले हुए होते हैं। शायद अब वो उसे और गहराई से देखने का प्रयास करें, क्योंकि इस बातचीत से वे यह तो समझ पाए थे कि 3 या 4 रंग वाले उत्तर में अभी सुधार की गुंजाइश है।

3. मोर नाचता है।

तीसरी कक्षा की एक लड़की ने यह बात बताई कि जब बारिश होती है तभी मोर भी नाचता है। इसपर मैंने उससे पूछा, “क्या उसने कभी ऐसा देखा है?” बच्ची ने बताया कि वो एक बार बारिश के मौसम में अपनी नानी के घर गई थी, तब उसने देखा था कि खेत में मोर नाच रहा था। उसकी नानी ने उसे बताया था कि जब बारिश होती है तो मोर भी नाचता है। अन्य बच्चों से पूछने पर पता चला कि उन्होंने मोर तो देखा है, पर उसे कभी बारिश में नाचते हुए नहीं देखा। हाँ, उन्होंने

सुना ज़रूर है कि मोर बारिश में नाचता है। साथ ही उनकी पाठ्यपुस्तक में दी गई कविता में भी यह बताया गया है कि बारिश में मोर नाचता है। एक बच्चे ने इसी बात पर एक अनुभव जोड़ा कि मोबाइल में यू-ट्यूब पर उसने एक कविता सुनी थी, उसमें भी बारिश में मोर नाच रहा था।

4. बिजली चमकती है, बिजली गिरती है।

काफ़ी बच्चों से यह बात निकलकर आई कि जब बारिश होती है, आकाश में बिजली भी चमकती है। कुछ बच्चों ने बताया कि कभी-कभी बिजली ज़मीन पर भी गिर जाती है। इस विषय में बच्चों के और अनुभव जानने के लिए मैंने उनसे पूछा, "बिजली कैसे चमकती है?" बच्चों के जवाब इस प्रकार थे–

- बादल में बिजली लाइट जैसी दिखती है।
- उसमें आग होती है।
- जिसपर बिजली गिरती है वो जल जाता है।
- जब बिजली चमकती है तब बहुत तेज़ आवाज़ भी आती है।

बातचीत में यह भी निकलकर आया कि बिजली पेड़ पर गिरती है जिससे पेड़ जल जाता है। एक बच्चे ने तो पूरा क़िस्सा ही सुनाया, "एक बार तेज़ बारिश हो रही थी और गाँव के पीछे वाले जंगल के एक पेड़ पर बिजली गिर गई थी। तब बहुत तेज़ आवाज़ आई थी। घर पर सब बोल रहे थे कि कहीं आसपास बिजली गिरी है। जब बारिश हल्की हुई तो हमने देखा कि जंगल के पेड़ में आग लगी थी। वह पूरा जलकर काला हो गया था और बहुत धुआँ निकल रहा था।" कुछ बच्चों ने इसी बात पर ये भी बताया कि जब बारिश होती है तो पेड़ के नीचे खड़े नहीं होना चाहिए। एक बच्चे ने इसी घटना से जुड़ी एक ख़बर भी बता दी कि पिछली बार बारिश में जब एक लड़का अपने खेत में पेड़ के नीचे खड़ा था, उसके ऊपर बिजली गिर गई थी। वो बहुत बुरी तरह से जल गया था और उसे बचाया नहीं जा सका। बाक़ी बच्चों ने भी इस घटना को याद करके अपने-अपने अनुभव जोड़े। चूँकि ये घटना पास ही के गाँव में हुई थी तो सभी बच्चे इससे वाक़िफ़ थे।

5. बादल काले हो जाते हैं।

बच्चों ने ये भी बताया कि जब बारिश होती है तब बादल काले रंग के होते हैं। जब उनसे इसपर और बात की गई कि बारिश के समय बादल काले क्यों हो जाते हैं, तो बच्चों ने काफ़ी सोचा, पर ज़्यादा जवाब नहीं आए। केवल एक-दो ही बोले कि अँधेरा हो जाता है जिससे बादल काले हो जाते हैं। एक बच्चे ने बताया कि उनमें पानी होता है जिससे वो काले हो जाते हैं।

शुरुआती स्तर पर अगर वो ये अनुभव कर पा रहे हैं कि बारिश में बादलों का रंग सफ़ेद न होकर काला होता है तो ये भी बहुत अच्छा अवलोकन है। अगर उन्हें ऐसे ही मौक़े आगे भी मिलें तो शायद आने वाली कक्षाओं में वो इन परिवर्तनों के जवाब खोज पाएँगे।

6. कीड़े-मकोड़े और साँप निकल आते हैं।



चित्र : ऋषभ अहिरवार, कक्षा 4

इस बिन्दु पर बच्चों के बहुत अनोखे-अनोखे अनुभव थे। कुछ बच्चों की तरफ़ से आया कि बारिश के मौसम में कई कीड़े-मकोड़े और साँप बाहर निकल आते हैं। जब इसपर और पूछा गया

तो बच्चों ने बताया कि कीड़े-मकोड़े और साँप मिट्टी में बिल बनाकर रहते हैं। बारिश होने की वजह से उनके बिलों में पानी भर जाता है तो वो बाहर निकल आते हैं। एक बच्चे ने बताया कि एक बार जब वो अपनी भाभी के घर गया था और बारिश हो रही थी तभी एक कछुआ भी निकलकर आ गया था। इतना सुनते ही नमन भी बोल उठा, "मैडम, बड़े बाबाजी के मन्दिर में भी एक कछुआ है जो 13 साल का है। वो वहीं कुएँ में रहता है।" इतना सुनते ही मैडम ने उसे रोक दिया और कहा, "तुमसे बारिश की बात हो रही है या कछुए की!" नमन थोड़ा झेंप गया और चुप हो गया।

ये जो भी बातें बच्चों ने बताईं, बेहद रोचक और सोचने वाली थीं। यहाँ मैं ये जानना चाहती थी कि नमन को कैसे पता चला कि कछुए की उम्र 13 साल ही है। पर शायद शिक्षिका को यहाँ हो रही बारिश की चर्चा से कुछ भटकाव लगा, जिसके चलते उन्होंने उसे टोक दिया। अगर यहाँ उसे टोका न जाता तो हम उस कछुए से जुड़े नमन के कुछ अनुभव और जान पाते। ख़ैर, इसपर नमन से आगे अलग से बात करूँगी।



चित्र : अनिकेत अहिरवार, कक्षा 4

यहाँ समझने वाली बात यह है कि कभी-कभी बच्चे ऐसे अनुभव भी लाते हैं जिनपर हमें लग सकता है कि वो मुद्दे से हट रहे हैं। हमें थोड़ा उन्हें भी सुनना चाहिए ताकि बच्चों को को ये अहसास दिला सकें कि उन छोटी-छोटी चीज़ों का भी महत्त्व है, जो वो अपने आसपास सुन और देख रहे हैं। ख़ैर, जैसा कि होता है, नमन भी शिक्षिका के टोकने वाले व्यवहार से थोड़ा शान्त हो गया और शायद समझ गया कि सिर्फ़ बारिश पर ही बोलना है। कछुआ, मेंढक, शायद इस चर्चा का हिस्सा नहीं हैं। यहाँ पर मुझे लगा कि यह थोड़ा ग़लत था, क्योंकि बारिश की चर्चा से ही उसके मन में कछुए का ख़्याल आया। दूसरा, इस कक्षा का मुख्य फ़ोकस ही बच्चों से बातचीत करना था।

7. कुआँ और झिरिया भर जाते हैं।

बच्चों से बातचीत में ये बात सामने आई कि बरसात के मौसम में उनके गाँव के आसपास के नाले चढ़ (ओवरफ़्लो हो) जाते हैं। इसके साथ ही, उनके घर और खेतों में बने कुओं और झिरियों में भी पानी भर जाता है। मेरे लिए 'झिरिया' शब्द नया था। कुछ बच्चे बोल रहे थे कि उनके कुओं में पानी भर जाता है तो कुछ अपनी झिरिया का बता रहे थे। मैंने जिज्ञासावश पूछ ही लिया, "ये झिरिया क्या होता है? क्या कुएँ को ही झिरिया बोलते हैं?"

बच्चे पहले तो हँसने लगे, फिर उन्हीं में से एक बच्चा बोला, "मैडम, कुआँ और झिरिया अलग-अलग होते हैं। कुआँ चौड़ा होता है और उसके चारों ओर पक्की मेड़ जैसी बनी होती है, जबकि झिरिया सँकरी होती है। झिरिया में बारिश का और झिर से आने वाला पानी जमा करके उसे इस्तेमाल करते हैं। गर्मी में झिरिया का पानी सूख जाता है, पर कुएँ में पानी बना रहता है। कुएँ के पानी का उपयोग हम पीने के लिए करते हैं, जबकि झिरिया का पानी सिंचाई या घरेलू कामकाज के लिए उपयोग में लिया जाता है।"

आगे बच्चों से मैंने पूछा, "कुएँ और झिरिया में बारिश के अलावा और कहाँ से पानी आता है?" बच्चों ने बताया कि पानी ज़मीन से पत्थरों के बीच से आता है। कक्षा 4 और 5 के कुछ बच्चों ने बताया कि मिट्टी बारिश का पानी सोख लेती है। फिर यही पानी झिरियों और कुओं में पत्थरों के बीच से निकलता है। आगे बात हुई कि इस पानी को तो सालभर पीने और अन्य कामों के लिए उपयोग में लाया जाता है, तो क्या इसमें कीड़े नहीं होते या ये गन्दा नहीं होता! इस प्रश्न पर बच्चों के अनुभव काफ़ी नए थे। मैं शायद इतनी कम उम्र के बच्चों से ऐसे अनुभवों की अपेक्षा नहीं कर रही थी। लगभग सभी बच्चों ने बताया कि वो कुएँ और झिरिया के पानी को साफ़ रखने के लिए ब्लीचिंग पाउडर और लाल दवा का उपयोग करते हैं। उन्होंने बताया कि इनको पानी में डालने से उसमें कीड़े नहीं पड़ते और पानी ख़राब नहीं होता।

ब्लीचिंग पाउडर और लाल दवा के बारे में मैंने पहली बार कक्षा 8 में विज्ञान की किताब में पढ़ा था। उनके बारे में ठीक से कक्षा 11 और 12 में समझा। पर यहाँ, प्राथमिक कक्षाओं के ये बच्चे यह सब अपने अनुभव से बता रहे हैं जो मेरे लिए बहुत नया था।

बच्चों से बातचीत करते-करते डेढ़ घण्टा कैसे बीता, पता ही नहीं चला। हर बच्चे के पास मुझे अचम्भित करने वाले ढेरों अनुभव थे। यहाँ उस चर्चा के केवल कुछ अंश हैं, बाक़ी जो इस बातचीत का आनन्द था, वो उस प्रक्रिया को करके ही महसूस किया जा सकता है।

इस सब बातचीत का अन्त हुआ बारिश के अनुभवों पर चित्र बनाकर। इसपर बच्चों ने सुन्दर चित्र बनाए।

शैक्षिक दृष्टि से समझने वाली बात

बच्चों के साथ की गई बारिश पर बातचीत से मैं कुछ बातें समझ पाई। जैसे—

- बारिश के मौसम को पसन्द-नापसन्द करने के बच्चों के आर्थिक आधार भी होते हैं। सबके लिए बारिश का मौसम सुहाना और हरा-हरा नहीं होता।
- यदि बच्चों के अनुभवों को कक्षा का हिस्सा बनाया जाए तो आसपास घट रही घटनाओं को देखने-समझने के उनके नज़रिए को समझा जा सकता है।
- कभी-कभी हमें लग सकता है कि बच्चे तय मुद्दे से भटक कर अपनी बातें रख रहे हैं। हमें बच्चों को टोके बिना उनकी बातों को सुनना चाहिए और उन्हें अपनी कक्षा की बातचीत में स्थान देना चाहिए।
- प्राथमिक स्तर पर बच्चों के रोज़मर्रा के अनुभव आगे की वैज्ञानिक अवधारणाओं को समझने के लिए नींव तैयार करते हैं। इसलिए इन्हें अपनी प्राथमिक कक्षाओं का हिस्सा बनाकर और निखारने की ज़रूरत है।

अभी तक के मेरे अनुभवों के आधार पर मुझे ये समझ आया कि शहरी परिवेश में पल रहे बच्चों की अपेक्षा ग्रामीण परिवेश में रह रहे बच्चों के अनुभव ज़्यादा व्यापक होते हैं, क्योंकि उनका परिवेश केवल घर की चारदीवारी, स्कूल भवन या गार्डन तक सीमित न होकर काफ़ी फैला हुआ होता है। साथ ही, उनके पास ख़ुद से करके या देखकर सीखने के अनेक मौक़े होते हैं। बस, हमें ज़रूरत है उन अनुभवों को सुनने और उन्हें अपनी सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का हिस्सा बनाने की।

शिफ़ा ख़ान ने डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर से रसायनशास्त्र में स्नातकोत्तर की पढ़ाई की है। वे साल 2014 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में काम कर रही हैं। उनकी रुचि यात्राएँ करने, सूफ़ी संगीत सुनने, बच्चों को पढ़ाने और विज्ञान के इतिहास से जुड़ी सामग्री जानने-समझने में ज़्यादा है।

सम्पर्क : shifa.khan@azimpremjifoundation.org

कहानी की कथा

सुमन पटेल

यह लेख स्कूल में बनाए गए एक रीडिंग कॉर्नर के अनुभव को प्रस्तुत करता है। एक बच्ची किताबें देखने के लिए उत्सुक थी, और शायद उन किताबों को छूकर, पलटकर देखना चाहती थी, उसके साथ लेखिका एक कहानी पढ़ती हैं। धीरे-धीरे और बच्चे भी इसमें शामिल होते हैं और बातचीत आगे बढ़ती है। क्या बातचीत होती है, इसका विस्तार से विवरण इस लेख में है। यह विवरण बच्चों के ज़ेहन में किताब को पढ़ते हुए आने वाले विचारों को समझने का मौक़ा भी देता है। -सं.

किताबें बच्चों को कई तरीक़ों से लुभाती हैं। जो बच्चे दक्षता के साथ किताबें नहीं पढ़ पाते, ऐसे बच्चों को चित्रों वाली किताबें ख़ासकर अपनी तरफ़ आकर्षित करती हैं। बच्चे शुरुआत से ही पढ़ने की प्रक्रिया से जुड़ सकें, इसलिए विद्यालयों में 'पुस्तकालय' या 'रीडिंग कॉर्नर' बहुत ज़रूरी होते हैं। जिस विद्यालय की चर्चा हम इस लेख में करने जा रहे हैं, वहाँ शिक्षकों व बच्चों (तीसरी, चौथी और पाँचवीं कक्षा) के साथ 'पढ़ने का कोना' बनाने की प्रक्रिया शुरू की तो उन्होंने कई सवाल भी रखे। एक बच्चे ने अपनी बुन्देली भाषा में पूछा, "पुस्तकालय का होत है?" मैंने उसे बताया "जहाँ पढ़ने के लिए किताबें रखी जाती हैं।" तो दूसरे बच्चे ने बताया, "कहानी वाली किताबें न!" ऐसे कई सवालों पर बातचीत करते-करते एक दिन विद्यालय की दूसरी कक्षा के एक कोने में हमने साथ मिलकर एक रीडिंग कॉर्नर की स्थापना की। इसमें लगभग 35-40 किताबें थीं जिनमें *बरखा* सीरीज़, राज्य शिक्षा केन्द्र की अँग्रेज़ी एवं हिन्दी की किताबें, कुछ टीएलएम, गिनमाला एवं हम होंगे क़ामयाब (एचएचके) कार्यक्रम में दिए गए कहानी और कविता के पोस्टर शामिल थे। कुछ बच्चों को किताबों के रखरखाव और ध्यान रखने की ज़िम्मेदारी दी गई। शिक्षिका ने एक टेप लाकर भी रख दिया और बच्चों से कहा कि अगर कोई किताब फट भी जाए तो उसे टेप से जोड़कर ठीक कर दें। साथ ही कुछ और सामान्य ज़िम्मेदारियाँ भी उन्होंने बच्चों को दीं। लंच के ख़ाली समय में जो बच्चे जल्दी आ जाते, वे रीडिंग कॉर्नर में बैठकर किताबें पढ़ते या देखते थे।

रीडिंग कॉर्नर की शुरुआत को एक हफ़्ता ही हुआ था। उस दिन स्कूल में, कुछ शिक्षिकाएँ अनुपस्थित थीं। तभी मेरा ध्यान एक लड़की पर गया जो रीडिंग कॉर्नर में खड़ी होकर किताबें देख रही थी। मैं उसके पास गई और पूछा, "आप क्या पढ़ रही हो?" उसने मुझे किताब दिखाते हुए कहा, "जा किताब" (बुन्देली में 'जा' का अर्थ होता है 'यह')। मैंने कहा, "अच्छा, मुझे सुनाओ क्या लिखा है उसमें?" उसने कहा, "मुझसे पढ़ते नहीं बनता लेकिन चित्र तो पढ़ते बन जाता है।" मैंने कहा, "वाह! तो चित्र ही पढ़ते हैं।" यह बच्ची तीसरी कक्षा में पढ़ती है और *बरखा* सीरीज़ के स्तर-1 की कहानी 'मिठाई' की किताब हाथ में लिए थी।

हमारी बातचीत शुरू हुई। पहले पेज को दिखाते हुए मैंने उससे पूछा, "इसमें क्या हो रहा है?" (कहानी के चित्र यहाँ साथ ही दिए गए हैं)।



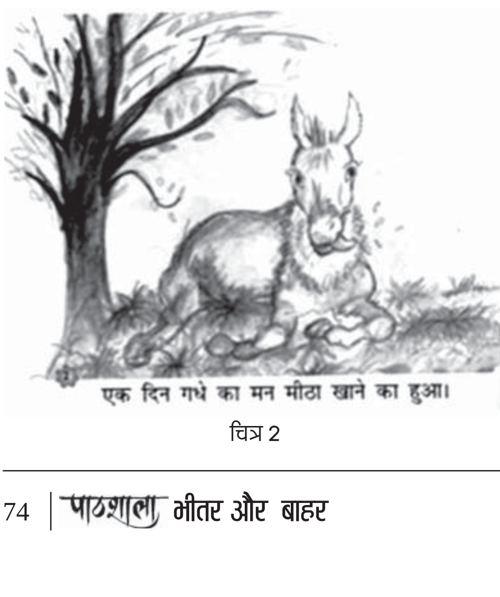
चित्र 1

गई थी।" मैंने पूछा, "घास कहाँ गिर रही है?" उसने चित्र पर ही उँगली रखकर बताया। मैंने पूछा, "और कुछ है इसमें?" वह बोली, "नहीं, गधा कछू (कुछ) देख रहा है।" मैंने पूछा, "क्या देख रहा है?" वो कुछ नहीं बोली।

अब अगले पेज को पढ़ना था। मैंने पूछा, "इसमें क्या लिखा है?" वो बोली, "गधा के मो से घास गिर रही है तो सब जानवर उसे देख रहे हैं और गधा ग़ुस्सा हो रहा है।" मैंने कहा, "काय गिर रओं हुज्जे ओके मो से चारो?" (क्यों गिर रही होगी उसके मुँह से घास)। वो बोली, "कायसे वो हाथ से नहीं खात।" (क्योंकि वो हाथ से नहीं खाता)। मैंने

वह बोली, "गधा है जो जलेबी, लड्डू, हलुआ (हलवा) को देख रहा है।" मैंने उससे पूछा, "यह कैसे पता कि यह गधा है?" ऐसा मैंने इसलिए पूछा क्योंकि एक दूसरे स्कूल का अनुभव था जहाँ एक बच्चे ने गधे को 'गाय' कहा था। हालाँकि, उस बच्चे को हिज्जे लगाकर पढ़ना आता था, उसने चित्र देखा और गधे के 'ग' को देखकर उसे गाय बोल दिया था। लेकिन मिठाई को उसने सही पढ़ा था। इस बच्ची ने जवाब दिया, "पता है।" फिर कुछ नहीं बोली।

मैंने अगला पेज खोला और कहा, "यह पढ़ो।" वह बोली, "गधा पेड़ के पास बैठकर घास खा रहा था और घास उसके मो (मुँह) से गिर



चित्र 2



चित्र 3

पूछा, "अच्छा, इसमें कौन-कौन से जानवर हैं?" वो बोली, "कुत्ता, ख़रगोश, मकड़ी, हाथी, गधा, गिलहरी।" वह बिल्ली को उल्टे में नहीं पहचान पाई थी और भालू को कुत्ता पहचाना। यह जानते हुए, कि वह बुन्देली बोलती है, मैंने उससे बुन्देली में बात करना शुरू किया। वह बुन्देली मिली हिन्दी में ही बोल रही थी। हालाँकि, पहले हिन्दी ज़्यादा, बुन्देली कम बोल रही थी लेकिन बाद में ज़्यादा बुन्देली, कम हिन्दी बोलने लगी। धीरे-धीरे कुछ और बच्चे भी हमारे साथ आ गए और बातचीत सुनने लगे।



भालू ने कहा – शहद खा लो।

चित्र 4

अब हम अगले पेज पर थे। वो बोली, “भालू शहद खाने वाला है और उसके ऊपर मधुमक्खी है।” मैंने पूछा, “तुम्हें कैसे पता यह शहद है? मुझे तो ऐसा लग रहा है जैसे चाय गिर गई हो।” वह बोली, “नहीं, शहद ही है।” मैंने पूछा, “कहाँ देखा तुमने शहद खाता हुआ भालू?” वो बोली, “मोगली वारे कार्टून में बलू भालू शहद खाता है और उसके पीछे मधुमक्खी लग जाती है तो वो पानी में कूद जाता है।” अगले पेज के चित्र को देखकर ख़ुद से ही बोली, “गधे की पूँछ फूलों में फँस गई थी तो वो उसे देख रहा था और पूँछ फँसने से फूल पर बैठी तितली उड़ गई है।” मेरे लिए यह बहुत आश्चर्यजनक था। इस प्रकार से मैंने भी इस चित्र का अवलोकन नहीं किया था। फिर हमारे साथ बैठा हुआ एक बच्चा बोला, “बीच का फूल टूट गया है, देखो!” मैंने ‘हाँ’ कहा, फिर हमने कुछ तितलियों और फूलों पर बातचीत की। अब कुछ और बच्चे जो



गधे ने मना कर दिया।

चित्र 5

बहुत देर से सुन रहे थे, वो भी हमारी बातचीत में रुचि लेने लगे और जवाब देने लगे।

फिर हम आगे बढ़े और उसने बताया, “ख़रगोश गाजर खोद रहा है।” मैंने कहा, “कैसे पता? मुझे तो लग रहा है कि वह गाजर खा रहा है।” तब वो बोली, “नहीं, खोद ही रहा है खा नहीं रहा।” एक अन्य बच्चा बोला, “देखो, वो गाजर उखाड़-उखाड़ कर सामने रख रहा है, इतनी सारी उखाड़ लीं।” फिर पढ़ना जानने वाला एक बच्चा बोला, “नहीं, ख़रगोश कह रहा है गाजर खा लो।” मैंने कहा, “मतलब वह किसी को गाजर खाने के लिए दे रहा है।” जिस बच्चे ने पढ़ा था, उसने ‘हाँ’ बोला। पर वो बच्ची बोली, “नहीं दे रहा है क्योंकि जब



ख़रगोश ने कहा – गाजर खा लो।

चित्र 6

हम किसी को कुछ देते हैं तो उसके ऐसे हाथ होते हैं (उसने सामने की तरफ़ हाथ किए) और ख़रगोश ऐसे हाथ किए है। ऐसे में गाजर खोदा जाता है, दिया नहीं जाता।” फिर एक बच्ची बोली, “मैडम, मेरे मामा के घर खेत है। हम जब उसमें मूली लेने जाते हैं, तो ऐसे ही खोदते हैं।” उसने ख़रगोश के जैसे हाथ करके बताए। पर जिस बच्चे ने पढ़ा था वो अपनी बात पर तर्क दे रहा था। अब मेरे सामने मुश्किल आ गई कि मैं किसको सही बोलूँ, क्योंकि सब अपने-अपने हिसाब से सही तर्क दे रहे थे। जिस बच्चे ने पढ़ा था उसका भी तर्क था और जिसने सिर्फ़ चित्र देखा उसका अपना तर्क था। तो मैंने एक सवाल किया, “अच्छा, अगर ख़रगोश गाजर खोदकर

खाता तो उसके हाथ कैसे होते?" इसपर सब एकमत हुए कि अगर वो खाता तो गाजर उल्टी दिखाई दे रही होती। जैसी चित्र में है, वैसी नहीं। गाजर नोक की तरफ़ से खाई जाती है। यह सब बातचीत बुन्देलखण्डी मिली हिन्दी में हो रही थी।



चित्र 7

हम आगे बढ़े और अगले चित्र पर बातचीत हुई। यहाँ मैंने नीचे के टेक्स्ट पर हाथ रख लिया। फिर पूछा तो उस बच्ची की तरफ़ से जवाब आया, "गधा किसी को ग़ुस्से में देख रहा है।" मैंने पूछा, "और कुछ नहीं है?" वो बोली, "नहीं।" फिर दूसरे बच्चे ने बोला, "हाँ, ऐसे देख रहा है कि मैं तुम्हें खा जाऊँगा।" मैंने पूछा, "किसको खा जाएगा?" बच्चे बोले, "जिसको देख रहा है उसको।" शिक्षिका ने अब दूसरे बच्चों को भी भेज दिया और हम समूह में बात करने लगे। बातचीत बुन्देलखण्डी में हो रही थी।



चित्र 8



चित्र 9

हमने आगे बात करना शुरू किया। अगले चित्र पर मैंने पूछा, "क्या हो रहा है इसमें?" यहाँ अलग-अलग बच्चों की प्रतिक्रिया आई। पहला चित्र देखकर बच्चे ज़्यादा कुछ नहीं समझे। एक बच्चा बोला, "गधा ग़ुस्से में देख रहा है तो मकड़ी छुप रही है।" मैंने कहा, "इतने छोटे-से पत्थर के यहाँ कैसे छुपेगी?" फिर कुछ देर तक बच्चों ने सोचा। उसके बाद एक बच्चा बोला, "जो फ़त्तर (पत्थर) मिला वो वहाँ छुप गई।" मैंने कहा, "क्यों छुप रही होगी?" फिर एक बच्चा बोला, "मकड़ी नहीं, चींटी है।" सब उसकी तरफ़ देखने लगे। शायद उसने पढ़ लिया था जिसे मैं अपनी हथेलियों से छुपाए थी, क्योंकि यहाँ मुझे सिर्फ़ चित्र देखकर बच्चों के अनुभवों पर बातचीत करनी थी। वह बोला, "क्योंकि उसे गधे से डर लग रहा था। क्योंकि गधा फूँक मारता तो चींटी उड़ जाती।"



चित्र 10

अब मैंने दोनों पेजों को एक साथ सामने रखा। फिर बच्चों से पूछा, "इसमें क्या हो रहा है?" एक बच्चा बोला, "हाथी गन्ना ले जा रहा



चित्र 11

है।" एक अन्य बच्चे ने कहा, "हाथी गन्ना ले जा रहा है और गधा उसके सामने आ गया है तो गधा चिल्ला रहा है।" मैंने उससे पूछा, "क्यों चिल्ला रहा है?" जिस बच्ची से पहले बातचीत हो रही थी वह बोली, "गधे को हाथी से डर लग रहा है इसलिए चिल्ला रहा है।" मैंने उससे पूछा, "गधे को क्यों डर लग रहा है?" वो बोली, "क्योंकि हाथी गधे से बड़ा है।" अब यहाँ बच्चे पिछले पेज की बातचीत से इसे जोड़ रहे थे क्योंकि पहले मकड़ी या चींटी छोटी थी और गधा बड़ा, तो उन्हें गधे से डर लग रहा था। अब यहाँ हाथी बड़ा है और गधा छोटा, तो गधे को हाथी से डर लग रहा है। बच्चे बातचीत को जोड़ते बहुत जल्दी हैं।

हम अगले पेज पर गए और एक बच्चे ने तुरन्त कहा, "गिलहरी आम तोड़कर ले जा रही है और गधे ने उसे देखकर आँखें बन्द कर ली हैं।" मैंने पूछा, "गिलहरी आम तोड़ रही है तो वो गधा आँखें बन्द क्यों कर लेगा?" तब उसने कहा, "क्योंकि गधा अच्छा आदमी है।" इसपर



चित्र 12



चित्र 13

सब बच्चे हँस पड़े और बच्चा मुस्कुराते हुए चुप हो गया।

हम आगे बढ़े और अगला चित्र देखा। कुछ बच्चों ने पहले बिल्ली को शेर का बच्चा पहचाना, फिर मूँछ देखकर सबने उसे बिल्ली कहा। पर यहाँ किसी ने भी बिल्ली का बच्चा नहीं बोला। मैंने पूछा, "क्या हो रहा है?" बच्चे बोले, "बिल्ली गधे को देख रही है।" यहाँ सब क्लीयर थे कि बिल्ली गधे को देख रही है। मैंने पूछा, "क्या देख रही है?" वह बच्ची बोली, "गधा घास खा रहा है। उसके मो से घास गिर रही है तो बिल्ली उसे देख रही है।" उस बच्ची ने इस चित्र में भी सबसे पहले मुँह से गिरती हुई घास नोटिस की। एक और बच्चा बोला, "गधे की पूँछ पर मक्खी बैठ रही है तो गधा उसे देखकर हँस रहा है।" एक अन्य बच्चे ने कहा, "गधा मक्खी देखकर हँस रहा है और बिल्ली गधे को देखकर हँस रही है।" यह अवलोकन मुझे बेहद आश्चर्यजनक और काफ़ी अच्छा लगा। मैंने बच्चों से पूछा, "और



चित्र 14

क्या हो रहा है?" तो सबने बस चित्रों के रंग के बारे में बताया।

फिर हमने अन्तिम चित्र देखा और बातचीत को आगे बढ़ाया। एक बच्चे ने कहा, "सभी जानवर मिठाई की दुकान लूटने जा रहे हैं। शेर का बच्चा हाथी पर बैठा है और गधा आँखें बन्द करके जा रहा है।" मैंने बच्चे से पूछा, "गधा आँखें बन्द क्यों किए है?" तब मुझे उस बच्चे की बात याद आई जिसने बोला था कि गधा अच्छा आदमी है। इसलिए मैंने भी बोल दिया, "शायद इसलिए उसने आँखें बन्द कर लीं क्योंकि गधा अच्छा आदमी है।" वो बच्चा भी साथ में हँसने लगा। बच्चों से मैंने पूछा, "यह कैसे पता कि यह मिठाई की दुकान है।"



सब मिठाई खाने चल पड़े।

चित्र 15

एक बच्चे ने कहा, "यहाँ दुकानदार खड़ा है मिठाई के साथ, इसलिए।" फिर मैंने किताब के पहले पेज का मिठाई का चित्र दिखाया और पूछा, "यह मिठाई की दुकान नहीं है क्या?" तब बच्चों की तरफ़ से जवाब आया, "नहीं, क्योंकि यहाँ दुकानदार नहीं है।" अब यहाँ बच्चों का सीधा मानना था कि पहले के चित्र में केवल मिठाई रखी है तो वो मिठाई है। लेकिन अन्तिम चित्र में मिठाई के साथ दुकानवाला भी है तो यह मिठाई की दुकान है, क्योंकि उन्होंने दुकान पर हमेशा दुकानदार को देखा है। बिना दुकानदार के दुकान नहीं हो सकती है।

मैंने क्या समझा ?

बच्चों के साथ इस तरह की बातचीत के बाद उनके साथ भाषा की कक्षा में काम को लेकर बहुत सारे विचार मेरे मन में घूमते रहे। किसी भी कहानी के साथ दिए गए चित्रों के हाव-भाव बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं क्योंकि जब बच्चे चित्र देखते हैं तो उस चित्र के हाव-भाव पर भी उनका ध्यान होता है। बच्चे कहानी के चित्रों का बहुत सूक्ष्म अवलोकन करते हैं। चित्र के हाव-भाव अगर कहानी से अलग या विपरीत हों तो वे भी बच्चे पहचान लेते हैं, और शायद तब उनके मन में उस कहानी के प्रति उलझन पैदा हो जाती है। जैसे– ख़रगोश और गाजर को लेकर बच्चों के मन में कई प्रश्न और उनसे सम्बन्धित तर्क थे। अगर सीधे कहानी सुनाकर चित्र दिखाते तो कहानी के अर्थ एवं चित्रों पर किए बच्चों के स्वतंत्र चिन्तन में विरोधाभास होता। कहानी जितनी महत्त्वपूर्ण होती है चित्र भी उतने ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। बच्चों के लिए दोनों का बराबर महत्त्व होता है।

कहानीकार और चित्रकार के बीच ग़ज़ब का तालमेल होना चाहिए। वैसा तालमेल, जैसा संगीत गाते किसी गायक के गले और हारमोनियम बजातीं उसकी उँगलियों के बीच होता है। बच्चे अकेले चित्र को देखकर ही एक कहानी का निर्माण कर सकते हैं। अर्थात, कहानीकार की एक कहानी तो होती ही है, साथ में चित्रकार भी वही कहानी चित्रों के माध्यम से कह रहा होता है। बच्चे चित्र की बारीक़ियों पर भी बेहद ध्यान देते हैं। मसलन, 'मिठाई' कहानी पर कार्य करते हुए मैंने कभी गधे के हाव-भाव के अनुसार कहानी का मिलान नहीं किया था, पर बच्चों के लिए उसके हाव-भाव बहुत महत्त्वपूर्ण थे। बच्चों में चित्र देखकर भी स्वयं से कहानी बना लेने की अद्‌भुत क्षमता होती है। जब उन्हें स्वयं से वह कहानी सुनानी हो तो वे चित्रों के माध्यम से कहानी को नया आयाम देकर प्रस्तुत करते हैं।

चित्र के माध्यम से की गई कहानी की कल्पना उनकी मौलिक होती है।

मानक भाषा में कहानी सुनाए जाने पर बच्चे उसे उन्हीं मानक शब्दों के साथ याद रखते हैं। बाद में जब हम बच्चों से उसी कहानी को बोलने को कहते हैं तो मानक भाषा में सुनी हुई उस कहानी को वे अपनी स्थानीय भाषा में नहीं कह पाते, क्योंकि उनके आम बोलचाल में वह भाषा नहीं होती है। उन्हें वे शब्द भी नहीं मिल पाते हैं जिनमें बच्चे उस कहानी को प्रवाह में बोल सकें। इस तरह बार-बार ठीक से न बोल पाने पर बच्चों में आत्मविश्वास की कमी होने लगती है। वहीं जब बच्चे चित्र देख रहे होते हैं, तो चित्रों के माध्यम से वे मन में अपनी भाषा में कहानी को गढ़ रहे होते हैं। तब बच्चों से उनकी भाषा में कहानी सुनाने को कहने पर वे आत्मविश्वास के साथ उसे सुना पाते हैं क्योंकि उनकी स्थानीय भाषा के कई सारे शब्द उनके पास होते हैं। इन शब्दों के माध्यम से वे अपनी भाषा में बोली हुई बात पर तर्क भी कर पाते हैं। मानक भाषा में सुनी कहानी की अपेक्षा स्थानीय भाषा में सुनी कहानी पर वे बेहतर तरीक़े से प्रतिक्रिया देते हैं और स्थानीय भाषा में कहानी को बेहतर बोल पाते हैं।

बच्चे अपने व्यवहारिक ज्ञान के आधार पर कहानी में अनुमान लगाते हैं। मसलन, जब मिठाई की दुकान के दुकानदार पर बातचीत हो रही थी तो बच्चे इस बात पर सहमत थे कि बिना दुकानदार के दुकान नहीं होती, और मिठाई के दुकानदार को उन्होंने मिठाईवाला कहा था। जब मैंने बच्चों से मिठाईवाली के ऊपर बातचीत की तो सारे बच्चे इस बात पर एकमत थे कि मिठाईवाली नहीं होती, मिठाईवाला ही होता है। ऐसा इसलिए क्योंकि उन्होंने अपने परिवेश में किसी महिला को मिठाई बेचते नहीं देखा था। इसके इतर जब मैंने सब्ज़ीवाली का उदाहरण देते हुए बात की तो बच्चे सब्ज़ीवाली और सब्ज़ीवाले पर सहमत थे, क्योंकि उन्होंने अपने परिवेश में सब्ज़ी बेचते हुए महिला एवं पुरुष, दोनों को ही देखा था। अर्थात, जो बच्चों ने अपने आसपास देखा होता है उसके आधार पर भी वे अनुमान लगाते हैं। बच्चों के बीच कहानी के साथ कोई भी गतिविधि करते समय उनके पूर्व-ज्ञान को ख़ूब उभारना चाहिए और गतिविधि में बार-बार उसका उपयोग करना चाहिए।

जो बच्चे भाषा को पढ़कर जानते हैं, वो कहानी के चित्रों से ज़्यादा शब्दों पर महत्त्व देते हैं। लेकिन जो नहीं पढ़ पाते, उनके लिए चित्र ही कहानी समझने का माध्यम या भाषा हो जाते हैं। इससे लाभ यह होता है कि बच्चे अपने अनुसार और अलग-अलग आयामों से कहानी के ऊपर चिन्तन कर पाते हैं। जो बच्चे कहानी पढ़ लेते हैं, उन सबके लिए कहानी का अर्थ सीमित होने की सम्भावना होती है, पर जो बच्चे पढ़ नहीं पाते उनमें हर बच्चे के लिए उस कहानी का अलग-अलग अर्थ काफ़ी रचनात्मक, व्यापक और रोचक होने की सम्भावना ज़्यादा रहती है। चित्र देखकर हर बच्चा अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर चिन्तन कर उसका अर्थ निर्माण कर रहा होता है। बच्चे कहानी के शब्दों के साथ चित्रों के भाव को जोड़कर उस कहानी के अर्थ को ग्रहण करते हैं।

बच्चों के अन्दर उपजा आत्मविश्वास ही उनकी पाठ की विषयवस्तु से जुड़ने और सीखने की पहली कड़ी साबित हो सकता है। कमज़ोर आत्मविश्वास से घिरा बच्चा उतना बेहतर नहीं सीख सकता, जितना हम चाहते हैं।

सुमन पटेल ने डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय सागर से इतिहास विषय में स्नातकोत्तर की पढ़ाई की है। स्कूल में शिक्षकों के साथ बाल साहित्य को लेकर काम करने में उनकी विशेष रुचि है। बच्चों के लिए लघु कहानियाँ और कविताएँ लिखने के साथ-साथ बुन्देली भाषा में शिक्षकों और बच्चों के साथ कहानी सुनाने की विधा को लेकर लगातार प्रयास कर रही हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन सागर, मध्य प्रदेश में टीचर एजुकेटर के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : suman.patel@azimpremjifoundation.org

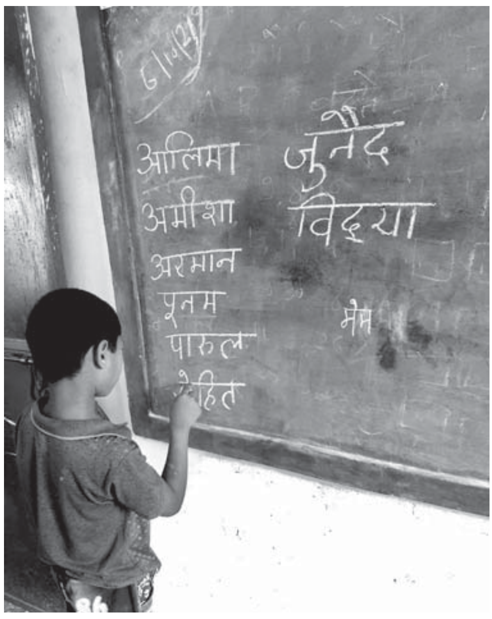
भाषा शिक्षण के तरीक़े

मुरलीधर गुर्जर

बच्चों के लिए भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया शुरुआती शिक्षण का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। यह लेख पढ़ना-लिखना सीखने की कई तरह की कक्षागत प्रक्रियाओं की चर्चा करता है। लेखक अनुभवों के आधार पर बताते हैं कि पढ़ना-लिखना सीखने के पारम्परिक तरीक़े बहुत संगत नहीं होते और रटने पर ज़ोर देने के चलते बच्चे भाषा की समझ विकसित नहीं कर पाते। लेख में वे उदाहरण के साथ यह भी बताते हैं कि पारम्परिक तरीक़ों की बजाय भाषा सीखने के विभिन्न नवाचारी तरीक़ों का कक्षाओं में इस्तेमाल भाषा अधिगम के लिए अधिक उपयोगी है। -सं.

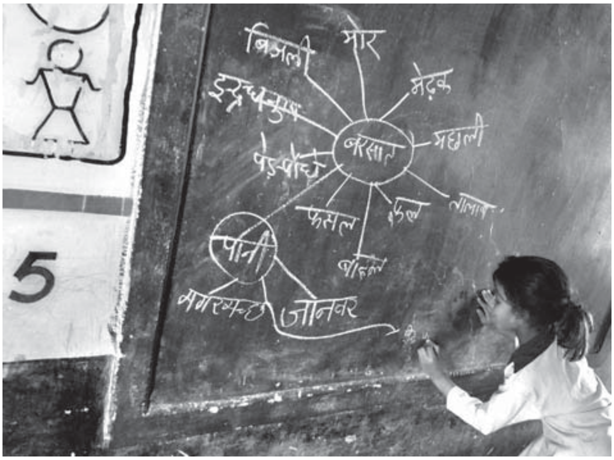
बालक जब स्कूल आता है तो अपने साथ इतना अनुभव लेकर आता है कि वह अपने परिवेश की ध्वनियों से सम्बन्ध जोड़ पाने में सक्षम होता है, चाहे वह उन्हें मौखिक सुने या फिर पढ़कर। वह ध्वनियों को सुनता है, उनको अपने अनुभव के साथ जोड़ता है और उन्हें अर्थ देता है। लिखने में, इससे एक क़दम आगे बढ़कर उसे अपने अनुभवों को काग़ज़ पर उतारना होता है। लिखने के इस ढंग को अपने अनुभवों से जोड़ने का काम बच्चा, स्कूल के वातावरण में स्वतः ही करने लगता है। पढ़ना-लिखना समझने में प्रतीकों की पहचान, वर्गीकरण, उच्चारण, प्रतीकों के साथ मात्राओं के लगने पर उच्चारण में होने वाले परिवर्तन को समझने व समझाने का विशेष प्रयास और सकारात्मक वातावरण देने का काम विद्यालय करता है।

बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखाने के कई तरीक़े हैं। सभी तरीक़े बच्चों की सीखने-सिखाने में मदद करते रहे हैं, लेकिन कुछ तरीक़े बच्चों के सीखने के ढंग के अनुरूप और समझ विकास की दृष्टि से अधिक सार्थक होते हैं। ऐसा मेरा अनुभव है। शिक्षण प्रक्रिया में बच्चों की उम्र, कक्षा स्तर, सीखने के मसौदे (यथा– पढ़ने का कौशल, विषय सामग्री, आदि), सीखने की गति एवं बाल मनोविज्ञान की समझ के अनुरूप सोची गईं विविध गतिविधियाँ करने से सीखने की गति बढ़ सकती



चित्र : पारुल बत्रा दुग्गल

है। बच्चों के साथ किए जाने वाले इन कार्यों में चर्चाएँ और बच्चों को स्वतंत्र करने के प्रयास के मौक़े, जिनमें ग़लती करने पर उपहास अथवा दण्ड का डर न हो, आवश्यक हैं। इसके लिए उन्हें सीखने के सार्थक वातावरण में पर्याप्त अवसर मिलने की ज़रूरत है। इस प्रकार के मौक़ों से बच्चे पढ़ने-लिखने की भाषाई कुशलता भी हासिल कर पाएँगे।



चित्र : मुरलीधर गुर्जर

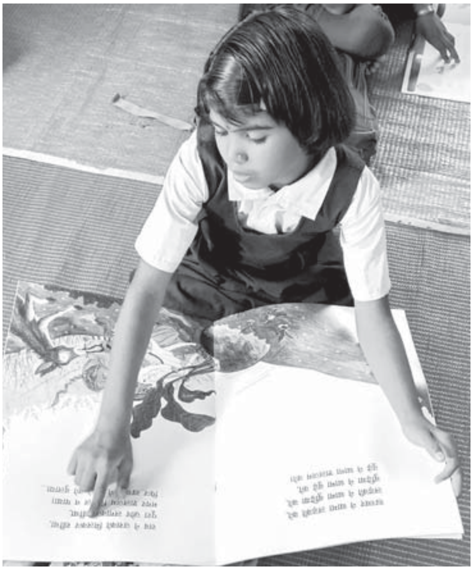
सामान्यतः, भाषा शिक्षण की यह समझ बनी हुई है कि पहले क, ख, ग, आदि वर्ण याद करवा लो। जब बालक सभी वर्ण याद कर ले और उन्हें पहचानने व लिखने लग जाए, तब उसे मात्राओं की बारहखड़ी याद करवाई जाती है। इसके बाद पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है। फिर दो-तीन वर्ण के शब्द पढ़वाए जाते हैं। पढ़ने के इस ढंग में शब्द को मन में एक-एक वर्ण में तोड़ने और फिर जोड़ने की प्रक्रिया सिखाई जाती है। इस क्रम से, उसे धीरे-धीरे वाक्य को धाराप्रवाह पढ़ने की ओर बढ़ना होता है। इस तरीक़े में ख़ामी यह है कि वर्ण क, ख, ग, आदि बच्चे के लिए अमूर्त होते हैं। वह उनका वास्ता सीधे-सीधे किसी चीज़ से नहीं जोड़ पाता है। इन वर्णों से उसके मन में कोई छवि भी नहीं बनती। इससे धीरे-धीरे बच्चे की सीखने की गति और कम होने लगती है। उसे शब्द पढ़ने और लिखने की प्रक्रिया में ज़्यादा समय लगने लगता है, और उसके पढ़ने में प्रवाह जल्दी नहीं आ पाता है।

दूसरा तरीक़ा यह है कि वर्ण से शुरू करने की जगह शिक्षक 'क' से कबूतर, 'ख' से ख़रगोश बताते हुए वर्णों को याद करवाते हैं, और आगे वही प्रक्रिया लेते हैं जो ऊपर अपनाई गई है। यहाँ भी बच्चों के पठन में प्रवाह की कमी होती है। इस विधि में बच्चे वर्णमाला को सन्दर्भ के साथ जोड़कर याद तो कर लेते हैं, लेकिन समझना यहाँ भी गौण ही है। शिक्षा सहयोगी अपनी प्रक्रिया को यह कहके पुष्ट करता है कि बच्चा 'क' को कबूतर के साथ जोड़कर देख तो रहा है। लेकिन यहाँ कबूतर पर किसी तरह की बातचीत नहीं होती है। बच्चा 'क' और कबूतर नाम में आपसी सम्बन्ध देख नहीं पाता है। कबूतर क्या है, और कबूतर शब्द में 'क' का क्या स्थान है, इसे वह नहीं समझ पाता है। बच्चों के लिए कई बार कार्डों पर बने चित्रों के साथ दिए गए शब्द उस चित्र के लिए स्वाभाविक रूप से ज्ञात शब्द नहीं होते। और वैसे भी इन कार्डों पर बनी छवि में भी पूरे शब्द को चित्र रूप में पहचानना व चित्र को ठीक से देखना ही होता है। सार्थक न होने के कारण अक्षर की पहचान नहीं हो पाती।

सन्दर्भ के साथ पढ़ना

इस तरीक़े में पहले किसी सन्दर्भ पर चर्चा की जाती है। मसलन, कबूतर पर बच्चों के साथ चर्चा करना। बोर्ड पर कबूतर का चित्र बनाकर उसके नीचे कबूतर शब्द लिखकर यह पहचान करवाई जाती है कि यह जो लिखा गया है, वह कबूतर है। यानी, यह चित्र कबूतर का है और वही लिखा भी गया है। यह माना जाता है कि जब बच्चा शब्द की आकृति को कबूतर के साथ जोड़कर देखेगा, उसके दिमाग़ में कबूतर पर की गई चर्चा में आए सन्दर्भ होंगे। यानी, बच्चा शब्द की आकृति को भी सार्थकता के साथ पहचान रहा होगा। हालाँकि,

यहाँ पर वह शब्द को एक चित्र के रूप में ही पढ़ रहा होता है, पर इस प्रक्रिया में वह शब्द-चित्र को समझ रहा होता है। यह सहज प्रक्रिया उसे पढ़ने की मूलभूत दक्षताओं के विकास में मदद कर रही होती है। इस प्रकार, धीरे-धीरे नए शब्द पढ़ना और उनके साथ-साथ कुछ वर्णों व मात्राओं की पहचान का काम किया जा सकता है। ऐसा करने से सीखने की प्रक्रिया आगे चलने लगती है। इस प्रक्रिया का फ़ायदा यह है कि वर्णों को अलग-अलग करके पढ़ने के स्थान पर बच्चा शुरू से ही अर्थपूर्ण शब्द पढ़ना सीख रहा होता है। यही पढ़ने का सही तरीक़ा है, क्योंकि अक्षर-अक्षर अथवा हिज्जे-हिज्जे कर पढ़ने पर वाक्य ही नहीं, शब्द के भी अर्थ निर्माण का कार्य बहुत मुश्किल हो जाता है।



हिमांशु खोले

इसी तरह का प्रयास कुछ शिक्षकों ने कक्षा के बच्चों के नामों से शुरू किया है। इस तरीक़े से पढ़ना सिखाने में बच्चा अपने नाम को आसानी से और कम मेहनत में पहचानने लगता है, क्योंकि वह उसका अपना नाम होता है, और अपने नाम को पढ़ व लिख पाने की तीव्र इच्छा हर बच्चे में होती है। साथियों में रुचि के कारण वह उनके नामों को भी आसानी से पहचानने लगता है। उनके नाम का सन्दर्भ तो उसके लिए किसी वस्तु, प्राणी, पक्षी, आदि के चित्र से भी ज़्यादा मूर्त होता है। नाम का सम्बन्ध अपने दोस्त के मूर्त रूप से जोड़कर वह पहले से भी देख रहा होता है, और अब उसे नाम की लिखित आकृति को जोड़ने की ओर बढ़ना होता है। धीरे-धीरे मैंने भी अन्य सार्थक शब्दों की पहचान के साथ-साथ पढ़ पाने की ओर बढ़ने के लिए बच्चों के नामों का प्रयोग किया। बच्चों के नाम का उपयोग कर पढ़ना सिखाने के काम का अनुभव मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरी कक्षा 1 के लगभग 20-25 बच्चे थे। यह काम मैंने अगस्त में शुरू किया और बच्चों को अब स्कूल में आते लगभग 3 माह हो गए थे।

मैंने सभी बच्चों के नाम के कार्ड बनाए और हर बच्चे को उसके नाम का कार्ड दे दिया। बच्चे पहले भी अपने नाम को नोटबुक या पुस्तक पर लिखा देखते थे। नाम की ध्वनि तो वे घर, परिवार, समुदाय, दोस्तों के बीच और स्कूल में सुनते ही थे। बच्चों को कहा गया कि उनके पास जो कार्ड आया है, उसपर उनका नाम लिखा है, उसे ठीक से देख लें। कुछ देर तक देखने के बाद बच्चों से कार्ड वापस ले लिए गए। फिर सभी कार्डों को इकट्ठा करके ताश के पत्तों की तरह मिला दिया गया। अब एक-एक कार्ड दिखाते हुए बच्चों से पूछा गया कि इसपर किसका नाम लिखा है। किसी ने बताया, किसी ने नहीं बताया। जिसने नहीं बताया, उसे मैंने बता दिया। यह प्रक्रिया एक-दो दिन चली और बच्चे अपने लिखित नाम पहचानने लगे। इस प्रक्रिया में बच्चे ख़ुद का नाम तो पहचान ही रहे थे, साथ में अपने साथियों के नामों की पहचान पर भी उनकी हल्की-फुल्की समझ बन रही थी। कुछ दिनों बाद, पर्ची पर हर बच्चे को उसके दोस्तों के भी नाम दिए गए। इस प्रकार, एक-दो माह में हर बच्चा कक्षा के सभी बच्चों के नाम पढ़ने लगा। इसके साथ-साथ हम नाम की प्रथम ध्वनि-अन्तिम ध्वनि, नाम को तोड़ना-जोड़ना, मात्राओं की पहचान, आदि पर भी काम कर रहे थे। इससे बच्चों की वर्ण पहचान की प्रक्रिया में बहुत इज़ाफ़ा हुआ और वे सहजता के साथ शब्द पढ़ने की ओर चल पड़े।

बच्चों के साथ रोज़ होने वाली बातचीत में उनके अनुभव वे साझा करते थे। बच्चों के इन अनुभवों को बोर्ड पर लिखकर, उनपर चर्चा भी की गई और उन अनुभवों में भी कक्षा के बच्चों के नामों का समावेश किया गया। बच्चों के परिवार के सदस्यों के नामों को भी उन अनुभवों में शामिल किया गया और नए शब्द-नाम पहचानने पर निरन्तर ज़ोर दिया गया। मसलन, रमेश से पूछा गया कि आपने कल क्या काम किया था? रमेश ने जवाब दिया कि (बच्चों के शब्दों को ब्लैकबोर्ड पर मानक शब्दों में लिखा गया) कल तो मैं तालाब में नहाने गया था, मेरे साथ सुरेश भी था। फिर अपनी मम्मी के साथ मामा के घर गया। इस प्रकार एक-दो लाइन का अनुभव लिखकर, इन लाइनों को तीन-चार बार पढ़ा गया। बच्चे भी साथ-साथ बोलते हुए पढ़ रहे थे। पढ़ते समय शब्दों पर उँगली रखता जाता था। इन दो वाक्यों में कुछ शब्दों पर विशेष ज़ोर दिया गया, जैसे– तालाब, मामा, सुरेश, आदि। फिर इन शब्दों को अलग से लिखकर इनकी शब्द-आकृति पहचानने पर ज़ोर दिया गया और वही प्रक्रिया अपनाई गई। अर्थात, प्रथम ध्वनि-अन्तिम ध्वनि की पहचान, शब्दों को तोड़ना-जोड़ना, आदि।[1] कक्षा में कहानी या कविता सुनाकर उसके दो-तीन वाक्यों को बोर्ड पर लिखकर भी उपरोक्त प्रक्रिया अपनाई गई।



इस प्रकार सीधे-सीधे वर्ण सिखाने की बजाय ऐसे अभ्यास करने ज़्यादा फलदायक हैं जिनमें पूरे शब्दों को पढ़ना हो। और जब बच्चों के पास शब्दों का एक भण्डार बन जाए तब उनमें आई ध्वनियों को अलग-अलग करके देखने और उन्हें किसी प्रतीक के साथ जोड़कर देखने जैसे काम भी आवश्यकतानुसार किए जा सकते हैं। पढ़ने के लिए इस तरह की स्वाभाविक प्रक्रियाएँ करने से आगे बच्चे को शब्दों / वाक्यों को पढ़ने में समस्या नहीं आती है।

मेरा अनुभव यह रहा है कि बच्चे के साथ शब्द-पहचान व पढ़ने के प्रयास का कार्य अलग-अलग तरीक़ों से हो तो उस कार्य में बच्चों की रुचि रहती है और सीखना भी आसान व तेज़ गति से होता है।

कुल मिलाकर, चूँकि सार्थक पढ़ने के प्रयास से ही पढ़ना सीखा जाता है, अतः बच्चे के लिए प्रिंट रिच वातावरण बनाने की भी ज़रूरत है। स्कूल की दीवारों पर पोस्टर हों और बच्चों के जाने-समझे व उनके लिए रोचक मसलों पर कुछ-कुछ लिखा हो। बच्चों के स्तर की कहानियों, कविताओं एवं अन्य सामग्री वाली पुस्तकें स्कूल में बच्चों को पढ़ने के लिए सरलता से उपलब्ध हों। इससे बच्चे लगातार पढ़ने के प्रयास में संलग्न रहेंगे और धीरे-धीरे धाराप्रवाह पढ़ने में उनकी मदद होगी। इसके लिए पढ़ी हुई सामग्री एवं अन्य विषयों पर बच्चों के साथ संवाद करना भी मददगार होगा।

1. इस विषय पर विस्तृत चर्चा के लिए *पाठशाला* सितम्बर 2022 में प्रकाशित अंक 13 में छपे मीनू पालीवाल के लेख 'बच्चों के नामों से पढ़ना-लिखना सिखाना' देखें।

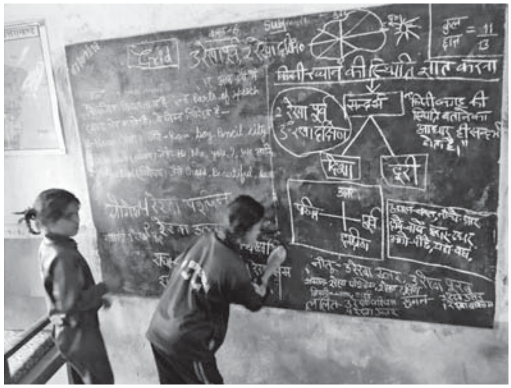
मुरलीधर गुर्जर ने समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर की पढ़ाई की है। आपने लम्बे समय तक 'दिगंतर' जयपुर में बच्चों को पढ़ाने के साथ ही शिक्षा के अन्य पहलुओं पर कार्य किया है। आपको शिक्षा और शिक्षा के अधिकारों पर कार्य करने वाली संस्थाओं 'समांतर' और 'प्रयत्न' में कार्य करने का अनुभव है। पत्र-पत्रिकाओं में शिक्षा पर लेख लिखते रहते हैं। मुरलीधर वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन टोंक, राजस्थान में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : murlidhar.gurjar@azimpremjifoundation.org

बच्चों के साथ कक्षा में अक्षांश–देशान्तर पर कार्य के अनुभव

विजय आनंद नौटियाल





कक्षा 6, 7 और 8 के 15 बच्चों के साथ अक्षांश और देशान्तर रेखाओं पर काम किया गया। इसलिए हर दिन हम कुछ गतिविधियाँ और बातचीत करते थे। यह काम तीन दिन तक, हर दिन दो कालांश में किया गया और फिर सम्बन्धित अध्याय पढ़ा गया। इस लेख में बच्चों के साथ जो गतिविधियाँ की गईं, उनका विवरण व उनसे उपजे विचार दिए गए हैं।

गतिविधि 1 : मैं कहाँ हूँ?

कक्षा में सामान्य बातचीत के बाद मैंने प्लास्टिक की गेंद बच्चों को दिखाते हुए उनसे पूछा, "हम कैसे पता करेंगे कि धरती पर कौन-सा स्थान कहाँ पर है?"

बच्चे चुप थे। मैंने फिर पूछा, "हम सब अभी कहाँ पर हैं?"

सभी बच्चे एक साथ... "स्कूल में।"

"स्कूल में कहाँ पर?"

"कक्षा में।"

"और कक्षा में इस समय मैं कहाँ खड़ा हूँ?"

एक बच्चा, "खिड़की के पास।"

मैंने कक्षा में अपनी स्थिति दो-तीन बार बदलते हुए हर बार पूछा, "अब मैं कहाँ हूँ?"

बच्चों के जवाब थे, 'दरवाज़े के पास', 'दीवार के पास', आदि।

मैंने पूछा, "इस कमरे में आप लोग मेरी स्थिति बताने के लिए क्या आधार ले रहे थे?"

जवाब न आने पर मैंने कहा, "जैसे जब मैं यहाँ पर था (खिड़की के पास जाते हुए) तो आप लोगों ने मेरी स्थिति बताने के लिए किसका आधार लिया था?"

उत्तर आया, "खिड़की के पास।"

"और किन-किन चीज़ों के नामों का सहारा लिया था?"

सभी बच्चे एक साथ बोले, 'दरवाज़ा', 'दीवार', 'खिड़की' आदि।

कक्षा में हमारी स्थिति बताने में मदद कर रही इन वस्तुओं को सन्दर्भ स्थान कह सकते हैं। कक्षा में अपनी जगह बताने के लिए आप इनमें से किसी भी सन्दर्भ स्थान का सहारा ले सकते हैं। ये सन्दर्भ स्थान ऐसे होने चाहिए जिनकी जगह नहीं बदले। यदि आप कहें कि वह कुर्सी के आगे है या बेंच के पीछे, तो इसमें समस्या हो सकती है क्योंकि कक्षा में बहुत-सी बेंच और कुर्सियाँ हैं। साथ ही हम इन सन्दर्भ बिन्दुओं के साथ आगे-पीछे, अगल-बग़ल, समीप-दूर भी बोल रहे थे।

मैंने मेज़ के समीप जाकर हाथ के इशारे से मेज़ का अगल-बग़ल, आगे-पीछे, दूर व पास बताया। उन्होंने अन्दाज़ा लगाया कि ये सारे शब्द दिशा के लिए उपयोग किए जा रहे हैं।

प्रश्न : "क्या दिशा किसी सन्दर्भ के बिना बताई जा सकती है? क्या मेज़ के बिना उसका अगल-बग़ल, आगे-पीछे या दूर-पास आदि जानकारी बताई जा सकती है?"

सभी बच्चे एक साथ बोले, "नहीं।"

वे समझ पा रहे थे कि किसी की स्थिति बताने के लिए दिशा भी ज़रूरी है।

गतिविधि 2 : दिशाओं में स्थानीयता व ग्लोबलता

प्रश्न : "अच्छा, आप बताओ कि यहाँ से आपका घर कहाँ है?"

उत्तर : "सर, उधर"। (हाथ से इशारा करते हुए)

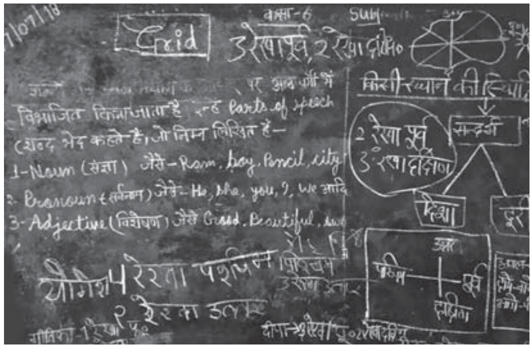
प्रश्न : "और कक्षा 8 कहाँ पर है?"

उत्तर : "ऊपर वाली मंज़िल में।"

प्रश्न : "नवोदय स्कूल कहाँ है?"

उत्तर : "जी, उधर सामने है।" (हाथ का इशारा करते हुए)

प्रश्न : "लोहाघाट कहाँ है?"



उत्तर : "उधर।" (ज़ोर देते हुए हाथ से एक ओर इशारा करती है।)

प्रश्न : "अपने आसपास की जगहों को बताने के लिए इधर-उधर, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, अगल-बग़ल, आदि शब्दों का उपयोग कर सकते हैं। लेकिन किताबों में दिशाओं के लिए कौन-कौन से शब्द हैं?"

बच्चे एक साथ, 'पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण।'

प्रश्न : "अकसर हम इन दिशा सूचक शब्दों का उपयोग नहीं करते। राधा ने ऐसा नहीं बोला कि उसका घर पूर्व में है या पश्चिम या उत्तर या दक्षिण में। उसने ऐसा ही क्यों बोला कि 'उधर' है।"

इस सवाल पर चर्चा की गई कि इस बात के दो-तीन कारण हो सकते हैं :

- हो सकता है कि राधा को दिशाओं के बारे में पता न हो। मसलन, यहाँ से पूर्व दिशा कहाँ है, या पश्चिम, उत्तर या दक्षिण दिशा कहाँ हैं। इसलिए शायद उसने इन शब्दों का उपयोग नहीं किया होगा।
- ये भी हो सकता है कि हमें यहाँ से दिशाओं का पता हो, मगर उसे लगा हो कि जिनको हम बताना चाहते हैं शायद उनको न पता हो कि यहाँ से पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आदि दिशाएँ कहाँ हैं।



- या फिर इसलिए भी कि राधा जिसको अपने घर का पता बताना चाहती है, वह उसके सामने ही है। दूसरा, 'उधर' बोलने के साथ ही वह अपने हाथों व आँखों का इशारा भी करती है कि मेरा घर उधर है। इससे दूसरा व्यक्ति समझ जाता है कि राधा का घर उधर है, खर्ककार्की स्कूल से उधर।

मैंने पूछा, "यदि यही बात किसी ऐसे व्यक्ति को बतानी हो जो कहीं दूर है तो कैसे बताएँगे।"

एक बच्चा : "सर, फ़ोन से बताएँगे।"

एक अन्य बच्चा : "सर, लिखकर भी बताएँगे।"

"यदि उस व्यक्ति को लिखकर या फ़ोन से यही दोनों बातें बता दें कि राधा का घर खर्ककार्की स्कूल से 'उधर' है तो क्या वह व्यक्ति समझ जाएगा कि राधा का घर कहाँ है?"

लगभग सभी बच्चे, 'हाँ'।

"ठीक है, उसे यह दोनों जानकारियाँ फ़ोन से या लिखकर मिल जाती हैं। अब अगर वह राधा के घर आना चाहे तो कैसे आएगा?"

योगेश : "वह सबसे पहले यहाँ स्कूल में आएगा?"

"क्यों?"

योगेश : "क्योंकि उसे बताया गया है कि राधा का घर खर्ककार्की स्कूल से 'उधर' या वहाँ है।"

"ठीक, और क्या करेगा?"

योगेश : "और फिर वह स्कूल से 'उधर' जाएगा।"

"उधर, यानी किधर जाएगा, यह कैसे तय करेगा? लिखने या फ़ोन करने में तो चेहरे के हाव-भाव या आँखों या हाथों के इशारे की तो बात हो ही नहीं सकती। फिर तो व्यक्ति को राधा के घर की दिशा जानने में दिक़्क़तें आ जाएँगी।"

गतिविधि 3 : स्थिति निर्धारण में सन्दर्भ दिशा और दूरी की अहमियत

आज शुरुआत इस सवाल से की गई कि चम्पावत में पोस्ट ऑफ़िस कहाँ है। कुछ इस प्रकार के जवाब मिले :

गीतिका : "सिप्टी वाली रोड पर।"

योगेश : "तिवाड़ी होटल से ललुवापानी की रोड पर।"

सुमन : "शान्त बाज़ार में।"

प्रश्न : "गीतिका ने कहा कि सिप्टी वाली रोड पर। इसमें सिप्टी क्या हुआ?"

त्रिपुरारी : "सन्दर्भ।"

प्रश्न : "तिवाड़ी होटल से ललुवापानी की रोड पर, इसमें तिवाड़ी होटल क्या हुआ?"

राधा : "सन्दर्भ।"

प्रश्न : "और ललुवापानी की रोड किस बात की ओर इशारा कर रही है?"

रानी : "दिशा।"

"यानी सिप्टी वाली रोड से यह पता चलता है कि चम्पावत में, पोस्ट ऑफ़िस सिप्टी की



ओर है, लेकिन कितनी दूरी पर है यह पता नहीं चलता। इस जानकारी से हम पोस्ट ऑफ़िस पहुँच पाएँगे।"

बच्चों ने कहा, "नहीं।"

प्रश्न : "तिवाड़ी होटल से ललुवापानी रोड पर, यानी तिवाड़ी होटल सन्दर्भ स्थान है और ललुवापानी रोड एक ख़ास दिशा बता रही है। पोस्ट ऑफ़िस के लिए तिवाड़ी होटल से ललुवापानी रोड की ओर जाना है तो क्या हम पोस्ट ऑफ़िस पहुँच जाएँगे?"

ललित : "हाँ, ललुवापानी रोड पर चलते रहेंगे और किसी से पूछ लेंगे कि पोस्ट ऑफ़िस कहाँ है। हमें पोस्ट ऑफ़िस मिल जाएगा।"

"ठीक कहा ललित ने, पर इस प्रक्रिया में हमें दूसरे से पूछना पड़ रहा है और वह भी किसी एक से नहीं, बल्कि कई लोगों से। लेकिन यदि हमें यह पता चल जाता है कि पोस्ट ऑफ़िस चम्पावत से ललुवापानी रोड पर कितनी दूरी पर है तो हम सीधे वहाँ तक पहुँच सकते हैं।"

प्रश्न : "सुमन ने कहा था कि पोस्ट ऑफ़िस शान्त बाज़ार में है। क्या इससे हम पोस्ट ऑफ़िस पहुँच जाएँगे?"

योगेश : "नहीं, इसमें दिशा और दूरी दोनों ही नहीं ठहरीं।"

प्रश्न : "बताओ, किसी व्यक्ति या जगह की स्थिति को बताने के लिए क्या चीज़ें ज़रूरी हैं?"

सुमन : "सन्दर्भ स्थान या बिन्दु, दिशा और दूरी।"

अब हमने अपनी कक्षा में कुछ चीज़ों की स्थिति जानने का प्रयास किया।

गतिविधि 4 : हमारी बोतलें कहाँ–कहाँ हैं ?

बच्चों के पास अपनी-अपनी पानी की बोतल थी। हमने कक्षा में उनकी बोतल की स्थिति का निर्धारण करने की कोशिश शुरू की।

हमने बेंच के मध्य आयताकार आकृति बनाई और इसमें कुछ बोतलों को व्यवस्थित किया।

प्रश्न : "ये 1 नम्बर की बोतल इस आयताकार फ़र्श में कहाँ है?"

मैंने उनकी मदद के लिए कहा कि आप लोगों ने मेरी स्थिति दरवाज़े के पास या खिड़की के पास बताई थी।

अमान : "1 नम्बर वाली बोतल, 3 नम्बर वाली बोतल के सामने है।"



प्रश्न : "3 नम्बर वाली बोतल के सामने 1 नम्बर वाली बोतल ही कैसे है? क्या उसके सामने 4 नम्बर या 5 नम्बर वाली बोतल नहीं हैं? हम बोतल की स्थिति कैसे तय कर रहे हैं?"

नीतू : "सर, इस फ़र्श में तो इन बोतलों के अलावा कुछ और है ही नहीं, तो कैसे बताएँ?"

प्रश्न : "हमने अभी बात की थी कि किसी व्यक्ति या जगह की स्थिति को बताने के लिए क्या-क्या चीज़ें ज़रूरी हैं?"

सभी बच्चे एक साथ, 'सन्दर्भ', 'दिशा' और 'दूरी'।

"यहाँ भी सन्दर्भ, दिशाएँ और दूरी निश्चित करनी चाहिए। अब इस आयताकार फ़र्श पर दिशाएँ निर्धारित करो।"

मेहबिस ने आयताकार फ़र्श को चार बराबर भागों में बाँटा है और दिशाओं को तय किया।

प्रश्न : "अब कौन-कौन सी बोतल कहाँ है?"

त्रिपुरारी : "कुछ बोतलें उत्तर-पूर्व (उ.पू.) में हैं, कुछ उत्तर-पश्चिम (उ.प.) में, कुछ दक्षिण-पूर्व (द.पू.) तो कुछ दक्षिण-पश्चिम (द.प.) में हैं।"

प्रश्न : "पीले रंग की बोतल कहाँ है?"

त्रिपुरारी : "द.पू. में।"

प्रश्न : "और गुलाबी रंग की?"

त्रिपुरारी : "सर, द.पू. में।"

प्रश्न : "और ये हरे रंग के ढक्कन वाली बोतल कहाँ है?"

त्रिपुरारी : "ये भी द.पू. में है।"

प्रश्न : "और ये सफ़ेद रंग की?"

त्रिपुरारी : "ये भी द.पू. में है।"



प्रश्न : "इस प्रकार तो इन चारों की एक ही स्थिति हुई, अब क्या करें!"

मैंने फिर उन्हें याद दिलाने की कोशिश की कि किसी वस्तु या जगह की स्थिति तय करने के लिए सन्दर्भ, दिशा और दूरी, तीनों ज़रूरी हैं।

प्रश्न : "यहाँ हमने किस-किस चीज़ का पता लगा लिया है?"

ललित : "दिशा का।"

"अब क्या बचा?"

योगेश : "सर, दूरी।"

प्रश्न : "अब दूरी कैसे तय करें?"

अब दिशाओं की इन खड़ी व पड़ी (आड़ी), दो रेखाओं से चौकोर फ़र्श चार भागों में बँट गया। सभी बोतलें अब इन चारों भागों यानी, उ.पू., उ.प., द.पू. व द.प. में स्थित हैं। थोड़ी देर के लिए बोतलों को वहाँ से हटाया गया ताकि दूरी को नापने हेतु ग्रिड बनाया जा सके।

प्रश्न : "ये खड़ी व पड़ी रेखाएँ एक दूसरे को जिस बिन्दु पर काटती हैं, वह इस चौकोर फ़र्श का क्या हुआ?"

सभी बच्चे एक साथ बोले, वह 'केन्द्र' है।

इसी बिन्दु से इन बोतलों की दिशा व दूरी का मापन किया जा सकता है। दूरी के लिए इन खड़ी व पड़ी रेखाओं के समानान्तर अन्य रेखाएँ एक समान अन्तराल पर खींच सकते हैं। चौकोर फ़र्श पर मध्य बिन्दु पर स्थित खड़ी रेखा को 0 मानते हुए इसके समानान्तर 1, 2, 3, 4 व 5 तक पूर्व की ओर तथा 1, 2, 3, 4 व 5 पश्चिम की ओर, चार-चार खड़ी रेखाएँ और खींची गईं। इसी प्रकार, पड़ी रेखा को 0 मानते हुए उसके समानान्तर भी 1, 2, 3, 4 व 5 तक उत्तर तथा 1, 2, 3, 4 व 5 दक्षिण की ओर रेखाएँ खींची गईं। इस तरह, बच्चों से चर्चा करते हुए चौकोर फ़र्श पर इन रेखाओं से एक ग्रिड का निर्माण किया गया।

ग्रिड का निर्माण होने के बाद इन बोतलों को पुनः उनकी स्थिति में रखा गया। एक बोतल का उदाहरण लेते हुए बोतल की स्थिति निकालने का अभ्यास बच्चों को करवाया गया। जैसे– 2 रेखा उत्तर और 4 रेखा पूर्व। इसी प्रकार, अब बच्चों को अपनी-अपनी बोतलों की स्थिति निकालकर बोर्ड पर लिखने को कहा गया, जिसे बच्चों ने इस प्रकार बताया :

योगेश : 4 रेखा पश्चिम, 2 रेखा उत्तर;

ललित : 3 रेखा पश्चिम, 4 रेखा उत्तर;

गीतिका : 1 रेखा पूर्व, 2 रेखा दक्षिण;

रानी : 3 रेखा दक्षिण, 2 रेखा पूर्व;

दीपा : 3 रेखा पूर्व, 2 रेखा दक्षिण;

नीतू : 3 रेखा उत्तर, 3 रेखा पूर्व;

राधा : 4 रेखा दक्षिण, 4 रेखा पश्चिम;

अमान : 2 रेखा पश्चिम, 2 रेखा दक्षिण;

त्रिपुरारी : 1 रेखा उत्तर, 2 रेखा पूर्व; और

सुमन : 3 रेखा उत्तर, 1 रेखा पश्चिम।

गतिविधि 5 : गोल आकृति में बोतलें

कक्षा की शुरुआत में बच्चों द्वारा बनाए गए ग्रिड पर विभिन्न बिन्दु बनाए गए। इनके स्थिति निर्धारण का अभ्यास सभी बच्चों के द्वारा किया गया। मैंने प्लास्टिक गेंद पर एक बिन्दु बनाकर बच्चों से पूछा कि यह बिन्दु इस धरती-रूपी गेंद पर कहाँ होगा?

गेंद हर बच्चे को दी गई ताकि सभी इस गेंद पर बने बिन्दु की स्थिति का अनुमान लगा सकें। लेकिन बच्चे गेंद पर बिन्दु की स्थिति का अनुमान नहीं लगा पाए।

प्रश्न : "चौकोर आकृति पर वस्तुओं की स्थिति जानने के लिए क्या-क्या किया?"

सुमन : "उसपर ग्रिड बनाया।"

"बिलकुल ठीक कहा। तो इस गोल आकृति पर स्थिति जानने के लिए क्या करें?"

योगेश : "सर, इसपर भी ग्रिड बनाएँ।"

मैंने फ़र्श पर एक वृत्त बनाया और पूछा कि इसपर ग्रिड कैसे बनाया जाए।

बच्चों ने, चौकोर आकृति पर जिस तरीक़े से ग्रिड बनाते हैं, वैसे ही वृत्त पर बनाने की कोशिश की। लेकिन गोल आकृति के कारण केन्द्र से किनारों की ओर रेखाएँ छोटी होती गईं और सबसे किनारे वाली रेखा बेहद छोटी हो गई। इस प्रकार, वृत्त के चारों किनारों पर छोटी रेखाएँ बन गईं।

प्रश्न : "इसके अलावा भी कोई अन्य तरीक़ा हो सकता है ग्रिड बनाने का?"

बच्चों से जवाब न मिलने पर पुनः पूछा, "अच्छा बताओ, यह आकृति जो फ़र्श पर बनी है, कैसी दिख रही है?"

योगेश : "सर, वृत्त जैसी।"

प्रश्न : "तो बताओ कि वृत्त का केन्द्र कहाँ हुआ?"

सभी बच्चों ने एक साथ केन्द्र की ओर उँगली दिखाते हुए बताया।

अब नापकर देखते हैं कि यह कोण कितनी डिग्री का है।

हमने देखा, यह 360 डिग्री था।

पुनः उसी पड़ी मध्य रेखा के केन्द्र से दोनों ओर 10 डिग्री पर धागे की मदद से रेखाएँ खींचीं जिन्होंने वृत्त की परिधि को दो निश्चित बिन्दुओं पर काटा। उसके बाद, उन्हीं बिन्दुओं को मध्य रेखा के समानान्तर मिलाया गया जो कि 10 डिग्री उत्तरी अक्षांश बना। इसी प्रकार 10-10 डिग्री के अन्तराल पर उत्तर व दक्षिण की ओर अन्य अक्षांश रेखाएँ बनाई गईं।

अब गोले पर ग्रिड में खड़ी रेखाओं के लिए एक बड़े एवं लगभग गोल आलू को मध्य भाग से दो हिस्सों में काटकर उसके एक हिस्से पर बने वृत्त को मार्कर की मदद से चार भागों में बाँटा। फिर उसके केन्द्र से 20-20 डिग्री के अन्तराल पर रेखाएँ बनाईं जो उसकी परिधि को अलग-अलग बिन्दुओं में काट रही थीं। उन बिन्दुओं से रेखाओं को आलू की सतह पर थोड़ा आगे बढ़ाकर खींचा ताकि इसपर जब ऊपर से आलू का दूसरा टुकड़ा रखें तो पता चल सके कि कौन-सी रेखा उसके मध्य वृत्त को कहाँ पर काट रही है।

यहाँ बच्चों से इस बात पर चर्चा की गई कि अगर हम 1-1 डिग्री पर रेखाएँ खींचते तो कितनी रेखाएँ खींचनी पड़तीं। इसका अन्दाज़ा लगाने में बच्चों की कुछ प्रश्नों को पूछते हुए मदद की गई। जैसे–

वृत्त के केन्द्र पर बना कोण कितने डिग्री का है?

अगर केन्द्र से 1-1 डिग्री के कोण बनाएँ तो कितने कोण बनेंगे?

360 कोणों को बनाने के लिए केन्द्र से कितनी रेखाएँ खींचनी पड़ेंगी?

बच्चे इन प्रश्नों के जवाब दे पा रहे थे और अन्दाज़ा भी लगा पा रहे थे कि इतने छोटे-से आलू पर 360 रेखाएँ नहीं खींची जा सकतीं।

इसीलिए हमने 20 के पहाड़े में आने वाली संख्याओं की रेखाएँ ही खींचीं, जैसे– 20, 40, 60, 80,... आदि। उन्होंने गिनकर बताया कि 18 रेखाएँ खींची गई हैं।

उसके बाद, एक रेखा पर 20-20 के अन्तराल पर संख्याएँ लिखी गईं और इसी के आधार पर कुल 360 देशान्तर रेखाओं को भी समझाने का प्रयास किया।

फ़र्श पर बने वृत्त पर ये रेखाएँ बनाई गईं तो बच्चे समझ गए कि ये अक्षांश व देशान्तर रेखाएँ हैं।

अब सभी बच्चों की बोतलें अलग-अलग जगहों पर रखी गईं और उनकी स्थिति को ज्ञात किया गया। दीपा की बोतल की स्थिति 20 डिग्री उत्तरी अक्षांश, 40 डिग्री पूर्वी देशान्तर निकली। इसी प्रकार, अन्य बच्चों की बोतलों की स्थिति निकाली गई।

अब सभी बच्चों की बोतलों को एक गट्ठे के रूप में मिलाकर एक जगह पर रखा गया और बच्चों को इसकी स्थिति ज्ञात करने के लिए बोला गया। यहाँ बच्चे थोड़ा कन्फ़्यूज़ हो गए, क्योंकि इस प्रकार अब बोतलें बहुत ज़्यादा जगह घेर रही थीं। अब इसकी स्थिति कैसे ज्ञात की जाए! यहाँ सोचने में बच्चों की मदद कुछ इस प्रकार की गई :

प्रश्न : "सबसे पहले देखो तो ये गट्ठा (बोतलें) गोले के किस भाग में है, यानी, उ.पू. में, उ.प., द.पू. या द.प. में?"

योगेश : "उ.पू. में है?"

प्रश्न : "उत्तर की ओर किस-किस अक्षांश रेखा के बीच आ रहा है?"

सुमन : "सर, ये 10 डिग्री से लेकर 30 डिग्री से थोड़ा-सा आगे आ रहा है।"

इसे 10 डिग्री उत्तरी अक्षांश से 30 डिग्री उत्तरी अक्षांश तक लिखेंगे। इस मध्य खड़ी रेखा

को 0 डिग्री मानें तो इसके बाद वाली रेखा कितनी होंगी?

त्रिपुरारी : "सर, 20 डिग्री, आगे वाली 40 डिग्री,... आदि।"

प्रश्न : "इस प्रकार पूर्व में इन बोतलों की जगह कहाँ से कहाँ तक हुई?"

त्रिपुरारी : "40 डिग्री से 100 डिग्री तक देशान्तर।"

प्रश्न : "देशान्तर रेखाएँ किस दिशा की ओर हैं?"

नीतू : "पूर्व में हैं।"

प्रश्न : "इन रेखाओं को कैसे बोलेंगे?"

नीतू और त्रिपुरारी (एक साथ) : "40 डिग्री पूर्वी देशान्तर से 100 डिग्री पूर्वी देशान्तर।"

प्रश्न : "अब बताओ, गोले पर इन बोतलों की स्थिति कहाँ हुई?"

सभी बच्चों के साथ मिलकर बोलते हुए लिखा गया– '10 से 30 डिग्री उत्तरी अक्षांश, 40 से 100 डिग्री पूर्वी देशान्तर तक'।

इसके बाद बच्चों से भारत व अन्य देशों का अक्षांशीय व देशान्तरीय विस्तार ज्ञात किया गया।

समेकन

इस पूरे काम को करने में मुझे 3-4 दिन का समय लगा, लेकिन दी गई अवधारणा पर बच्चे कुछ समझ बना पाए। अक्षांश और देशान्तर रेखाओं को समझने में गणित की थोड़ी समझ के साथ शब्दावली को भी समझना होता है। इस सब में समय लगता है। मुझे कई बार अपने प्रश्न को अलग-अलग ढंग से दोहराना पड़ा, ताकि बच्चे अपनी समझ को कुरेद पाएँ और आगे बढ़ पाएँ। यही नहीं, उन्हें मौक़े देना भी ज़रूरी है, जैसे– वृत्त पर सीधी और खड़ी रेखा बनाते हुए उन्हें यह लगने लगा था कि वे कुछ ग़लत कर रहे हैं। इस तरह मौक़े देना शिक्षक और बच्चों, दोनों के लिए अर्थपूर्ण है– शिक्षक के लिए बच्चों के विचारों को समझ पाने हेतु, और बच्चों के लिए समझ की प्रक्रिया में जुड़ने की दृष्टि से। बच्चों के लिए भी यह एहसास ज़रूरी है कि उत्तर पाने की प्रक्रिया में जूझना, सीखने का महत्त्वपूर्ण क़दम है।

सभी फ़ोटो : विजय आनंद नौटियाल

विजय आनंद नौटियाल, 20 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। पिछले दस वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में काम कर रहे हैं। फ़िलहाल उत्तराखंड के बागेश्वर ज़िले में पदस्थ हैं। आपकी भाषा और सामाजिक विज्ञान में गहरी रुचि है। विशेषकर भूगोल विषय सम्बन्धी विविध अवधारणाओं को बच्चे कैसे सीखते हैं, इसे जानने और समझने में गहरी दिलचस्पी है।

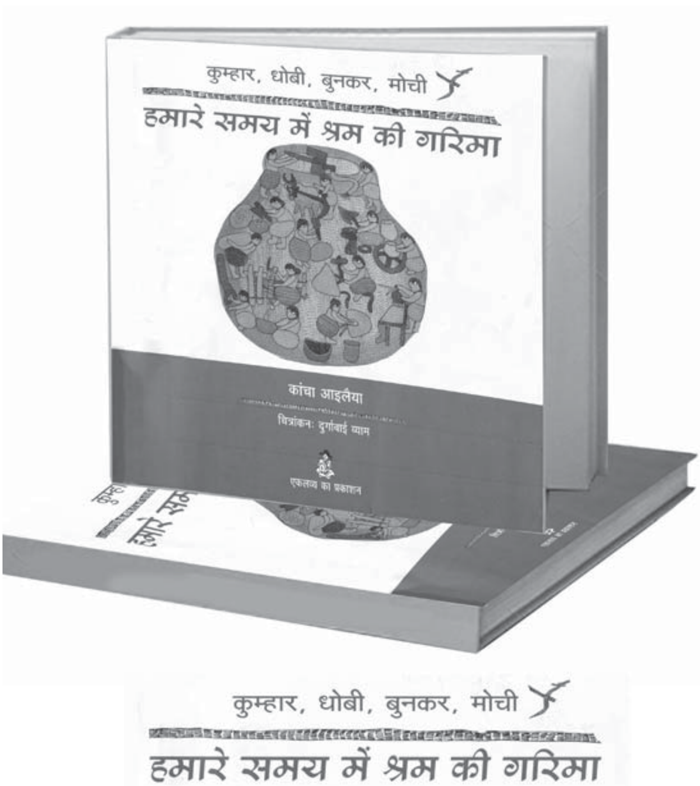
सम्पर्क : vijay.nautiyal@azimpremjifoundation.org

हमारे समय में श्रम की गरिमा

शाह आलम

इस किताब में कांचा आइलैया ने आदिवासियों, चर्मकारों, कुम्हारों, मूर्तिकारों, किसानों, बुनकरों, धोबियों और नाइयों के विज्ञान, कला व हुनर पर प्रकाश डाला है। किताब मानव जीवन को बेहतर बनाने में ऐसी जातियों और समुदायों के योगदान को दर्ज करती है जिन्हें 'निम्न' और 'पिछड़े' मानकर तिरस्कृत किया जाता है।

दुर्गाबाई व्याम के अनूठे चित्रों से सजी यह किताब भारतीय बच्चों के बीच मानव श्रम की गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने की कोशिश है। –सं.



लेखक : कांचा आइलैया

प्रकाशक : एकलव्य फ़ाउण्डेशन

जब मैं *हमारे समय में श्रम की गरिमा* पढ़ रहा था तो मन में बार-बार प्रश्न आ रहा था कि श्रम क्यों किया जाए? मशीन है न! विज्ञान ने वे सारे आविष्कार किए हैं, जिनसे एक मनुष्य सुखी और आरामदायक जीवन जी सके। लेकिन किताब पढ़ने के बाद समझ आया कि हम जिस विज्ञान की बात करते हैं, उसके पीछे भी श्रमिकों की एक लम्बी क़तार है। कांचा आइलैया, आदिवासी, पशुपालक, मोची, कुम्हार, बुनकर, धोबी, आदि समुदायों के साथ जुड़े श्रम के गौरवपूर्ण अध्यायों की व्याख्या करते हैं। आदिवासी समुदाय पर लिखते हुए वे जो पहली बात पाठक के समक्ष रखते हैं, वह यह कि आख़िर कब, कैसे और किसने तय किया होगा कि आम एक रसीला, स्वादिष्ट और स्वास्थ्यवर्धक फल है, जबकि रतनजोत के फल खाने से मृत्यु

तक हो सकती है? इस ज्ञान को देने वाले आदिवासियों को हमारा तकनीकी-सम्पन्न समाज जंगली समझकर दुत्कारता है। उन्हें दूसरे दर्जे का मनुष्य मानता है क्योंकि वे परिश्रम कर जीवन चलाते हैं। समाज यह मानने को तैयार ही नहीं है कि वे हमारे पहले शिक्षक हैं जिन्होंने कन्दमूल, फलों, सब्ज़ियों, और माँसों की पहचान की, जिन्हें आज हम बड़े चाव से खाते हैं। लेखक लिखते हैं, “मानव जाति के जीवित रह पाने का प्रमुख कारण है कि हमने शताब्दियों से सही प्रकार के खाद्य पदार्थों का चयन किया और खाए हैं। आज हम जो कन्दमूल खाते हैं उन्हें ज़मीन से खोदना पड़ता है, जो फल खाते हैं उन्हें पेड़ों से तोड़ना पड़ता है, जो माँस खाते हैं वह पशु-पक्षियों से मिलता है। यदि आदिवासी समाज ने यह कठिन काम न किया होता, तो मनुष्य जाति शायद आज जीवित ही न होती।”



कृषि के विकास से पहले हमारी अर्थव्यवस्था पालतू बनाए गए पशुओं, मसलन, गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरियों, आदि पर निर्भर थी। पशु हमारे भोजन के मुख्य साधन थे और इनकी देखभाल करने वाले लोगों को पशुपालक कहा गया। इन्हें हम चरवाहे भी कहते हैं। इस समुदाय ने हमारे आदिम समाज को काफ़ी कुछ दिया है। मानव संस्कृति केवल मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों से ही नहीं बनती, उसके निर्माण में जानवर भी योगदान देते हैं। पशुपालक समाज अपने पशुओं का उसी तरह ध्यान से रखते हैं जैसे माता-पिता अपनी सन्तान का। लेकिन समाज में जाति व्यवस्था की स्थापना के बाद पशुपालन को तुच्छ और गन्दा पेशा माना जाने लगा।

मोची, चमड़े के कारोबार से जुड़े और सफ़ाई के अग्रदूत होते हैं। लेखक प्राचीन भारत और रोम में इस समुदाय के लोगों के लिए बनाए नियमों की बात करते हैं। जहाँ भारत में यह प्रावधान था कि अछूत गाँव के बाहर रहें, फेंके हुए कटोरे का प्रयोग करें, टूटे बर्तनों में भोजन करें, और पशुओं में कुत्ते और बन्दर इनकी सम्पत्ति हों, वहीं रोम में सम्राट डायोक्लेशियन द्वारा जारी किए गए फरमान (303 ई.) के ज़रिए कई प्रकार के सामानों और सेवाओं के उच्चतम मूल्य तय किए गए, जिनमें बकरी, भेड़, मेमने, लकड़बग्घे, हिरण, जंगली भेड़, भेड़िए, चितराल, ऊदबिलाव, भालू, सियार, सील मछली, तेन्दुए और शेर की खालें और उनसे बना चमड़ा शामिल थे। भारत में, जानवरों के चमड़े निकालने, चमड़े का काम करने, और गन्दगी साफ़ करने की वजह से मोची समुदाय को शारीरिक और मानसिक तौर पर बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी। कितनी बड़ी विडम्बना है कि जानवरों के चमड़े हटाने वाला अछूत है, लेकिन चमड़े से बना बस्ता सबको पसन्द है! गन्दगी हटाने वाला अछूत है, लेकिन साफ़ किए गए स्थान पर रहना सबको पसन्द है!

आज भी लोग सेप्टिक टैंक साफ़ करते हुए मर जाते हैं, पर व्यवस्था और समाज ऐसी घटनाओं पर चुप्पी साध लेता है, क्योंकि हमें इन समुदायों के श्रम की क़द्र ही नहीं है। एक समाज के रूप में शायद हम भी चाहते हैं कि ये ऐसे ही

मरते रहें और इन्हें शिक्षा से वंचित रखा जाए, ताकि इनके बच्चे भी इसी तरह काम करते रहें। अगर ये लोग पढ़ लेंगे तो नालों और सेप्टिक टैंकों को कौन साफ़ करेगा! एक जीवित और संवेदनशील समाज ऐसा नहीं सोचता।

अन्न देने वाले किसान की वर्गीय सामाजिक स्थिति, अन्नदाता की तो बिलकुल नहीं है। सब्ज़ी उगाने वाले और गली में सब्ज़ी बेचने वाले समुदाय, दोनों को अपने श्रम का मूल्य मिले न मिले, सब्ज़ियों व अन्न को गोदाम में जमा करने वाले पूँजीपतियों को हम पूरा आदर और धन देते हैं। वेदों में इस समाज को शूद्र कहा गया, समाज में निम्न कोटि का दर्जा दिया गया



और तथाकथित पण्डित खेती को गँवार लोगों द्वारा किया जाने वाला बुरा काम मानते थे। यह किताब ऐसी विडम्बनाओं को बार-बार कुरेदती है और यह सोचने पर मजबूर करती है कि आख़िर किसान आत्महत्या क्यों करते हैं?

इस पुस्तक में कुम्हारों के बारे में भी चर्चा की गई है। ये वही कुम्हार हैं जिन्होंने मृत पड़ी मिट्टी को सजीव बनाकर इतिहास में एक नए अध्याय की शुरुआत की। क्या आपने कभी मिट्टी के बर्तन बनते हुए देखा है? अगर नहीं देखा है तो ज़रूर देखिएगा और समझने की कोशिश कीजिएगा कि एक मिट्टी का बर्तन बनाते समय कितना श्रम लगता है! समाज ने कीचड़, मृदा और चिकनी मिट्टी का काम करने वाले अधिकांश समुदायों को एक जाति के साँचे में रखकर जाति व्यवस्था में नीचा स्थान दिया है। उनके विज्ञान, कौशल और कला को पूरी तरह नज़रअन्दाज़ कर दिया गया। लेकिन हम लोग जिस थाली में खाना खाते हैं, उसे कला से भरपूर इन्हीं कुम्हारों ने जन्म दिया था।

इसी तरह, समाज ने कभी बुनकरों की क़द्र नहीं की, जिन्होंने चरखे और करघे का आविष्कार किया। यह महात्मा गाँधी के स्वदेशी आन्दोलन का एक मुख्य घटक था। कारीगरी से जुड़े इस समुदाय को भी जाति व्यवस्था में शूद्र माना गया। आज इनकी गिनती पिछड़ी जातियों में होती है। विज्ञान के क्षेत्र में इनका योगदान अतुलनीय है, जिसे भुला दिया गया। इसका उदाहरण देते हुए लेखक कहते हैं कि कपड़ा बनाने के लिए घूमने वाले चक्के पर आधारित जो तरीक़ा ईजाद किया गया, वही उन टरबाइनों को चलाने की तकनीक का आधार बना जो बाँधों से लेकर परमाणु संयंत्र तक में उपयोग की जाती हैं।

आइलैया ने इस छोटी, किन्तु महत्त्वपूर्ण, अत्यन्त रोचक और पठनीय, पुस्तक में इतिहास, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के अनेक प्रसंगों को समाहित कर उपयोगी बनाया है। मसलन, धोबियों पर लिखे अध्याय में वे बताते हैं कि पुरानी पेशाब पहला डिटर्जेंट था! प्राचीन रोम में कपड़े के टुकड़े पहले पुरानी पेशाब या अन्य क्षारीय घोल में भिगोए जाते थे। जो लोग अज्ञानतावश धोबियों की निन्दा करते हैं, उन्हें धुलाई के विज्ञान और रासायनिक साबुन की खोज करने वाले समुदाय से सीख लेने की कोशिश करनी चाहिए कि कैसे इस समुदाय में लैंगिक समानता आज भी बनी हुई है। जहाँ अधिकांश परिवारों में केवल महिलाएँ कपड़े धोती हैं और अन्य गतिविधियों का भार उठाती हैं, वहीं धोबी समाज में महिला और पुरुष, दोनों कपड़ों की धुलाई करते हैं। वे अपनी स्त्रियों के साथ



मिलकर कपड़े धोते हैं। कोई भी अच्छा समाज महिला-पुरुष या लड़के-लड़की के बीच श्रम को लेकर भेदभाव नहीं करता।

आइलैया बताते हैं, आधुनिक युग के पहले नाइयों के अलावा किसी भी अन्य जाति के लोग बीमारियों से पीड़ित लोगों को नहीं छूते थे। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अस्तित्व में आने तक नाई ही कई छोटी-मोटी शल्यक्रियाएँ करते थे। उस्तरा चलाने में अपनी विशेषज्ञता के कारण वे रणभूमि में सैनिकों को लगी चोटों का उपचार करते थे। वास्तव में, शल्यचिकित्सा और बाल काटने के व्यवसाय में सहज सम्बन्ध है। शरीर के उस हिस्से पर जहाँ शल्यचिकित्सा होनी होती है, बालों की उपस्थिति के कारण संक्रमण हो सकता है। इसलिए शल्यक्रिया से पहले बालों को पूरी तरह साफ़ करना अनिवार्य होता है। यह चलन आज भी जारी है। अतः नाई, भारतीय समाज के सबसे पहले चिकित्सक कहे जा सकते हैं। तमिलनाडु में आज भी नाई को 'मरुत्तुवर' कहा जाता है, जिसका अर्थ होता है : 'चिकित्सक'। और हाँ, ज़रा इसी प्रसंग में नाई समुदाय की स्त्रियों, दाइयों की भूमिका पर विचार करें। वे न होतीं, तो गाँवों में प्रसव कौन करवाता? आज भी आधुनिक चिकित्सा के इस बड़े अभाव को पूरा करने का दायित्व कौन उठा रहा है? हम जानते हैं कि इस समुदाय की सामाजिक हैसियत डॉक्टर या नर्स वाली तो बिलकुल ही नहीं है, न ही समाज कभी इसे स्वीकारेगा।

जाति और श्रम



जब इस किताब का गहनता से अध्ययन करेंगे तो पाएँगे कि कैसे जाति व्यवस्था ने इन समुदायों को समय-दर-समय नीच, अछूत, शूद्र और चाण्डाल कहकर शिक्षा जैसी बुनियादी चीज़ों से महरूम किया है। मनु और कौटिल्य जैसे लेखकों ने ऐसे विशेषज्ञ समूहों को जातियों में विभाजित कर दिया। अन्य समाजों के विपरीत, भारत के अधिकांश हिस्सों में जन्म से ही यह तय होने लगा कि कोई किस प्रकार के व्यवसाय या श्रम कर सकता है। यानी, ग़ैर-श्रमिक वर्ग ने बड़ी चालाकी से जाति को श्रम से जोड़ दिया, जिसका प्रभाव आज भी समाज में बना हुआ है। पुरोहितों, योद्धाओं, प्रशासकों और व्यापारियों जैसे ग़ैर-श्रमिक समूहों ने न तो कभी

कोई कठोर शारीरिक काम ही किया, न ही कोई भौतिक विज्ञान और तकनीकी ईजाद की। इसके बावजूद, उन्होंने श्रमिकों और तकनीकी हुनर वाली जातियों की मेहनत के फल भोगे।

"जाति व्यवस्था को बढ़ावा देने वालों ने एक दर्शन गढ़ा, जिसके अनुसार, शिक्षित बौद्धिक वर्ग का आहार उत्पादन, बर्तन बनाने, चर्मकार्य, सफ़ाई के कार्य, बढ़ईगिरी, बुनकर, इत्यादि कामों में संलग्न होना उचित नहीं था। इसी तरह की समझ ने श्रम की गरिमा को नष्ट कर दिया।"

लेखक टिप्पणी करते हैं कि ईश्वर और धर्म के नाम पर श्रम का तिरस्कार करना वे लोग सिखाते हैं जो दूसरों का शोषण करके अपना जीवन चलाते रहना चाहते हैं।

श्रम और लिंग

महिला हो या पुरुष, दोनों को जीवित रहने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है और भोजन पाने के लिए श्रम की। लेकिन जब हम अपने आसपास या अपने घरों में देखते हैं तो ऐसा महसूस होता है कि कुछ काम लड़के एवं लड़की अथवा महिला एवं पुरुष में बाँट दिए गए हैं। जैसे– घरों में काम करती माताएँ खाना भी पकाती हैं, कपड़े भी धोती हैं, और बच्चों व बुज़ुर्गों की देखभाल भी करती हैं। ऐसा क्यों है? क्या खाना बनाना और कपड़े धोना सिर्फ़ महिलाओं की ज़िम्मेदारी है? क्या पुरुष खाना नहीं बना सकते या कपड़े नहीं धो सकते?

जब लड़का या लड़की पैदा होता / होती है तो उसके साथ बाल्यावस्था से ही भेदभाव शुरू हो जाता है। मसलन, लड़कियाँ रसोईघर में माँ की मदद, सब्ज़ियाँ काटना, बर्तन धोना, झाड़ू-पोछा करना जैसे वे तमाम काम करेंगी जो एक महिला पारम्परिक रूप से करती आ रही है, वहीं लड़कों को सब्ज़ी ख़रीदने, साइकिल चलाने और विभिन्न प्रकार के खेलों को खेलने की आज़ादी होती है। पोषक आहार भी लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को ज़्यादा दिया जाता है।



लेखक लिखते हैं, "श्रम का लैंगिक विभाजन बहुत हद तक पितृसत्तात्मक है जो लड़कियों और महिलाओं को यह महसूस करने पर मजबूर करता है कि वे लड़कों और पुरुषों से कमतर हैं। इसमें पुरुषों की सोच ऐसी बन जाती है कि वे ख़ुद को श्रेष्ठ समझने लगते हैं। पुरुष और महिलाओं के बीच समानता का प्रश्न श्रम सम्बन्धी है, और ऐसा कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है कि लड़कों

द्वारा किया जाने वाला काम लड़कियाँ नहीं कर सकती हैं।"

दुर्गाबाई व्याम की अद्भुत चित्रकारी

इस किताब के सभी पहलुओं पर बात हो जाए और दुर्गाबाई द्वारा बनाए हुए नायाब चित्रों पर बात न की जाए तो यह समीक्षा पूरी नहीं हो सकती। ये प्रभावी चित्र किताब को वैचारिक गहराई और विस्तार देते हैं।

दुर्गाबाई व्याम गोण्ड शैली के चित्रों पर काम करती हैं। इनके चित्रों को देखेंगे तो पाएँगे कि इन सभी चित्रों में आदिवासी, पशुपालक, चर्मकार, किसान, कुम्हार, धोबी, बुनकर, नाई, आदि की संस्कृति, उनके काम करने के तरीक़े और उनके जीवन के रंगमंच बेहद ख़ूबसूरत अन्दाज़ से ज्यामितीय पैटर्न में चित्रित हैं।

इस लेख की पृष्ठ संख्या 2 के चित्र को देखें, इसमें दिखाया गया है कि एक मोची कितनी कलात्मकता और मेहनत से जूते बनाता है। इस चित्र में आप देख पाएँगे कि दो व्यक्ति चमड़े की कटाई-छँटाई कर रहे हैं। उसके बाद, वह कैसे धीरे-धीरे एक जूते का आकार लेता है, और इसे सिलने में लगने वाले धागे, सूआ सहित सभी बुनियादी चीज़ों को बहुत ख़ूबसूरती से दर्शाया गया है। यह शिल्प एक मोची के श्रम और सौन्दर्यबोध को दर्शा रहा है।

श्रम की गरिमा किसी समाज और धर्म का केन्द्रीय सिद्धान्त बन जाए तो कोई व्यक्ति सुबह मोची या बर्तन की साफ़-सफ़ाई का काम कर सकता है, और दोपहर में पुजारी, पुरोहित या मुल्ला का। किसी के श्रम को मान्यता न देना कितना उचित है? हमें तय करना होगा कि हमें मेहनत से काम करके आगे बढ़ता समाज चाहिए या अपने दुर्गुणों को ओढ़ता-बिछाता, नष्ट होता एक कमजोर और बीमार समाज? फ़ैसला हम सबको करना है। और कहना न होगा कि हमारे स्कूल-कॉलेजों की शिक्षा ही वह सीढ़ी है जो श्रम के प्रति सम्मान के भाव को जन्म दे सकती है। शुरुआत यहीं से होनी चाहिए।



सभी चित्र *हमारे समय में श्रम की गरिमा* पुस्तक से साभार।

शाह आलम बिहार के गोपालगंज ज़िले के रहने वाले हैं। आपकी प्रारम्भिक पढ़ाई गाँव के स्कूल में हुई है। उन्होंने अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर की पढ़ाई इलाहाबाद विश्वविद्यालय से की है। फ़िलहाल अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में पिछले 6 महीने से एसोसिएट के रूप छत्तीसगढ़ के जांजगीर ज़िले के नवागढ़ ब्लॉक में कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : shah.alam@azimpremjifoundation.org

किताबें पढ़ने का चस्का बच्चों में स्कूल के प्रति अनुराग बढ़ाता है

शिक्षिका पूनम भाटिया से दीपक राय की बातचीत



दीपक : पूनमजी, अपनी शैक्षिक यात्रा के बारे में बताएँ।

पूनम भाटिया : मैं जयपुर की निवासी हूँ और मेरी प्रारम्भिक शिक्षा यहीं हुई है। कक्षा 6 से 12 तक मैं जवाहर नवोदय विद्यालय की छात्रा रही। नवोदय एक आवासीय विद्यालय था और अध्ययन काल का लम्बा समय वहीं पर गुज़रा। जयपुर के अलग-अलग क्षेत्रीय परिवेश से आए हुए बहुत-से बच्चों के साथ मैं रही।

माइग्रेशन सिस्टम के तहत मैंने कक्षा 9 और 10 की पढ़ाई गुजरात के जामनगर से की। बहुत छोटी अवस्था में गुजरात जाना एक टर्निंग पॉइंट ही रहा। कक्षा 10 उत्तीर्ण करने के बाद जद्दोजहद हुई कि विषय के तौर पर विज्ञान ही लिया जाए, परन्तु आईएएस बनने का सपना था, इसलिए विज्ञान तो लेना नहीं था। शिक्षकगण का मानना था कि होशियार बच्चों को विज्ञान विषय लेकर डॉक्टर या इंजीनियर ही बनना चाहिए। तब मैंने अपने अध्यापकों से वादा किया कि मैं बहुत पढ़ाई करूँगी।

मैंने कक्षा 10 से ही आईएएस की पढ़ाई शुरू कर दी थी, परन्तु मेरी मम्मी मुझे एसटीसी करवाना चाहती थीं। वे ख़ुद राजकीय सेवा में एक शिक्षिका के रूप में पदस्थ थीं, तो उन्हें लगा कि मेरी बच्ची भी शिक्षिका ही बननी चाहिए। उनके कहने से मैंने एसटीसी की व एसटीसी करते ही मेरी नौकरी भी लग गई।

नौकरी लगने के बाद मैंने स्नातक, स्नातकोत्तर व बीएड किया।

दीपक : आज एक शिक्षक के रूप में अपनी भूमिका को कैसे देखती हैं?

पूनम भाटिया : बतौर शिक्षक मुझे क़रीबन 25 साल हो गए हैं। शुरुआती दौर में मेरी पोस्टिंग गाँव में थी। 2004 से मैं जयपुर में ही कार्यरत हूँ। मैं अँग्रेज़ी पढ़ाती हूँ। अभी सांगानेर,

जयपुर में एक राजकीय विद्यालय में हेड मास्टर की भूमिका का निर्वाह कर रही हूँ।

राज्य सरकार की ओर से पाठ्यपुस्तकों, विभिन्न वर्कबुक, एबीएल किट, मॉड्यूल, टीएलएम, आदि का निर्माण किया है।

आज मुझे लगता है कि एक शिक्षिका के रूप में, मैं बेहतर कर पा रही हूँ। बच्चों के स्तर, उनकी पारिवारिक व सामाजिक पृष्ठभूमि, सीखने के वातावरण, सीखने की क्षमता, कार्य करने की क्षमता, आदि मुद्दों पर बातचीत होती रहती है। इसके साथ ही, पाठ्यक्रम, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, पाठ्यक्रम के उद्देश्य, पाठ्यक्रम का स्तर, शिक्षा, बच्चे और समाज, आदि विषयों पर प्रबुद्ध व अनुभवी लोगों से भी चर्चा होती रहती है।

आज मैं एक व्यवस्थापक के रूप में अधिक कार्य कर रही हूँ। ऐसे में, मैं ज़्यादा समय अध्यापन के लिए नहीं दे पाती हूँ। हालाँकि यथासम्भव कोशिश करती हूँ कि प्रतिदिन छुट्टी होने के बाद बच्चों को कुछ समय पढ़ा पाऊँ। कक्षा 5 से 8 के बहुत से बच्चे उस समय रुक जाते हैं। मेरा सबसे प्रिय काम पढ़ना और पढ़ाना ही है, इसलिए जब अवसर मिलता है सिर्फ़ तभी नहीं, अपितु अवसर निकालकर बच्चों की कक्षा में जाती हूँ और उनके साथ काम करती रहती हूँ।

दीपक : शिक्षिका बनने के बाद आपने खुद में क्या-क्या बदलाव देखे?

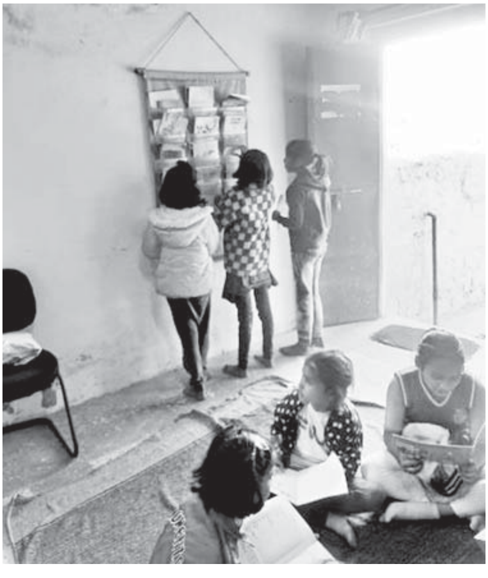
पूनम भाटिया : 2010 में सरकार की एक शिक्षा योजना पायलट प्रोजेक्ट के रूप में विद्यालय में आई। मैं तभी से शिक्षण सम्बन्धी सभी कार्यों में रुचि लेने लगी। इसके बाद से ही मैं आत्मिक व मानसिक रूप से शिक्षक के रूप में स्वयं को गढ़ने लगी। अब लगता है, शायद मैं शिक्षक बनने के लिए ही थी। और कुछ बनती तो न तो उस पेशे के साथ और न ही ख़ुद के साथ न्याय कर पाती।

इसी दौरान मैंने प्रशिक्षण देना शुरू किया। मैंने पाया कि कुछ भी बोलने से पहले ख़ुद के पास भी ज्ञान व पूरी सामग्री होनी चाहिए। प्रशिक्षण से पहले मैं, स्वयं को तैयार करने के क्रम में कई किताबें पढ़ने लगी।

पाठ्यपुस्तकों के लिए लेखन कार्य करने के दौरान निरन्तर अध्यापकों व शिक्षाविदों से मिलना होता रहा और मैंने उनके विचारों व कार्यों को जाना।

इन सब कार्यों को करते हुए ही मैं 'संवाद' समूह से जुड़ी। हम सब जब भी मिलते, अपने-अपने क्षेत्र, अनुभवों और कार्यों की बातें किया करते। ऐसे में एक दिन स्त्री रोग विशेषज्ञ रहीं डॉक्टर प्रीतम पाल ने भेंट स्वरूप एक पुस्तक मुझे दी, जिसका नाम था *तोत्तोचान*।

इस किताब को पढ़कर मुझे लगा कि शिक्षक के रूप में, मैं बहुत पीछे हूँ। इस किताब से मुझे समझ आया कि शिक्षक के रूप में बच्चों के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए, बच्चों की मनोवृत्तियाँ क्या होती हैं, बहुधा अध्यापकगण किस तरह से व्यवहार करते हैं, और हमें किस तरह से बच्चों के साथ काम करते हुए सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं में मसरूफ़ होना होता है। इसी तरह





पर उसका बहुत असर होता है। इसी के साथ मैं बच्चों के अभिभावकों से भी मिलने की प्रक्रिया व अपनी सोच को सकारात्मक रूप से सुदृढ़ करती चली गई।

इसी तरह की एक और घटना मेरे साथ हुई। एक महिला साथी मेरे विद्यालय में कुछ किताबें लेकर आतीं और बच्चों को बाँट देती थीं। फिर उनके साथ कुछ देर बातें करतीं और मुझे कहकर जाती थीं कि जो किताबें मैंने बच्चों को बाँटी हैं, उनपर कुछ-कुछ

की बाल मनोविज्ञान से जुड़ी नई किताबें भी मैंने खोजीं और पढ़ीं।

दीपक : क्या कोई घटना, कोई प्रैक्टिस ऐसी थी, जिसने आपको अपने पेशे के प्रति और जवाबदेह होना सिखाया हो?

पूनम भाटिया : जब आप शिक्षक के रूप में कार्य करते हैं तो बहुत-सी चीज़ों पर आप पर्याप्त फ़ोकस बनाए रखते हैं। लेकिन कई बार यह भी होता है कि आप ख़ुद ही नहीं जान पाते कि आप किस दिशा में या किस राह पर कार्य कर रहे हैं।

एक घटना का ज़िक्र करना चाहूँगी। मैं एक शाम संगीत के कार्यक्रम में गई। वहाँ पर एक बच्ची मेरे पास आई और बड़े उत्साह से गले मिली। मैं उसे नहीं पहचान पाई थी। उसने बताया कि मैं उसे पढ़ा चुकी हूँ। अब वह बड़ी हो गई थी और वह उस संगीत के कार्यक्रम को संचालित कर रही थी। उसने याद दिलाया तो मुझे याद आया कि मैं उसे कहाँ पढ़ाती थी। वो कहने लगी कि आपने मेरी मम्मी को बुलाकर भी समझाया था और कहा था कि यह कर सकती है, परन्तु इसके साथ लगातार मेहनत की आवश्यकता है।

इस घटना के बाद मुझे लगा कि जो कार्य हम सहज रूप से भी करते चले जाते हैं, बच्चों

बात आप कर लीजिएगा। 10-15 दिन बाद मैं फिर आऊँगी। वे आती थीं और बच्चों के साथ बातचीत करती थीं। पुरानी किताबें ले जातीं और कुछ अन्य दे जाती थीं। तब मैं उस महिला को देखकर सोचती थी कि ये बच्चों के साथ इतनी मेहनत क्यों करती हैं! यह बच्चे तो इतना पढ़ते ही नहीं हैं।

मुझे हमेशा लगता था कि ये महिला अपना समय क्यों बर्बाद करती हैं। लेकिन धीरे-धीरे मैंने देखा कि वह बच्चे जो लगातार पुस्तकें पढ़ रहे थे, उनके अन्दर एक अलग ही बदलाव आ रहा था। वे लिखने, पढ़ने व व्यक्त करने में अधिक समझदार हो रहे थे और उनके कार्य दूसरे बच्चों से थोड़े अलग हो रहे थे। इस प्रक्रिया को समझने में मुझे क़रीबन 2 साल लगे और आज मैं ख़ुद पुस्तकालय की संस्कृति में इज़ाफ़ा करने के लिए लगातार प्रयासरत रहती हूँ।

दीपक : रीडिंग कॉर्नर या लाइब्रेरी या बाल साहित्य को लेकर क्या सोचती हैं? सीखने-सिखाने में उनकी भूमिका क्या है? आपके अनुभव क्या रहे हैं?

पूनम भाटिया : मुझे पढ़ने का शौक़ बचपन से ही रहा है। नवोदय विद्यालय में भी काफ़ी

बड़ा पुस्तकालय था तो मेरा यह शौक़ बना रहा और आगे भी बढ़ पाया।

इस क्रम में, मैं 'सृजन' समूह की बात करना चाहूँगी। यह अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन की एक पहल है, जिसमें कई शिक्षक साथी जुड़े हुए हैं और पढ़ने-लिखने की संस्कृति को उन्नत कर रहे हैं। उसमें हम विभिन्न कहानियों, कविताओं, यात्रा संस्मरण, जीवनी, विचार, लेख, पुस्तक, आदि पढ़ते हैं और अपनी समझ के अनुसार टिप्पणियाँ व समीक्षा करते हैं। इस तरह की बातचीत से समझ में आता है कि किसी भी कहानी और कविता की व्यापकता के कई पक्ष, दृष्टिकोण व पहलू हो सकते हैं। हम एक पक्ष के बारे में सोचते या काम करते हैं, लेकिन उसी समय उन रचनाओं के अलग-अलग पक्षों पर अन्य व्यक्ति कार्य कर रहे होते हैं। जब सबकी राय सुनी और पढ़ी जाती है तो हम उसके वृहत्तर आयामों को समझ पाते हैं।



इस समूह ने साहित्य की समझ और संवेदना दी तो उसने हमें एक बेहतर और संवेदनशील मनुष्य बनने की ओर उन्मुख किया। इसने हमारी कक्षा को बदला और हमारे स्कूल के पूरे माहौल को पहले से अधिक सुसंगत और समावेशी बनाया।

अब बारी आती है, साथी शिक्षकों एवं अध्ययनरत विद्यार्थियों के साथ पुस्तकों की जुगलबन्दी की।

मैंने देखा है, या यूँ कहें, 25 साल के अनुभव में मैंने यह पाया है कि जिसने पुस्तकों को अपना दोस्त बनाया है, उसके सोचने और समझने की शक्ति में एक अलग ही नयापन व भावनाएँ दर्ज हुई हैं।

मेरे कई साथी शिक्षक जो पढ़ने-लिखने में संलग्न रहते हैं, उनकी संज्ञानात्मक, संवेगात्मक व भावनात्मक समझ एक अलग ही स्तर की होती है। जिन विद्यार्थियों के घरों में पढ़ने को महत्त्व दिया जाता है, वे स्वयं ही पढ़ने की ओर आकर्षित रहते हैं। वे सभी पढ़ने को बोझ न समझते हुए उसे रुचि का कार्य मानते हैं और लगातार ख़ुद के साथ कार्य करते रहते हैं।

दीपक : बच्चों की साहित्य में रुचि विकसित करने के लिए आपने स्कूल में किस तरह के प्रयास किए?

पूनम भाटिया : जैसा कि मैंने आपको बताया, मेरे विद्यालय में एक महिला साथी आती थीं। उनसे जुड़ने के बाद मुझे लगा कि मुझे भी इस तरह से सभी बच्चों के साथ कार्य करना चाहिए।

इसकी शुरुआत मैंने अपने कार्यालय से ही की। मैंने ऑफ़िस में ही जूट का कई ख़ानों वाला दीवार पर लटकाने वाला फ़ोल्डर लगाया और उसमें किताबें भी रखीं।

मैंने बच्चों को स्वयं किताबें चुनने के लिए कहा और उन्हें पढ़ने पर ज़ोर डाला। बच्चों से उन किताबों में पढ़ी गई सामग्री पर चर्चा करने लगी। ज़्यादा उनसे सुना और कुछ-कुछ प्रश्नों से बात को आगे बढ़ाया। संस्था प्रधान होने के नाते मैं शिक्षण प्रक्रिया अनवरत रूप से नहीं

कर पाती हूँ इसलिए मैंने उपाय निकाला कि कार्यालय, जहाँ मैं ज़्यादातर समय होती हूँ, की दीवार पर इसे लगा दिया जाए। एक दरी बिछा दी गई। सभी बच्चों को कह दिया गया कि अपनी मर्ज़ी से जब चाहें आएँ और पढ़ें।

फ़ोल्डर के पास एक रजिस्टर भी रखा गया। इसमें लिखने और दर्ज करने का कार्य भी बच्चे ही करने लगे। कोई रोक-टोक न होने की वजह से वे लगातार आने लगे। प्रार्थना सभा में रोज़ दो बच्चों को अपनी पढ़ी हुई पुस्तक पर चर्चा करने और सभी बच्चों को उनसे प्रश्न पूछने के लिए बोला गया, ताकि बच्चे अपनी पुस्तक पर अच्छे-से संवाद क़ायम कर पाएँ।

प्रार्थना सभा में बोलने की होड़ के लिए बच्चों में किताबें पढ़ने का चस्का लग गया। बच्चों में एक-दूसरे से सीखने की प्रक्रिया अधिक होती है, अतः उनकी संख्या में इज़ाफ़ा हुआ। कई बच्चे किताबें पढ़ने लगे और उनपर अपनी बात रखने लगे। इस कार्य से उनके आत्मविश्वास में लगातार वृद्धि तो हुई ही, उनके समझ के स्तर को भी एक व्यापक दृष्टिकोण मिला। उनमें पढ़ने के प्रति रुचि जागृत हुई है। वे पहले से अधिक संवेदनशील और बेहतर 'लर्नर' साबित हुए हैं और अपने समाज की विविधताओं को सही सन्दर्भों में समझने की ओर अग्रसर दिख रहे हैं। उनकी कल्पना शक्ति बढ़ी है और वे अपने अनुभवों को भी कुछ बेहतर ढंग से अभिव्यक्त करने लगे हैं। साथ ही, स्कूल के प्रति उनका अनुराग भी बढ़ा है।

दीपक : आप पाठ्यपुस्तकों, पाठ्यक्रम, आदि के निर्माण कार्य में शामिल रहती हैं, प्रश्न पत्र बनाती रहती हैं, प्रशिक्षण देने व उनके मॉड्यूल पर भी काम करती रहती हैं। क्या फ़ील्ड के अनुभव काम में आते हैं? यदि हाँ, तो कैसे?

पूनम भाटिया : इन सबमें ख़ुद ने क्या पढ़ा-लिखा है, हम कैसे भाव रखते हैं, हमारे विचार कैसे होते हैं, हम सोचते कैसा हैं और हमारे अनुभव, सभी काम आते हैं।

एक लम्बी अवधि से मैं अध्ययन-अध्यापन का कार्य कर रही हूँ, लेकिन अभी भी जब मैं कुछ लेखन कार्य करने जाती हूँ तो अपने-आप को एक विद्यार्थी से ज़्यादा नहीं पाती हूँ। मेरे ज़ेहन में हमेशा विद्यार्थी, उनकी भौगोलिक परिस्थितियाँ, मानसिक परिस्थितियाँ, मानसिक स्तर, रहन-सहन, ग्रामीण व शहरी परिवेश, उनके माता-पिता की स्थिति व भूमिका, घर की आर्थिक स्थितियाँ, माता-पिता की शैक्षिक पृष्ठभूमि, परिवार का सामाजिक स्तर, आदि रहता है।

शुरुआती, प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर पर बच्चों के साथ अगर कुछ भी शैक्षिक गतिविधि करवानी है, तो उसके लिए उनके स्तर तक जाना अनिवार्य हो जाता है। बच्चों के लिए किसी भी एक्टिविटी, पुस्तक, कार्यपत्रक, मॉड्यूल, आदि का निर्माण करते हुए यह ज़रूर देखा जाता है कि सभी महत्त्वपूर्ण पक्ष उनमें शामिल हों।

मैं शोध के कार्य से एक बार हनुमानगढ़ गई थी। वहाँ मैंने पाया कि पंजाब के आसपास का इलाक़ा होने से वहाँ तीसरी भाषा के रूप में पंजाबी चलती है और बोलने का लहज़ा भी पंजाबी लिए हुए होता है। इसी प्रकार, एक बार राजकीय काम के चलते बाँसवाड़ा गई तो मैंने पाया कि बाँसवाड़ा और उदयपुर की बेल्ट में गुजराती जैसा लहज़ा आ जाता है। वहाँ पर गुजराती भाषा के शब्द ज़्यादा काम में आते हैं।

इन सबसे यह समझ बनी कि जो भी हम लिखेंगे या जो भी किसी पुस्तक में होगा, वह पूरे राज्य के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए होगा। इसके बाद से, जब भी लेखन सम्बन्धी कार्य करती हूँ तो पूरा राज्य, उसकी विविधता, परिवेश, आवश्यकता, भाषा, बोलियाँ, क्षेत्रीयता, आदि ध्यान में रखती हूँ।

शुरुआत में, जब मैं प्रश्न पत्र निर्माण के कार्य से जुड़ी और मैंने अपने स्तर पर एक प्रश्न पत्र बनाया, तो मुझे लगा कि मैंने बहुत बड़ा

काम किया है। मेरा बनाया गया प्रश्न पत्र जब मेरे एक सीनियर साथी के हाथ में गया और उन्होंने मेरे द्वारा बनाए गए उस प्रश्न पत्र को जाँचा तो मेरे सामने ही उसे फाड़ दिया। उन्होंने कहा कि यह बिलकुल बेकार प्रश्न पत्र है। मेरा मन बहुत ख़राब हुआ।

लेकिन साथ ही उन्होंने मुझे समझाया कि आप जब भी लेखन कार्य करें या प्रश्न पत्र निर्माण सम्बन्धी कार्य करें तो हमारे राज्य में रहने वाले विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों का भी ध्यान रखें। जैसे आपके प्रश्न पत्र में लिखे गए नामों में सभी तरह के नाम हों। यदि ऐसा नहीं होगा तो छोटे-छोटे बच्चे कैसे इस प्रश्न पत्र को अपना प्रश्न पत्र मानेंगे।

उन्होंने यह भी कहा कि आपको हर तरह की विविधता को ध्यान में रखना है, चाहे वह क्षेत्रगत हो या जातिगत। इसके साथ, आपके बनाए प्रश्न पत्र में लिंगभेद, रंगभेद सम्बन्धी बात या काम भी नहीं होना चाहिए।



धीरे-धीरे मैंने ख़ुद के साथ काफ़ी कार्य किया और हर तरह के लेखन कार्य में उपरोक्त वर्णित सभी बातों का ध्यान रखा और अभी भी रखती हूँ।

दीपक : हम थोड़ी चर्चा कोविड के दौरान हुए लर्निंग लॉस के बारे में करेंगे। आपको क्या लगता है वह लर्निग लॉस कैसा था, कितना था और अभी उस क्षति की पूर्ति के मामले में हम क्या कर रहे हैं? और जो कर रहे हैं वह कितना कारगर है? आपके अनुभव क्या रहे?

पूनम भाटिया : जी, इसमें कोई दो राय नहीं कि कोविड काल सभी के लिए और ख़ासकर बच्चों के लिए एक त्रासदी ही रहा। बच्चों की लर्निंग 'कम' हुई ही, उनकी मानसिक एवं भावनात्मक क्षति भी हुई। लेकिन इसकी रिकवरी के प्रयास रंग ला रहे हैं और हम पहले से कुछ आगे बढ़े हैं, ऐसा मुझे तो लगता है अपने अनुभवों के आधार पर।

अपनी बात करूँ तो राजकीय निर्देशानुसार, मैंने बच्चों को कोविड काल के दौरान व्हाट्सएप ग्रुप से जोड़ दिया था। कुछ बच्चे जुड़ पाए, कुछ नहीं। जो जुड़ पाते थे, उनके साथ ऑनलाइन कक्षाएँ शुरू की गईं। पहले-पहल उनको मात्र कार्यपत्रक या कुछ काम दे दिया जाता था, फिर धीरे-धीरे पाठ के अनुसार वीडियो डालने लगे। विद्यालय खुलने व बन्द होने की प्रक्रिया लम्बी चली, अन्ततः एक लम्बे अन्तराल के बाद विद्यालय खुल ही गए।

उस समय व्हाट्सएप एक ताक़तवर ज़रिया हो गया था अपनी बातों को पहुँचाने का। इसके साथ ही ऑनलाइन मीटिंग का दौर भी शुरू हो गया था। धीरे-धीरे समझ में आने लगा कि बच्चों के साथ भी ऑनलाइन कार्य व पढ़ाई की जा सकती है। इस क्रम में, मैंने प्रतिदिन शाम को बच्चों की ऑनलाइन कक्षा लेना शुरू कर दिया था। यह सिलसिला आज तक अनवरत जारी है।

यह कार्य एक नया प्रयोग था, जिसने मेरे पिछले सभी दृष्टिकोणों को बदल दिया। अब मैं शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग करने लगी हूँ। मैं बच्चों को ऑनलाइन पढ़ाती हूँ। यहाँ यह कहना ज़्यादा उचित होगा कि मैं ऑनलाइन कक्षा में जुड़ती हूँ, क्योंकि बच्चे तो ख़ुद ही पढ़ते हैं और मुझे अध्याय पढ़कर समझाते हैं। मैं सिर्फ़ उन्हें पढ़ने

के लिए उत्साहित करती हूँ। इसमें मैं उन सबको कहती हूँ कि हर अध्याय को छोटे-छोटे भागों में बाँट लो। सबसे पहले उसको चुपचाप पढ़ो, उसका अर्थ समझो।

यानी, ज्ञान का सुदृढ़ होना तो हुआ ही है, साथ ही आत्मविश्वास का भर जाना भी हुआ है। अब बच्चे पूरी किताब स्वयं पढ़ लेते हैं। इससे रीडिंग पक्ष के साथ-साथ उनका समझने वाला पक्ष भी काफ़ी मज़बूत हुआ है। बच्चे अब बेझिझक अपनी बात रखने लगे हैं।

इसी के साथ कुछ कार्य इस तरह से भी किए गए, जिससे उनको सह शैक्षिक गतिविधियाँ करने में मज़बूती मिली। इसमें प्रमुख था, समर कैम्प लगवाना।

'एजुकेट गर्ल्स' नामक संस्था के साथ गर्मियों की छुट्टियों के दौरान 40 दिन की कार्यशाला की गई। इस कार्यशाला में बच्चे, नृत्य, गीत, संगीत, चित्रकला, अनुपयोगी सामान से उपयोगी सामान बनाने, सुन्दर व उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करने, जैसे कई काम सीखने लगे। पढ़ाई में मुख्यतः गणित, हिन्दी व अँग्रेज़ी विषय में बच्चों के कमज़ोर पक्षों को दूर करना सम्मिलित था।

इस कैम्प के अन्त में मंच पर बच्चों ने विभिन्न प्रस्तुतियाँ भी दीं। विद्यालय के बच्चों ने कार्यक्रम तैयार किए एवं 20 विद्यालयों के अन्य विद्यार्थियों के साथ उन्होंने अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इससे बच्चों के मनोभावों में एक अलग ही अन्तर देखने को मिला।

बच्चे अब काफ़ी उत्साह से काम करने लगे हैं। वे अपनी ज़िम्मेदारियों का निर्वहन स्वयं ही करने लगे हैं। बच्चों ने विद्यालय वातावरण को भी समृद्ध किया है। अन्य गतिविधियों में उत्साह से भाग लेने के साथ-साथ वे अपनी बातों को मज़बूती से रखने लगे हैं, प्रश्न पूछने लगे हैं और सहमति के साथ-साथ असहमति भी दर्ज कराने लगे हैं। विभिन्न सवालों के ज़रिए वे अपनी जिज्ञासाओं को जानने, समझने और पूछने लगे हैं। इस तरह से बच्चे शैक्षिक रूप से भी बेहतर होते दिख रहे हैं और सोशियो-इमोशनल सन्दर्भों में भी मज़बूत हो रहे हैं। इसका श्रेय समग्रता में किए गए प्रतिबद्ध प्रयासों को जाता है।

पूनम भाटिया, 1999 से राजकीय सेवा में तथा 2017 से उच्च प्राथमिक विद्यालय, सांगानेर में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत हैं। शिक्षा से वंचित समुदायों के बच्चों के अध्यापन व शैक्षिक विकास में लगी रहती हैं। पढ़ने-पढ़ाने और पुस्तक संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए रीडिंग कॉर्नर व पुस्तकालयों के निर्माण में सक्रिय हैं। शिक्षण सामग्री निर्माण और शिक्षक-प्रशिक्षण में अपनी भूमिकाएँ निभाती हैं। रक्तदान और पौधारोपण अभियान जैसे सामाजिक सरोकारों से भी जुड़ी हुई हैं। उनका का एक काव्य संग्रह *प्रेम रागिनी* प्रकाशित हुआ है।

सम्पर्क : bhatip426@gmail.com

दीपक कुमार राय अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर, राजस्थान में 2019 से रिसोर्स पर्सन के रूप में काम कर रहे हैं। आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर, और डीफ़िल डिग्री लेने के बाद उच्च शिक्षा में प्राध्यापक के रूप में अध्ययन-अध्यापन से जुड़े रहे। आपने 'दिगंतर' में एसोसिएट फ़ेलो के रूप में शैक्षणिक शोध से जुड़ी गतिविधियों में भागीदारी की है। आपकी इतिहास, साहित्य, विचार और वैचारिकी पर केन्द्रित लगभग एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हैं। आपने बिहार प्रगतिशील लेखक संघ की पत्रिका *रोशनाई*, साप्ताहिक समाचार पत्र *गणादेश, प्रतिश्रुति, आवाज़ जन मन की, संघतिया* आदि पत्रिकाओं के सम्पादन सहित *सैद्धान्तिकी* और *मतादर्श* नामक दो शोध पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया है।

सम्पर्क : deepak.rai@azimpremjifoundation.org

स्कूल / कक्षा में संवैधानिक मूल्यों का शिक्षण कैसे हो?

इस अंक के लिए संवाद का विषय था – 'स्कूल / कक्षा में संवैधानिक मूल्यों का शिक्षण कैसे हो?' मूल संवैधानिक वायदों; सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता; प्रतिष्ठा और अवसर की समता; आदि पर बच्चों के साथ संवाद कैसे हो, ताकि बच्चे इन मूल्यों को समझ सकें। साथ ही यह भी समझ सकें कि लोकतंत्र के लिए इन मूल्यों के क्या निहितार्थ हैं, और उसमें उनकी क्या भूमिका हो सकती है। इस संवाद में शामिल थे– महमूद ख़ान, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर; मनोहर चमोली, शिक्षक, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड; अब्दुल कलाम, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, खरगोन, मध्य प्रदेश; अमन मदान, प्राध्यापक, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु; और मयंक मिश्रा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, रायपुर, छत्तीसगढ़। –सं.

रजनी : आप सभी का स्वागत है। मैं पहला सवाल रखती हूँ। संवैधानिक मूल्यों से क्या आशय है?

महमूद : संवैधानिक मूल्यों को कैसे समझें और कैसे समझाएँ, यह चुनौतीपूर्ण है। संविधान की उद्देशिका में भाईचारा, समानता, स्वतंत्रता, न्याय, आदि की बात है। इन्हें ही हम संवैधानिक मूल्यों के रूप में पहचानते हैं। संविधान में एक ऐसे समाज की कल्पना है जिसमें ये सारी चीज़ें हों। लेकिन दैनिक जीवन में जो घटनाएँ, घटित होती हैं तब बार-बार सवाल खड़ा होता है कि इनके मायने क्या हैं? 1959 के आसपास बनी एक फ़िल्म थी जिसमें सुनील दत्त शिक्षक की भूमिका में थे। वे बच्चों के सामने संविधान में अपेक्षित भारत की तस्वीर रखते हैं। उनकी कक्षा के बच्चे भाषा की तकरार, ऊँच-नीच, जात-पात पर सवाल उठाते हैं। वे पूछते हैं कि आप जिस भारत की बात कह रहे हैं वो तो कहीं दिखाई देता नहीं है। आज भी कक्षा में काम करते हुए, एक बड़ा सवाल प्रश्न चिह्न के रूप में सामने नज़र आता है कि रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में इन मूल्यों के मायने क्या हैं?



चित्र 1 : हीरा धुर्वे

रजनी : मयंक, आप इन मूल्यों को कैसे समझते हैं?

मयंक : हम लोगों ने अपनी स्कूली ज़िन्दगी में संविधान और संवैधानिक मूल्यों को पढ़ा है। लेकिन, उन शब्दों को रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में व्यवहारों के तौर पर समझ पाना एक कठिन टास्क है। कई मर्तबा ऐसा भी होता है कि हम स्कूल में पढ़ी गई परिभाषाओं व उन आशयों के सहारे आगे बढ़ने के आदी हो चुके होते हैं। इसके चलते, हम अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में छोटी-छोटी जगहों पर इन मूल्यों को मुक़म्मल होता या नहीं होता हुआ देखते हैं। दोनों ही परिस्थितियों में हम कुछ नहीं कर पाते। मुक़म्मल होने पर हम उन्हें सराह नहीं पाते, और न होने पर सवाल खड़े नहीं कर पाते। उदाहरण के लिए, हमारे सामाजिक तौर-तरीक़े, व्यवहारिक कौशल, लोगों के साथ हमारा बर्ताव, उस बर्ताव का पैटर्न, इन सभी में हमारी संवैधानिक मूल्यों के साथ संगतता / गैर-संगतता परिलक्षित होती है। मुझे कई बार यह लगता है कि इन मूल्यों की परिभाषा समझने के बजाय हम इन्हें इन इंडीकेटरों के माध्यम से समझने की कोशिश करें।

मनोहर : स्कूल में संवैधानिक मूल्यों की बात कभी हमारे साथ सीधे की गई हो, याद नहीं पड़ता। बहुत बाद में, जब सामाजिक संस्थाओं से जुड़े तब मालूम चला कि संवैधानिक मूल्य कितने ज़रूरी हैं। हालाँकि, मुझे हमेशा ऐसा लगता है कि एक मनुष्य होने के तौर पर हमारे अन्दर मनुष्यता होनी चाहिए। मेरे ख़्याल से वो ही संवैधानिक मूल्य है। स्कूल में, पाठ्यपुस्तक में एक ख़ास तरह की बात होती है। बच्चे जिन घरों से आते हैं वहाँ उनके मूल्य कुछ और हैं, और शिक्षक उनके साथ एक अलग तरीक़े से बातचीत करते हैं। रोज़ प्रात:कालीन सभा से स्कूल की छुट्टी होने तक और छुट्टी के बाद भी संवैधानिक मूल्य बार-बार हमारे और बच्चों के सामने आते हैं। जैसे– प्रार्थना सभा में सभी बच्चों को समान अवसर मिलना, कक्षा में बच्चों का रोटेशन में बैठना या नहीं बैठना, होशियार या कमज़ोर बच्चे आदि। सभी बच्चों को, हमारे साथियों को हम बराबरी से देखें तभी मेरे ख़्याल से लोकतंत्र में हमारी आस्था होगी।

अब्दुल : मनोहरजी ने रेखांकित किया है कि पाठ्यपुस्तकों में कुछ परिभाषाओं के साथ मूल्यों



चित्र 2



चित्र 3 : हीरा धुर्वे



चित्र 4 : हीरा धुर्वे

के बारे में सुनते-समझते हैं, लेकिन व्यक्तिगत तौर पर ये मूल्य बहुत कुछ व्यवहार में परिलक्षित होते हैं। जैसे– मेरे घर के लोगों का दूसरों को देखने का नज़रिया क्या है, या जो आसपास घटनाएँ हो रही हैं, उनको देखने का क्या नज़रिया है। जब उन नज़रियों के साथ हम उन चीज़ों को समझने के लिए अपना नज़रिया बनाते हैं, तब शायद हम उन मूल्यों को भी अपने जीवन में आत्मसात करते हैं। संवैधानिक मूल्य जिस तरीक़े से परिभाषित हैं, जिस तरह से स्कूलों में इनकी व्याख्या प्रस्तुत होती है वो न तो समझ आती है, न लोगों को जोड़ पाती है। इसके विपरीत, आपसी सहयोग, मेल भाव, मिलना-जुलना, दूसरे को देखकर सहजता से अपनी बात कहना, ये सभी सरल भी हैं और मूल्यों से सीधे जुड़ते भी हैं। लेकिन जब हम उनको बन्धुत्व, सम्प्रभुता की तरह से रखते हैं और उनपर कोई बातचीत नहीं करते कि ये हैं क्या, तो विद्यार्थी के लिए, और हमारे लिए भी, यह समझना बड़ा मुश्किल हो जाता है कि वास्तव में मूल्य हैं क्या? तब हम इनको समझते नहीं हैं, पढ़ रहे होते हैं।

रजनी : यह सही है कि स्कूल में बच्चों से इन मूल्यों के सन्दर्भ में अर्थपूर्ण बात नहीं होती। पाठ्यपुस्तक में इनकी परिभाषाएँ या संक्षिप्त व्याख्या होती है जिसे याद करना होता है। विद्यार्थी कक्षा बारहवीं तक मूल अधिकार, कर्तव्य, धर्मनिरपेक्षता, समता, बराबरी आदि के बारे में पढ़ सकते हैं लेकिन केवल परीक्षा के लिए। एक लोकतांत्रिक देश / समाज के सन्दर्भ में ये क्यों ज़रूरी हैं, इसपर कोई बात नहीं होती। हाँ, ये बातचीत होती है कि किसी इंसान के साथ ख़राब व्यवहार नहीं करना चाहिए, उसे नीचा नहीं दिखाना चाहिए, या अगर कोई बात कर रहा हो तो उसकी बात सुनना चाहिए। बारहवीं के बाद जब हम उच्च शिक्षा में जाते हैं, वहाँ विषय चयन करते हैं और इसके बाद कुछ अनुशासनों में तो इनपर बातचीत ही बन्द हो जाती है। गणित, विज्ञान जैसे विषय में कोई स्कोप नहीं है कि इन मूल्यों पर व्यवस्थित बातचीत के मौक़े मिलेंगे। हालाँकि, जीने के तरीक़े में संवैधानिक मूल्यों को देखें तो वहाँ उनकी परिभाषाएँ वैसी नहीं हैं



चित्र 5

पर बाएँ चलना चाहिए, अगर सड़क पर कोई दुर्घटनाग्रस्त है तो उसकी मदद करनी चाहिए। मैंने पूछा कि ये बहुत अलग-अलग तरह के नियम हैं, इनके आधार कहाँ से आ रहे हैं, ये नियम कहाँ और कौन बनाता है? उन्होंने बताया कि कुछ नियम परिवार के लोग, परिवार का मुखिया बनाता है और उनका आधार हमारी परम्पराएँ और रीति-रिवाज हैं। मैंने कहा कि अपने देश के सन्दर्भ में भी बहुत सारे नियम हैं और वे संविधान में दिए गए हैं। हमने पाठ्यपुस्तक में दी गई संविधान की उद्देशिका को पढ़ा और उसपर चर्चा की। फिर मैंने बच्चों से पूछा कि इनमें से किस नियम को बुनियादी कह सकते हैं। बच्चे नहीं बता पाए। तब मैंने पूछा कि मान लीजिए, आपको कक्षा का मॉनिटर चुनना है तो क्या नियम होगा जिसे आप बदलना नहीं चाहेंगे, चाहे परिस्थिति कोई भी हो वो नियम ज़रूरी होगा। दस-पन्द्रह मिनट के बाद बच्चे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सबको मॉनिटर का चुनाव लड़ने का अधिकार होगा। मज़ेदार बात ये हुई कि जब मॉनिटर के लिए कुछ बुनियादी योग्यताएँ बनाईं, उसमें सिर्फ़ दो ही चीज़ें उभरकर आ रही थीं कि वो इंटेलीजेंट हो और कक्षा को अनुशासन में रख सकता हो।

रजनी : हम संवैधानिक मूल्यों, बराबरी, समता, धर्मनिरपेक्षता, आदि की बात कर रहे हैं। इनके सन्दर्भ में बच्चे अपने घरों से या जिस समाज में वो रहते हैं वहाँ से किस तरह की समझ लेकर आते हैं?

मनोहर : बच्चे अपने परिवेश व समाज से धारणाएँ लेकर आते हैं। मसलन, कुछ बच्चों में अलग रहने का स्वभाव दिखाई देता है। कुछ को लगता है कि इसके घर का खाना मेरे घर के खाने से अलग है, लेकिन कुछ बच्चे शेयरिंग भी करते हैं। जब स्कूल में हम उनसे बात करते हैं तो कई बार वो चौंकते भी हैं कि क्या हमें

जैसी दस्तावेज़ों में दिखती हैं, लेकिन मनुष्यता की समझ में वे हैं।

रजनी : अगला सवाल है संवैधानिक मूल्यों के मसलों व निहितार्थों के बारे में बच्चे कुछ पूर्वधारणाएँ व समझ लेकर स्कूल आते हैं। ये पूर्वधारणाएँ और समझ किस तरह की होती हैं?

महमूद : मैं एक अनुभव रखता हूँ। नवीं कक्षा के शहरी बच्चे हैं। इनके साथ संविधान वाले अध्याय पर काम करना था। पहले दिन उनसे परिचय करने के बाद पहला टास्क था– आसपास किस-किस तरीक़े के नियमों में हम अपने-आप को बँधा हुआ पाते हैं। नियमों की एक लम्बी-सी सूची बच्चों ने बना दी– जूते घर के आँगन के बाहर उतारने हैं, बड़ों की इज़्ज़त करनी है, लड़की अकेली घर से बाहर नहीं जाएगी, घर में जो बना है वही सब लोग खाएँगे। कुछ बच्चों ने कहा कि स्कूल में सब स्कूल यूनिफ़ॉर्म में आएँगे, पंक्तिवार कक्षा में जाएँगे, कक्षा के बाहर सभी बच्चे लाइन से अपने जूते उतारेंगे, होमवर्क सबको करना है, आदि। कुछ ऐसे नियम भी बताए कि सड़क

ऐसा होना चाहिए? या हम ऐसे हैं तो क्या हमारे अन्दर कुछ गड़बड़ है?

अब्दुल : एक स्तर की समझ बच्चों के पास होती है। उदाहरण के लिए, मेरा अनुभव है कि सभी बच्चे बहुत केयरिंग होते हैं। शुरुआती स्तर के बच्चों में इस तरीक़े के विभेद नहीं दिखते कि उनको सिर्फ़ लड़कों के साथ ही खेलना है या लड़कियों के साथ। लेकिन यह भी सही है कि अगर किसी बच्चे ने यह अनुभव किया है कि मेरे घर कोई रोटी माँगने आता है तो उससे कैसा व्यवहार किया जाता है, या मैं लड़का हूँ तो कैसा व्यवहार किया जाता है, या फ़लाँ धर्म / जाति के बच्चों से दूर रहना है, उनके साथ नहीं खेलना है, तो उसकी धारणाएँ कुछ और तरह से बनेंगी ही। यदि शुरुआती स्तर पर इस सन्दर्भ में बच्चों से बातचीत नहीं हो तो आगे की कक्षाओं में हम जितनी भी समता की बात कर रहे होंगे तब भी वह डिफ़ेंसिव मोड में ही रहेगा। अकसर हम देखते हैं कि बच्चे चोट लगे जानवर की देखभाल में पूरा समय लगा देते हैं, कोई गिर गया हो तो उसकी मदद कर रहे होते हैं, खेल खेलते हुए नियम भी ख़ुद बनाते हैं, तोड़ते भी हैं और उसको सुलटाते भी हैं। सारे मसले को वो एक खेल के दौरान ख़ुद ही सुलझा लेते हैं। यह समझ इन संवैधानिक मूल्यों से जुड़ती है। लेकिन इस समझ का न तो कक्षा में शिक्षक इस्तेमाल कर पाते हैं, न ही घरों में बच्चों से ऐसे वाक़यों पर बात होती है। इस गैप की वजह से ही कक्षा में समता, समानता, धर्मनिरपेक्षता और दूसरे मूल्यों को समझाने पर बच्चे कनेक्ट नहीं कर पा रहे होते हैं। जिस विविधता और विभिन्नताओं में वे बचपन में अपने दोस्तों के साथ खेले हैं वही चीज़ें आगे जाकर समाज में दिख रही होती हैं।

रजनी : मयंक, आप कुछ कह रहे थे?

मयंक : कुछ निश्चित मान्यताओं को मानना और साथ-ही-साथ उन मान्यताओं का स्कूल की प्रक्रियाओं के साथ या तो ख़ारिज होना या फिर और ज़्यादा मज़बूत हो जाना, ये दोनों बहुत अहम हिस्से हैं। चूँकि घर, समाज, स्कूल में जिस तरह से परवरिश होती है, उसमें स्वाभाविक रूप से बच्चों की जेंडर, धार्मिक विश्वास और सामाजिक स्तर से सम्बन्धित मान्यताएँ बनती हैं। ये सभी मान्यताएँ बच्चों के साथ स्कूल में आ रही हैं। लेकिन स्कूल



चित्र 6

एक ऐसी जगह भी है जिसको यह तय करना है कि कौन-सी धारणाएँ आगे जानी चाहिए और कौन-सी धारणाएँ यहीं ख़ारिज होंगी। इन धारणाओं को मैं दो-तीन वर्गों में रखता हूँ। बहुत-सी धारणाएँ व्यक्ति / बच्चे की पहचान और अस्मिता से जुड़ी होती हैं। मसलन, मेरे स्कूल के शिक्षक, दोस्त, साथ में पढ़ने वाले एक इंसान (इंडिविजुअल) के तौर पर मुझसे कैसे व्यवहार करते हैं। जैसे– बच्चों पर सभी के सामने चिल्लाना या उन्हें डण्डे से मारना। यह बच्चे की पहचान और अस्मिता को प्रभावित कर रहा होता है। ऐसे मान्यताएँ भी होती हैं जिनको हम पारम्परिक तौर पर समझते हैं। मसलन, जेंडर भूमिकाएँ, धार्मिक विश्वास से जुड़े मसले, और किस सामाजिक स्तर से आने वाले व्यक्ति के साथ कैसे पेश आया जाएगा! मैं उदाहरण देता हूँ। मैं अभी हाल ही में एक ऐसे स्कूल में गया, जिसको सरकार ने इंग्लिश मीडियम स्कूल में कन्वर्ट कर दिया है। अब बहुत सारे उच्च स्तर के अभिभावकों, शिक्षक, सरकारी कर्मचारियों ने अपने बच्चों का दाख़िला वहाँ करा दिया। इससे यह हुआ कि अधिकांश ऐसे बच्चे स्कूल में ख़ुद का टिफ़िन लेकर जा रहे हैं। पहले सभी बच्चे साथ बैठकर खाते थे, लेकिन धीरे-धीरे इन बच्चों ने बाक़ी बच्चों के साथ मील शेयर करना बन्द कर दिया। एक दूसरे के पास में बैठने की प्रेक्टिस भी वहाँ ख़त्म हो गई। यहाँ सामाजिक-आर्थिक स्तर से जुड़ी धारणाएँ स्कूल में आ रही हैं। ये समाज और इसकी विविधता से जुड़े मसले हैं जो स्कूल में आते हैं।



चित्र 7 : कालू राम शर्मा

तीसरे क़िस्म का मसला एक कोलेबोरेटिव और समावेशी स्कूल संस्कृति की तरफ़ ले जाता है। अभी बन्धुत्व की बात हम कर रहे थे। मेरे स्कूल के शिक्षक ऐसे अभ्यास भी मुझे देते हैं जहाँ दूसरों की मदद से उनको करने की ज़रूरत पड़ती है। ऐसे मौक़े गढ़ना और बच्चों को एक दूसरे की मदद के लिए प्रोत्साहित करना इनसे बच्चे मूल्यों को समझ सकते हैं। मुझे लगता है कि ऐसे कई तरीक़े हो सकते हैं जिनमें मूल्यों के सन्दर्भ में शारीरिक, दिमाग़ी और भावनात्मक पहलुओं से जुड़े मसलों पर बातचीत की जा सकती है। कुछ मसले प्रचलित सामाजिक रूढ़ियों से जुड़े हुए हैं तो कुछ ऐसे हैं जो कोलेबोरेटिव और समावेशी संस्कृति को रेखांकित करते हैं। इन तीनों को विस्तार दिया जा सकता है और देखा जा सकता है कि कौन-से मूल्य किस खाँचे में फ़िट हो सकते हैं।

रजनी : क्या समाज इन मूल्यों की समझ में अड़चन बनकर ही आता है। समाज को बेहतर करने में स्कूल कैसे मदद कर सकता है?

महमूद : राजस्थान में फ़्यूडल सिस्टम बहुत रहा है। आज भी इसका प्रभाव कई सारे स्कूलों में देखने को मिलता है। कक्षाओं में कुछ बच्चे दरी-पट्टी लेकर पीछे बैठे हुए होते हैं, ख़ासकर पश्चिमी राजस्थान में। बात करने पर पता चलता है कि कथित छोटी जाति के बच्चे हैं इसलिए पीछे बैठे हैं। शिक्षक कहते हैं कि पढ़ा तो हम सभी को एक-सा रहे हैं। लेकिन बैठक व्यवस्था ऐसी ही करनी होगी, नहीं तो बाक़ी बच्चे स्कूल नहीं आएँगे। हमको समाज में भी जवाब देना होता है। पाठ्यपुस्तक पढ़ते हुए

शिक्षक कहते हैं कि हम सब बराबर हैं, लेकिन असल में शिक्षक भी बराबरी का व्यवहार नहीं करते हैं। मसलन, राजस्थान के कई स्कूलों में अनुसूचित जाति के शिक्षकों-बच्चों का पानी का मटका अलग मिलेगा। स्टाफ़रूम में उनके बैठने की जगह अलग होगी। बच्चे यह देखते हैं कि पढ़ने का मामला, परीक्षा की तैयारी आदि अलग है, और ज़िन्दगी कुछ अलग तरीक़े से जीनी है। लेकिन सबकुछ काला है, ऐसा भी नहीं है। ऐसे शिक्षक भी हैं जो संवेदनशील हैं, और इन मुद्दों की समझ रखते हैं। वे रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के उदाहरणों को लेकर समानता, न्याय, बराबरी और इनके मायने क्या हैं, इनकी बात करते हैं।

मनोहर : जो बातचीत मैं सुन रहा हूँ, उससे लगता है कि सारी ज़िम्मेदारी शिक्षक की है। मैं मानता हूँ कि शिक्षक बहुत गहरी भूमिका निभाते हैं। हाल ही में, कक्षा 6 में पढ़ने वाले बच्चे आपस में लड़ रहे थे। जब कक्षा में जाकर पूछा कि क्यों लड़ रहे हो, तो बच्चे कहते हैं इस बच्चे ने कहा कि तुम छोटी जात के हो, मुझसे दूर रहो। मैं दंग रह गया। मेरे स्कूल में पन्द्रह शिक्षक हैं, हमारा सबका सद्भाव है तब ये बच्चा कहाँ से इस तरह की बातें ले आया? थोड़ा खँगाला, तो पाया कि बच्चे दोहरी भूमिका में स्कूल आते हैं। उन्हें पता है कि स्कूल के बाहर हमें कैसा जीवन निर्वाह करना है। स्कूल में, सभा में, मिड-डे मील में हम सब साथ बैठते हैं। बच्चा कहता है कि यहाँ तो हम खा लेते हैं, पर ये हमारे घर में नहीं खा सकते या हम इनके घर में जाकर नहीं खा सकते। तब हम बातचीत करते हैं पर ज़्यादा क्रान्तिकारी क़दम नहीं उठा सकते, नहीं तो प्रतिक्रिया गाड़ियों को तोड़ने या उन्हें सड़क से नीचे फेंकने जैसी हो सकती है। बहुत सारे दबाव अभिभावक हमको देते हैं। वो कहते हैं कि गुरुजी, आप अपना काम कीजिए, इन घर की चीज़ों पर आप हस्तक्षेप मत कीजिए। घर से स्कूल के रास्ते में बहुत संवेदनशील मसले हैं, जहाँ न चाहते हुए भी कभी-कभी चुप होना पड़ता है। जो पहल करके इन चीज़ों को बदलने की बात करते हैं उनके साथ भी बहुत सारी दिक़्क़तें हो जाती हैं। हम वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर चर्चा, बेटी करे सवाल और भी ऐसी कई किताबों को पढ़ना और उनपर चर्चा करते हैं। इससे बदलाव तो आ रहा है लेकिन इसकी गति बहुत धीमी है। इसलिए शिक्षक केवल पाठ पढ़ाता है, इन मूल्यों पर बात नहीं कर पाता, यह कहना ठीक नहीं है। चूँकि छुट्टी के बाद बच्चा अपने गाँव में जा रहा है, वहाँ वह इन बातों को दृढ़ता के साथ नहीं कर पाता।


चित्र 8

रजनी : अब्दुल, आप अपनी बात रखें।

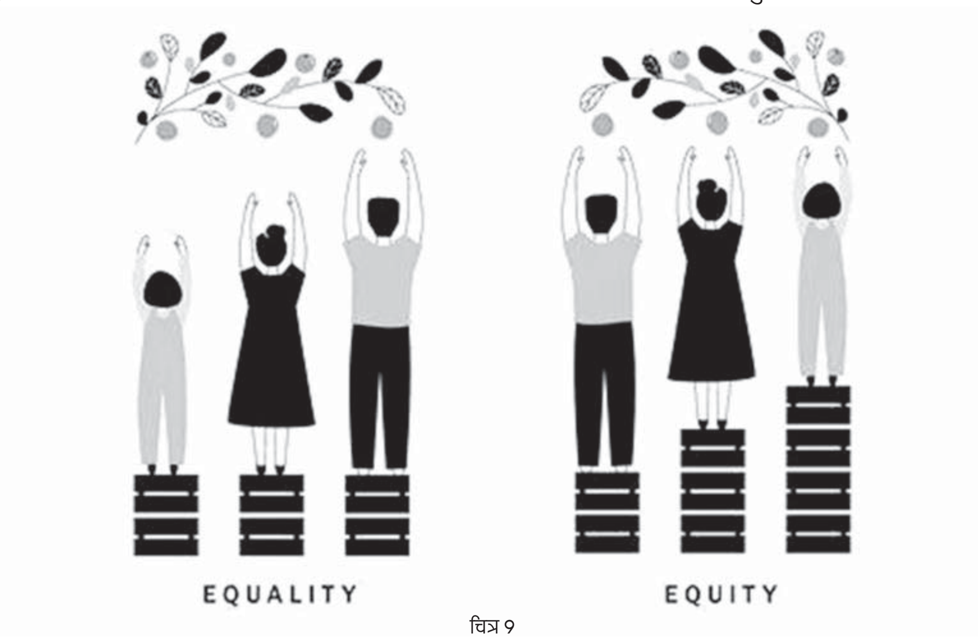
अब्दुल : मैं इसे समाज के द्वारा अड़चन तो नहीं, पर समाज में मौजूद विविधता कहूँगा। विविधता समाज में है। इसका बेहतर तरीक़े से इस्तेमाल कर हम मूल्यों तक ले जा सकते हैं। स्कूल अपने-आप में एक छोटा समाज है। मैं मनोहर की बात से सहमत हूँ कि अकेले शिक्षक की ज़िम्मेदारी नहीं है। लेकिन साथ में यह भी ज़रूर कहूँगा कि अगर मुझे चार क़िस्म के समाज के साथ रहने और उनकी प्रक्रियाओं को

समझने का एक्सपोज़र मिलेगा तब मेरा नज़रिया व्यापक होगा ही। लेकिन अधिकांश बच्चे बेहद लिमिटेड एक्सपोज़र के साथ पलते-बढ़ते हैं। एक शिक्षक और पढ़े-लिखे अभिभावक, जो एक्सपोज़र के साथ आते हैं, उनकी ज़िम्मेदारी है कि बच्चे अन्य समाजों और ग़ैर-बराबरी के बारे में जान पाएँ। एक चर्चा का ज़िक्र करूँगा। शिक्षकों के साथ बातचीत में हमने कहा कि आप अपने समाज में जो बदलना चाहते हो, उसकी सूची बनाएँ। जाति व्यवस्था, धर्म के आधार पर भेदभाव, लिंग के आधार पर भेद, ऐसी एक लम्बी सूची बन गई। फिर कहा कि स्कूल में क्या चीज़ें आपको बदलनी हैं, तो सभी ने इस सूची में व्यवस्थागत बिन्दु लिखे। चाहे वो खेल के दौरान, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, कुछ चुनिन्दा बच्चों को अवसर देने की बात करें या अपने स्टाफ़ के शिक्षक साथी या महिला साथियों के साथ व्यवहार की बात। माने स्कूल में जिस तरीक़े से काम किए जाने की बात है, वो बहुत लिमिटेड है। पर मुझे ये भी लगता है कि शायद इन छोटे प्रयासों से ही बड़े मूल्य के बदलाव तक पहुँच सकते हैं। यह भी कि, मुझे स्कूल की ज़िम्मेदारी ज़्यादा लगती है क्योंकि एक्सपोज़र देने और विविधता को सराहने के अवसर एक शिक्षक और स्कूल ज़्यादा बेहतर तरीक़े से दे सकता है।

महमूद : शिक्षक की पहल का उदाहरण देना चाहूँगा। टोंक में स्कूल को भी शादी-ब्याह में आमंत्रित किया जाता है। एक कथित बड़ी जाति के यहाँ शादी में स्टाफ़ और बच्चे गए थे। वहाँ अन्य जाति के बच्चों को अलग बिठाया तो शिक्षक ने कहा कि बच्चो, उठ जाओ! उन्होंने कहा कि देखिए, आपने पूरे स्कूल को बुलाया है न कि किसी जाति या किसी व्यक्ति को। ये मेरा परिवार है। मैं इनके साथ बैठकर खाऊँगा या ये मेरे साथ बैठकर खाएँगे जहाँ आप मुझे बिठाएँगे। मैं कहीं अलग और बच्चे कहीं अलग बैठें, ऐसा नहीं हो सकता। और बाद में सभी ने एक ही पण्डाल खाना खाया।

रजनी : इन विरोधाभास और द्वन्द्व को ध्यान में रखते हुए, शिक्षकों की तैयारी किस तरह की हो ताकि वो स्कूल में इन सारी चीज़ों की अहमियत को भी समझें और इनपर काम भी कर सकें।

मनोहर : यह महत्त्वपूर्ण सवाल है। जब भोपाल गैस काण्ड हुआ तब हमें अखिल



चित्र 9

भारतीय जन विज्ञान संघ के साथ जुड़ने का मौक़ा मिला। गैस काण्ड पर कही गई बातें, उठाए गए सवाल जायज़ और मनुष्यता से जुड़े लगे। कोरोना काल ने भी एहसास कराया कि स्कूल व अध्यापकों की भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण है। अकसर प्रात:कालीन सभा में हम पाते हैं कि क्या हम सब बच्चों को प्रार्थना के, समाचार पढ़ने या कुछ कहने के बारी-बारी से अवसर दे रहे हैं! कक्षा व्यवस्था कैसी है, क्या लड़के-लड़कियाँ साथ बैठते हैं, बारी-बारी से आगे-पीछे बैठते हैं, और खाना साथ बैठकर खाते हैं? क्या हम बच्चों की बात सुनते हैं? उनको प्रश्न करने का मौक़ा देते हैं? और ऐसा क्यों होना चाहिए यह भी शिक्षा तैयारी का हिस्सा हो। मुझे यह भी लगता है कि सिर्फ़ पढ़ाने से काम नहीं चलेगा, सिर्फ़ रजिस्टर भर देने या कक्षा अध्यापकी से काम नहीं चलेगा, और इससे भी काम नहीं चलेगा कि अपनी छुट्टी हुई और अपने घर आ गए। लगातार सम्पर्क करने, बातचीत करने से चीज़ें बदलेंगी।

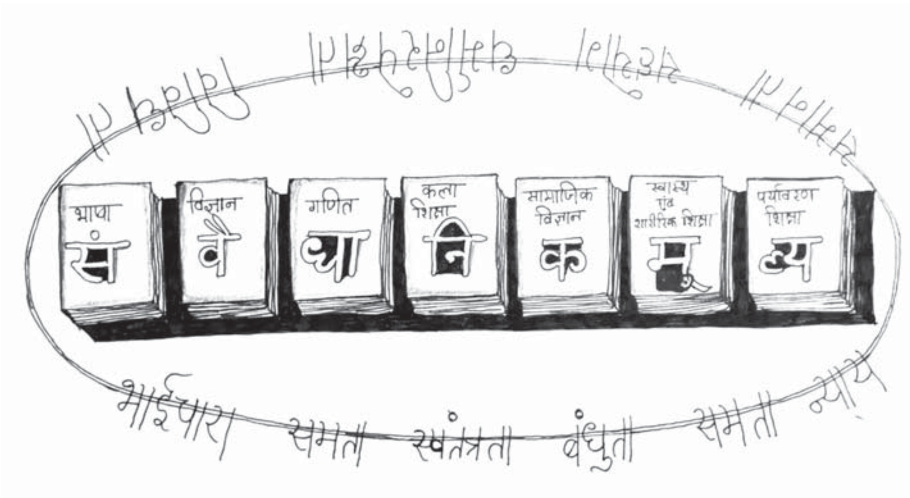


चित्र 10

रजनी : मयंक, आप कहें?

मयंक : शिक्षकों पर दबाव की बात कही गई थी, यह काफ़ी वाज़िब है। शिक्षक तैयारी के सन्दर्भ में मुझे लगता है कि बेहतरी के क़दम मौजूदा ज़मीन पर टिके होंगे तो वो ज़्यादा बेहतर होंगे। जैसे– अभी इन मूल्यों को हम कैसे समझते हैं और इनको सीखने-सिखाने के तरीक़ों व स्कूल की अन्य प्रक्रियाओं में कैसे शामिल करते हैं। मूल्यों के बारे में नज़रिया यह तय कर देता है कि स्कूल की प्रेक्टिसेस की क्या शक्ल होगी। सामाजिक प्रक्रियाओं में संवैधानिक मूल्यों को लेकर जिस तरह के विरोधाभास हैं, उनको कम करने में स्कूल बड़ी भूमिका निभा सकते हैं और निभाते भी हैं। स्कूलों में अभी अधिकांशतः किताबों की मदद से मूल्यों पर बातचीत होती है। छत्तीसगढ़ में 6वीं, 7वीं और 8वीं कक्षा में योग और नैतिक शिक्षा की पूरक पाठ्यपुस्तकें हैं। अन्य राज्यों में भी इसके लिए कुछ प्रक्रियाएँ होंगी। मेरी स्कूली शिक्षा में भी ऐसा ही था। कहीं-कहीं मूल्यों के लिए अलग से सत्र होते हैं। यह भी होता है कि एक बोर्ड पर 'थॉट ऑफ़ द डे' लिखा जाता है। लेकिन यह अर्थपूर्ण नहीं हैं, इनसे कोई समझ नहीं बनती। इनसे यह भी परिलक्षित होता है कि इन मूल्यों पर अर्थपूर्ण काम करने के लिए ख़ास कोशिश की, तैयारी की ज़रूरत तो है ही!

इसमें यह भी ज़रूरी है कि हमारी ख़ुद की मूल्यों के प्रति समझ क्या है, उसे हम कैसे आर्टिकुलेट करते हैं और मूल्यों की प्रकृति को कैसे समझते हैं। पाठ्यपुस्तकें इस बात को स्थापित करती हैं कि रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में मूल्यों के लिए उपदेशात्मक होना पड़ेगा, किस कहानी से क्या शिक्षा मिलती है, बताना होगा। शिक्षक की तैयारी के लिए इन सभी परिस्थितियों के बारे में, और तब पढ़ाने के तरीक़ों के बारे में सोचना होगा। जैसे– क्या मूल्यों की कक्षा में ही मूल्य पढ़ाए जा सकते हैं? क्या नियमित विज्ञान की कक्षाओं में, जल प्रदूषण पढ़ते हुए, या इतिहास की कक्षाओं में मूल्य की बात नहीं हो सकती? जब कला, खानपान, संस्कृति के पहलुओं की बात है तब ये मूल्य हैं या नहीं? मुझे लगता है कि संवैधानिक मूल्यों को पूरे पाठ्यक्रम



चित्र 11: हीरा धुर्वे

में देखने की ज़रूरत है। इसके लिए अलग से सत्र या उपदेश से काम नहीं होगा। और शिक्षक की तैयारी भी ऐसी करनी होगी।

यह भी देखने की ज़रूरत है कि हम अपने स्कूल के लिए सीखने-सिखाने की कैसी प्रक्रियाएँ चाहते हैं, स्कूल की संस्कृति कैसी चाहते हैं और इनके साथ विषयों का शिक्षण, इन सभी के प्रकाश में संवैधानिक मूल्यों की बात करेंगे तब ही जाकर ये कुछ मुक़म्मल शक्ल लेता है कि हमारे शिक्षकों की हमारे स्कूल की क्या तैयारी होनी चाहिए।

रजनी : अभी शिक्षक किस तरीक़े से पढ़ा रहे हैं?

मयंक : यहाँ, छत्तीसगढ़ में, यह काम हो रहा है कि स्कूल, एक संस्थान के तौर पर, संवैधानिक मूल्यों पर कैसे काम कर सकता है और बच्चों में कैसे इनको विकसित कर सकता है। इस साल लगभग 250 शिक्षकों के साथ बातचीत हुई है।

मूल्यों के विकास की सबसे बुनियादी शर्त है कि स्कूल का माहौल, संस्कृति ऐसी हो जो स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों, शिक्षक, जुड़े हुए समुदाय, सभी को उनकी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने में मदद कर सके। दूसरी विविधता, उससे जुड़ी धारणाओं, प्रेक्टिसेस को समझने की जरूरत है। जैसे स्कूल में यदि कुछ ख़ास काम को कुछ ख़ास बच्चे ही करते हैं तो न सिर्फ़ सोचने, बल्कि दख़ल देने की ज़रूरत है। साथ ही, स्कूल में ऐसी प्रक्रिया सुनिश्चित करने की ज़रूरत है ताकि इन आयामों को न्यूट्रलाइज़ किया जा सके।

ये मूल्य, कक्षा में पढ़ाए जाने के दौरान समूह बनाना, दिए गए टास्क की प्रकृति, शिक्षक व बच्चों की अन्तःक्रिया, मूल्यांकन का तरीक़ा, सभी में परिलक्षित होते हैं। अकसर स्कूल व कक्षाओं में हम पाते हैं कि कुछ ही बच्चों पर फ़ोकस होता है। हमारे साथ स्कूल में काम करने वाले साथियों के पूर्वाग्रहों से तय होता है कि कौन-सा बच्चा किस तरीक़े के कपड़े पहनकर आता है, साफ़ सुथरा है, वग़ैरह-वग़ैरह। शिक्षकों, स्कूल के सदस्यों के पूर्वाग्रह भी स्कूल की नियमित कार्यप्रणाली में बाधा डाल सकते हैं इस बारे में सचेतता ज़रूरी है। इसी तरह, एक सबसे बड़ी बात लगती है, स्कूल को अपने हर एक एफ़र्ट और उसके होने वाले इम्पैक्ट के बारे में कम्युनिटी के बीच अपनी बात रखने की भी ज़रूरत है।

रजनी : यदि आप बता सकें, शिक्षक क्या-क्या कर रहे हैं?

मयंक : एक बात मैं रेखांकित करना चाहूँगा कि इन मूल्यों को एक जल्द होने वाले ट्रांसफ़ॉर्मेशन के तौर पर नहीं देखना चाहिए। अगर स्कूल में जाति, धर्म को लेकर मेरी कुछ मान्यताएँ हैं तो इन्हें तुरन्त एड्रेस करने की ज़रूरत नहीं है। शिक्षकों से बात करके समझ आया कि इनको ध्यान में रखते हुए कक्षा प्रक्रियाओं में इन चर्चाओं की जगह बनाने की ज़रूरत है। जिन स्कूलों में इसपर काम हो रहा है वहाँ प्रार्थना सभा में अब रोटेशन प्रक्रिया है। एसेम्बली में खड़े होने का क्रम, मिड-डे मील में पंगत लगाने का क्रम बदला है। कई स्कूलों ने सुनिश्चित किया कि अब बच्चे लाइन लगाकर खाना नहीं लेंगे। बच्चे बैठेंगे और रसोइए उनके पास पहुँचकर उनकी थाली में खाना सर्व करेंगे ताकि वो गरिमापूर्ण भी हों और नुकसान भी कम हो। इस तरह, दोनों तरीक़े की उसमें बातें दिखाई देंगी। ऐसे क़दम हैं जो हर एक स्कूल उठा सकता है। फिर कहूँगा कि हर जगह संवाद बहुत ज़रूरी है। मैं जिस स्केल से सामाजिक विविधता को मापने की कोशिश कर रहा हूँ वह मेरी बनाई हुई स्केल है। सामाजिक वास्तविकता उस स्केल से कहीं ज़्यादा फ़र्क़ हो सकती है तो मैं हर किसी को उस स्केल से माप नहीं सकता।

रजनी : स्कूल में क्या हो रहा है, क्या किया जा सकता है, इसपर आप में से कोई कुछ जोड़ना चाहे?

महमूद : मयंक ने जो कहा, उससे सहमति है। प्रार्थना सभा, मिड-डे मील, कक्षा प्रकियाओं को बदला जा सकता है। जो और होना चाहिए वो ये कि हम रोज़ होने वाली ऐसी घटनाओं को क्या कक्षा विमर्श का हिस्सा बना सकते हैं। हॉस्पिटल में यदि किसी को बेड की ज़रूरत पड़ती है तो वो पूछता है क्या कि आपकी जाति क्या है, धर्म क्या है? ब्लड बैंक से ब्लड लेते हुए क्या कोई ऐसी बात करता है या ट्रेन खचाखच भरी हुई है या बस खचाखच भरी है और एक सीट ख़ाली नज़र आती है, आप दौड़कर जाते हैं। क्या आप पूछते हैं कि कौन बैठा है वहाँ पर? अगर वहाँ नहीं पूछते हैं तो बाक़ी ज़िन्दगी में ये बातें रोज़ क्यों करते हैं? कुछ इस तरीक़े की चीज़ों, लगातार इस तरीक़े के संवाद से गुज़ारेंगे तो शायद उन चीज़ों में थोड़ा परिवर्तन की तरफ़ हम बढ़ पाएँगे।

रजनी : मूल्यों के विकास के लिए शिक्षक स्कूल में किस-किस तरह की कोशिशें कर रहे हैं?

अब्दुल : आज एक स्वीकार्यता समाज में दिखती है। अधिकांश लोग इस सोच के साथ हैं कि महिलाओं के प्रति हिंसा और दूसरे धर्म के प्रति घृणा न हो। शिक्षक भी सामग्री के चुनाव को लेकर, सवालों को लेकर सचेत रहते हैं कि कैसे सवाल कक्षा में पूछे जा सकते हैं। जैसे– शिक्षक



चित्र 12 : हीरा धुर्वे

जानते हैं कि "आज तुमने खाने में क्या खाया" यह पूछने से चर्चा हो सकती है लेकिन साथ ही इसको संवेदनशीलता से डील करना होगा। मैं ऐसे कई शिक्षकों को जानता हूँ, जो ऐसे मुद्दों पर कक्षा में बातचीत करना जानते हैं। एक कक्षा में एक बच्चे ने बहुत स्टाइल से बाल बनाए थे। स्कूल के कुछ सदस्यों का मानना था कि ये तो अजीब हैं। उन्होंने कहा कि नहीं, बाल रखना इस बच्चे की अपनी एक च्वॉइस है लेकिन साथ ही हमें स्कूल के नियमों को भी ध्यान रखना है। इस मुद्दे पर कक्षा में चर्चा हुई। ज़रूरी है कि कक्षाओं में ऐसी चर्चाओं के लिए भी जगह हो। कक्षा में आने वाला बच्चा किस समुदाय से है उसके साथ जुड़ना, बात करना ज़रूरी है।

मृत्युंजय : कई बार लगता है कि कई सामाजिक, धार्मिक या नैतिक मूल्य हमारे संवैधानिक मूल्यों का आधार होते हैं और कई बार नहीं भी होते हैं। अगर कक्षा में, स्कूल में, पाठशाला के भीतर ऐसी कोई समस्या आए जो मान लीजिए नैतिक मूल्य है, सामाजिक मूल्य भी है, लेकिन संवैधानिक मूल्यों से कहीं वे टकरा सकते हैं या उनको सपोर्ट कर सकते हैं तो पढ़ाते हुए या कक्षा में जाते हुए इस अलगाव से कैसे जूझते हैं?


चित्र 13

अमन : मैं दो-तीन चीज़ों को समेटने की कोशिश करूँगा, साथ ही कुछ और भी नज़रिए सामने रखूँगा। शुरू में सवाल उठ रहा था कि समाज में लोग कुछ और कर रहे हैं, कुछ और बोल रहे हैं तो इसका मतलब क्या है? यह नज़रिया सामने रखा था कि असल में स्कूल का काम ही यही है कि जो बातें लोग घरों में नहीं सीख पा रहे हैं वो स्कूल सिखाएगा। अगर बच्चे घर से ही वो मूल्य और मान्यताएँ सीख रहे हैं तो स्कूल की क्या ज़रूरत है? स्कूल का काम, स्कूल का धर्म यही है कि वो उन बातों को सिखाएगा जो बच्चे घर पर नहीं सीख सकते।

अगला सवाल ये उठता है कि स्कूल ये बातें क्यों सिखाए? इसका आधार भी चर्चा में निकलकर आया कि असल में ये समाज बदल रहा है। कई बातें तो बहुत पहले से ही कवियों, ज्ञानी लोगों ने कही हैं कि सब इंसान एक बराबर हैं, लेकिन लोगों ने उसको व्यवहार में नहीं लिया। न व्यवहार ऐसे किया, न संविधान ऐसे बनाए, न राजाओं ने ऐसी प्रथा चलाई। लेकिन जब लोग शुरू से यह कह रहे हैं तो फिर अब क्यों संविधान ऐसे बने? हम सब जानते हैं कि समाज बदल रहा है, बहुत ज़बरदस्त तरीक़े से बदल रहा है। अब ये बात बहुत सारे लोगों को फ़ायदेमन्द लगती है कि जब हम असल में एक जैसे ही हैं तो हम एक साथ काम कर सकते हैं, हम एक साथ एक देश बना सकते हैं। हमको, यदि हम सब एक जैसे हैं, एक दूसरे का सम्मान भी करना पड़ेगा और एक दूसरे को समान भी मानना होगा। इन मूल्यों का आधार ये बदलता हुआ समाज है। इस बदलते हुए समाज में कुछ हिस्से बदल रहे हैं, कुछ नहीं। क्या सारा समाज इस तरह से बदल जाएगा? पता नहीं! लेकिन एक बदलते हुए परिवेश के कारण ये मूल्यों का टकराव हो रहा है। हमारे साथियों ने भी रेखांकित किया कि ये कई तरह के मूल्य हैं और आपस में टकरा रहे हैं। क्या ये विरोधाभास कभी भी हल होगा? शायद कभी भी नहीं! और विरोधाभास अच्छा है क्योंकि इसमें हम सोचते हैं। सवाल ये भी था कि क्या समाज इन मूल्यों के विकसित होने में अड़चनें डालता है, या वह स्कूल को इस तरह के मूल्यों के विकसित होने में सपोर्ट करता है? स्कूल दोनों

करता है। समाज का एक हिस्सा अड़चनें डाल रहा है। एक हिस्सा कह रहा है कि अरे बदलो, नहीं बदलोगे तो देश कैसे चलेगा! अगर हम यही सोचते रहेंगे कि लड़कियों को फ़लाँ काम ही करना है और लड़कों को ये ही काम करना है तो कुछ भी विकासशील कामों के लिए हमने आधी आबादी छोड़ दी। इसी तरह, ये समुदाय यह काम करेगा, उस समुदाय को हम नौकरी नहीं देंगे, इस सबमें देश का नुक़सान ही है। ये अलग-अलग हिस्से हैं देश के, जिससे जूझ रहे हैं।

कई बार इन मूल्यों को लेकर भ्रम होता है, ग़लतियाँ भी होती हैं। लेकिन ऐसा समाज बनाने की कोशिश संविधान ने की है, जो शायद ज़्यादा अच्छे से काम करेगा, ज़्यादा लोगों को ख़ुशी और मौक़ा देगा और इसी में लोगों की ज़्यादा ख़ुशी होगी। ये भी एक सवाल उठा था कि मूल्यों को देखें कैसे? देखने का एक तरीक़ा तो ये है कि बदलते हुए समाज के ये जो नए हिस्से बन रहे हैं ये उनके मूल्य हैं। मैं भौतिकी से उदाहरण देता हूँ। भौतिकी में हम जानते हैं कि दुनिया ठोस है, हिल रही है। फिर हम बल, ऊर्जा की अवधारणा की बात करते हैं। ये इस जटिल दुनिया को समझने में मदद करते हैं। यही काम इन मूल्यों का है। हमारा व्यवहार कुछ और है, लेकिन जब हम इन मूल्यों की नज़र से इस व्यवहार को देखते हैं तो पाते हैं कि क्या फ़लाँ व्यवहार सही है, फ़ायदेमन्द है। कई बार इसका जवाब आसान नहीं है। मेरे आसपास जातीय समाज है और मैं जातीय समाज की अवधारणाओं के साथ चलता रहूँ तो कोई मेरी पिटाई नहीं करेगा, लेकिन जातीय समाज के विरुद्ध जाने पर लोग मेरे साथ लड़ेंगे। मगर ये वही देश है जिसमें लोग फ़ैक्टरी, दफ़्तर, दवाख़ाने में एक साथ काम करते हैं। वहाँ जातिवाद नहीं चल सकता। सबको एक साथ एक ही मशीन को हाथ लगाकर काम करना है। मूल्यों पर बातें करना इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि ये हमारे समाज की गहराइयों को सामने लाकर इनपर सोचने व उनको समझने का मौक़ा देती हैं। यह भी कि सिर्फ़ परिभाषाएँ बच्चों को सिखाने से गाड़ी बहुत आगे नहीं जाती। इसका ये अर्थ नहीं है कि परिभाषाएँ नहीं सिखाएँ, ज़रूर सिखाएँ लेकिन वो अपने-आप में पर्याप्त नहीं हैं। कई तरह के उदाहरण अपने रोज़मर्रा के व्यवहार / कामों में लाने होंगे। इनके पीछे के शिक्षणशास्त्रीय उसूलों को भी समझने की कोशिश करनी होगी। दो-तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं। लोगों / बच्चों को महसूस होना चाहिए कि इस तरह के मूल्यों से कुछ फ़ायदा है। अगर ये लगता है कि इस तरह के मूल्यों को अपनाकर मेरा तो नुक़सान है, तो लोग क्यों अपनाएँ! स्कूल में इस तरह परिस्थितियाँ सामने लाने की ज़रूरत है, जिनसे लगे कि समानता के मूल्य से फ़ायदा है। और सिर्फ़ यह कहने से, कि फ़ायदा है, काम नहीं होगा। मुझको बार-बार दर्शाना पड़ेगा, तो परिस्थितियाँ बनानी होंगी तब सीख सकते हैं। आपने ऐसे उदाहरण दिए हैं। यह भी कि इस बारे में न सिर्फ़ सोचना (जो संज्ञानात्मक है) बल्कि एक दृष्टिकोण (attitude) भी विकसित करना होगा। मूल्य सिर्फ़ सोच ही नहीं हैं (संज्ञानात्मक) ये भावनाएँ, दृष्टिकोण,



चित्र 14

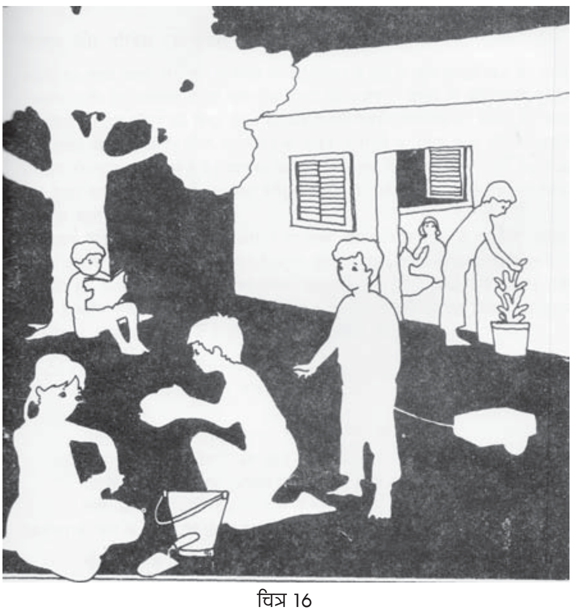
एहसास, व्यवहार सब हैं। अतः मूल्य की महज़ अवधारणा को समझना काफ़ी नहीं है, ये दिल से महसूस होना चाहिए। जो भी गतिविधियाँ बनानी हैं वो ऐसी हों कि उनसे ऐसे दृष्टिकोण और भावनाएँ बनें जो सीखने वालों को जातिवादी, लिंगभेदी समाज की ख़ामियों को पहचानने में मददगार हो। अवधारणा की भूमिका, इतिहास की भूमिका भी है, इस समझ की भी जरूरत है कि विभिन्न अवधारणाओं के बीच क्या जुड़ाव है? जैसे– विविधता और भेदभाव। साथ-साथ व्यवहार को बदलने के लिए हमारे जो पैटर्न हैं उनपर काम करने की आवश्यकता है। यह एक बड़ी चुनौती है। लेकिन मैं यह भी कहूँगा कि जब शिक्षक किसी चीज़ को एक बार समझ लेते हैं तो वो ज़्यादा अच्छे से उसके एप्लीकेशन बना लेते हैं। उनके अपने परिवेश में क्या प्रभावी होगा, नहीं होगा, उन्हें अच्छे से मालूम होता है। लेकिन क्या हम मदद कर सकते हैं ताकि उनके पास दस उदाहरण आ जाएँ जिनमें से वो चयन कर सकें। उदाहरणों के पीछे तर्क क्या है वो उनको और ज़्यादा अच्छे से पकड़ में आ जाए, हम इस दिशा में शायद काम करते रहेंगे तो कुछ होगा इसमें।


भारत का संविधान

हम, भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को:
सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक न्याय; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, और उपासना की स्वतंत्रता;
प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए
दृढसंकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारिख २६ नवंबर, १९४९ ई (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित, और आत्मार्पित करते हैं।

चित्र 15

मृत्युंजय : इस समय राजनैतिक तार्किकता बढ़ रही है। इसमें कई बार हम लोग निरुत्तर हो जाते हैं और हमारे पास जो तर्क है तथ्यात्मक भी है और तार्किक भी, उसके बावजूद भी सामने वाला सुनना ही नहीं चाहता, समझना ही नहीं चाहता तो फिर हम क्या करें? ऐसी स्थिति में मौन रहना भी ठीक नहीं लगता और अपनी बात भी रखते हुए हमें लगता है कि हमारी बात समझी नहीं जा रही है। अन्तत: नुक़सान बच्चों का होता है और फिर वो बच्चे भी उसी धारा में चलने लगते हैं। इसपर आप ज़रूर बताएँ।


चित्र 16

अमन : बहुत बड़ा सवाल है ये। यह मसला दुनिया के सभी देशों में है कि कई बार समझदार लोग भी सुनने को तैयार नहीं होते। समाज मनोविज्ञान में काम करने वाले इसका यह तर्क देते हैं कि ऐसे लोग यह सोचना शुरू कर देते हैं कि हम दूसरे गुट के लोग हैं। और उन्हें जो भी कहा जा रहा है असल में उनको या उनके दोस्तों को

बेइज़्ज़त करने के लिए कह रहे हैं। जैसे ही वो ये भाँपते हैं, आप कुछ भी कहेंगे वो नहीं सुनेंगे। इसका इलाज क्या है? इसके इलाज दो तरह के हैं। पहला तरीक़ा है, कही जाने वाली बात को मुद्दे पर फ़ोकस करना। ऐसा पढ़ाना सही है कि नहीं? क्या सरकारी स्कूलों का सुधारना, उनको ज़्यादा पैसा देना ज़रूरी है? दूसरा तरीक़ा है अपनेपन के दायरे को बड़ा करना। उनको लगे, कि मैं भी उन्हीं के गुट का हूँ तब सुन सकते हैं तो इसके लिए भी मुझे बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। अब्दुल ने भी उसका उदाहरण दिया था। जब मैं अलग-अलग समुदाय, अलग-अलग जाति, धर्म और जेंडर के बच्चों को एक साथ बिठाता हूँ और समानता व असमानता की परिस्थितियों में बिठाता हूँ तब समस्या आती है। लेकिन जब साथ में खेल खेलते हैं या कोई गतिविधि करते हैं जहाँ आपस में एक दूसरे को उनकी ज़रूरत भी पड़ती है तब वो आपस में दोस्त बनना शुरू होते हैं और तब उनका अपनेपन का दायरा बढ़ने लगता है। ऐसे ही कुछ चीज़ें करूँ जिनसे लगे कि हम लोग एक ही साथ हैं। फिर बात करने पर वे सुनते हैं। लेकिन तब भी मैं उनके सम्माननीय लोगों पर सीधा हमला करके बात करूँगा तो वे कभी नहीं सुनेंगे। बहुत बाद में जब हम लोग एक साथ काम कर रहे हों तब यह बात की जा सकती है कि क्या वाक़ई वह व्यक्ति सम्माननीय है और उसपर आया जा सकता है।



चित्र 17 : हीरा धुर्वे

अब्दुल : कई बार हम संवैधानिक मूल्यों और मानवीय या धार्मिक मूल्यों को अलग करके देखते हैं। लेकिन मुझे लगता है कि इनमें बहुत-सी समानताएँ हैं। जैसे परोपकार की बात है, यह संवैधानिक मूल्य भी है और मानवीय व धार्मिक मूल्य भी। मुझे लगता है, बच्चों के साथ संवाद में इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए। हमने संवैधानिक मूल्यों को धार्मिक और सामाजिक मूल्यों से हमेशा अलग करके देखने की कोशिश की, इसकी वजह से भी शायद हम कक्षा की की तैयारी उस तरह से नहीं कर पाते शायद, मैं इस द्वन्द्व में कई बार रहता हूँ।

आप सभी का इस संवाद में भाग लेने के लिए शुक्रिया।

1. चित्र 2 एनसीईआरटी, नई दिल्ली की पुस्तक *आओ खेल-खेलें* से साभार।
2. चित्र 5, 10 एवं 14 नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली की पुस्तक *बच्चों के लिए खेल क्रियाएँ* से साभार।
3. चित्र 6, 9 व 13 इंटरनेट से साभार।
4. चित्र 8 विकास संवाद प्रकाशन, भोपाल की पुस्तक *संविधान और हम* से साभार।



पाठशाला
भीतर और बाहर

पाठकों के विचार

जेण्डर और बच्चे, विजय प्रकाश जैन, अंक 10



शिक्षा के भेदभावपूर्ण होने के कारण बच्चों में प्राथमिक स्तर से ही जेण्डर भेदभाव की मानसिकता निर्मित हो जाती है जिसके जीवनपर्यन्त बने रहने की सम्भावना रहती है। यही मानसिकता कहीं-न-कहीं व्यक्ति के विकास में रोड़ा बनती है। शिक्षण प्रणाली में इस मुद्दे पर, विशेषकर प्रशिक्षकों के माध्यम से, शिक्षकों को प्रशिक्षित भी किया जा रहा है। एक अच्छे शिक्षक को अपनी शिक्षण शैली में इसे विशेष महत्त्व देकर बातचीत एवं तर्कसंगत विचारों द्वारा जेण्डर भेदभाव की मानसिकता को कम करने में अपना योगदान देना चाहिए ताकि एक अच्छे समाज का निर्माण हो सके।

श्रीमती उमा मालवी, माध्यमिक शिक्षक, खामखेड़ा, ज़िला भोपाल, मध्य प्रदेश

शुरुआती कक्षाओं में कहानी शिक्षण, संध्या पाण्डेय, अंक 13



यह अंक शीतकालीन आवासीय कैम्प, विदिशा में पढ़ने को मिला। अंक में संध्या पाण्डेय के आलेख को विस्तार से पढ़ा। मेरा मानना है कि कहानी अपने विचारों को सरलता और रोचकता से प्रस्तुत करती है। शुरुआती कक्षाओं में कहानी द्वारा शिक्षण करना आसान लगता है, पर इसको इतना भी आसान नहीं कहा जा सकता क्योंकि हम कहानी का सार बच्चे तक पहुँचा भी पा रहे हैं या नहीं, यह जान पाना ज़रा मुश्किल रहता है। अपेक्षा यह है कि कहानी के द्वारा शिक्षण में बच्चे कहानी सुनते-सुनते कही गई बातों का अपने दिमाग़ में चित्रांकन कर पाएँ। कहानी में उपयोग की जाने वाली भाषा व शब्द, सरल और बच्चों के परिवेश से जुड़े हों।

आभा जैन, प्राथमिक विद्यालय, सिलेरा, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

कक्षा संचालन : चुनौतियाँ और चुनाव, मीनू पालीवाल, अंक 14



यह लेख पढ़ा, समझ में आया कि वाक़ई सभी शिक्षक इन चुनौतियों से गुज़रकर ही अनुभवी शिक्षक बनते हैं। यह लेखिका का शिक्षा के क्षेत्र में शुरुआती दौर का अनुभव मालूम पड़ता है। किसी शिक्षक ने भले ही विषय के रूप में बाल मनोविज्ञान न पढ़ा हो, पर बच्चों को पढ़ते-पढ़ते वह बाल मनोवैज्ञानिक बन ही जाता है। लेखिका ने कक्षा-कक्ष का अनुभव साझा किया है। बच्चों को चुप कराने पर कक्षा 2 की लड़की ने 'तू चुप!' बोलकर शिक्षिका

को ही चुप होने पर मजबूर कर दिया। भले ही शिक्षिका उस समय कमरे से बाहर चली गईं, लेकिन बाद में शान्त मन से उस विषय पर सोचने से शिक्षिका के मन में कई प्रश्न उभरे। मसलन, छात्रा के 'तू चुप!' बोलने के बाद कक्षा में सन्नाटा क्यों छाया? क्या बच्चों को लगा कि अब इस बच्ची को मार पड़ेगी? या उन्हें भी उसका इस तरह बात करना अच्छा नहीं लगा।

"क्या मैंने सचमुच बच्चों से बहुत ख़राब तरीक़े से शान्त हो जाने को कहा? क्या वह बच्ची मुझे अपने दोस्त जैसा ही समझ रही थी? या फिर उसके घर में इसी तरह से बात होती है?" वास्तव में ऐसी परिस्थितियाँ और प्रश्न ही किसी व्यक्ति को एक सोचने वाले शिक्षक में परिवर्तित करते हैं, और यहीं से आरम्भ होती है शिक्षक की बच्चे के मनोविज्ञान को समझने की यात्रा।

एक समय ऐसा आता है जब इससे भी बड़ी या बड़ों की भाषा में 'अशिष्ट' कही जाने वाली बात बच्चा कह देता है, लेकिन तब शिक्षक न तो स्तब्ध होता है न ही उसे कक्षा से बाहर जाना पड़ता है। इसके विपरीत, उसके चेहरे पर मुस्कान छा जाती है और मिल जाता है उसे कक्षा में बातचीत का ज़रिया। तब यह चुनौती, चुनौती नहीं लगती, बल्कि यह बच्चे के दिल तक पहुँचने का एक अवसर होता है। यह बात मैं अपने ढाई दशक के अनुभव के बाद कह पा रही हूँ, क्योंकि मैं भी ऐसे कई अनुभवों से गुज़र चुकी हूँ।

अनीता ध्यानी, राजकीय प्राथमिक विद्यालय देवराना, विशेष क्षेत्र यमकेश्वर, जनपद पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड



यह लेख पढ़ने में बेहद प्रभावी व जीवन्त लगता है। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूँ कि इस लेख को पढ़ते वक़्त मुझे ख़ुद का वो दौर याद आ गया, जब मैं शिक्षा के क्षेत्र में शुरुआती क़दम ले रहा था। उस दौर में बच्चों के साथ कार्य करते समय लेख में उल्लिखित चुनौतियों से प्रतिदिन रूबरू होता था। शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह लेख हमेशा उतना ही जीवन्त व प्रभावी लगेगा जितना मुझे लगा। हाँ, यह ज़रूर है कि शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े उस व्यक्ति ने बच्चों के साथ कक्षा शिक्षण किया हो, क्योंकि जिस व्यक्ति ने बच्चों के साथ कक्षा शिक्षण नहीं किया, वह लेख में कही गई बातों, चुनौतियों, तथ्यों व प्रयासों के साथ तादात्म्य ही नहीं बिठा पाएगा। इसलिए मुझे लगता है कि इस लेख को पढ़ने से ज़्यादा महसूस करने की ज़रूरत है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि प्राथमिक स्तर पर बच्चों के साथ कार्य करना आसान नहीं है। इसे हमें उस शिक्षक की दृष्टि से समझना चाहिए जो प्रतिदिन बच्चों के साथ तमाम प्रकार की चुनौतियों का सामना करता है। ऐसा नहीं है कि सभी शिक्षक बच्चों के साथ कार्य करने में आ रही चुनौतियों से निपटने के लिए दण्ड का प्रयोग करते हैं, लेकिन वर्तमान समय में ऐसे शिक्षक भी मौजूद हैं जो मानते हैं कि बच्चों को सिखाने के लिए दण्ड व दबाव की आवश्यकता होती है। लेख में बच्चों के साथ कार्य करने में आने वाली चुनौतियों, अनुभवों, उदाहरणों व इनसे निपटने के तरीकों को काफ़ी प्रभावी ढंग से उभारा गया है। यह लेख उनके लिए ज़्यादा महत्त्व का है जो बच्चों के साथ कार्य करने की शुरुआत कर रहे हैं साथ ही उन शिक्षकों के लिए भी जो अभी भी पढ़ने-पढ़ाने की पुरानी धारणाओं से ग्रसित हैं। लेख बच्चों के साथ बेहतर सामंजस्य व रिश्ता बनाकर कार्य करने की नई दिशा व नज़रिया प्रदान करता है, और चुनौतियों से निपटने के लिए क्या चुनना है, इसकी एक समझ भी देता है।

अभिषेक शुक्ला, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जनपद पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

इस लेख में लेखिका ने कक्षा संचालन के अपने कक्षा-कक्षीय अनुभवों को बख़ूबी दर्ज किया है। कक्षा संचालन की चुनौतियाँ हर शिक्षक के सम्मुख आती हैं। यदि शिक्षक सकारात्मक तरीक़े अपनाकर कक्षा को व्यवस्थित कर पाते हैं तो धीरे-धीरे बच्चे भी सहयोग करने लगते हैं। जैसा कि मीनूजी ने बताया कि 1 से 5 तक गिनती गिनने से बच्चे बैठ जाते थे। अनुशासन के नाम पर बच्चों को डराकर चुप करा देना सही नहीं है। लेखिका ने अपने लेख में यह भी ज़िक्र किया है कि बच्चों के सीखने का वातावरण दण्ड पर आधारित नहीं होना चाहिए। कुल मिलाकर, कक्षा संचालन को बेहतर बनाने में लेखिका द्वारा अपनाए गए तरीक़े अनुकरणीय हैं। इन तरीक़ों का प्रयोग शिक्षकों द्वारा अपनी कक्षाओं में किया जा सकता है।

मोनिका भण्डारी, राजकीय कन्या उच्च प्राथमिक विद्यालय बलड़ोगी, चीण्याली सौंड, उत्तरकाशी, उत्तराखंड

आनुभविक अधिगम के लिए शिक्षकों के प्रयास, ऋषभ कुमार मिश्र, अंक 14



स्कूल भ्रमण के दौरान किसी स्कूल में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का अवलोकन करना और उसे आलेख का आकार देना एक अच्छा और प्रभावी प्रयास है। आलेख में जिस स्कूल का लेखक ने ज़िक्र किया है, उसके बारे में लेख में यह लाइन मुख्य भूमिका निभा रही है : "इस विश्लेषण का केन्द्रीय प्रश्न है कि इस विद्यालय के शिक्षक, विद्यार्थियों के दैनिक अनुभवों और अवलोकनों का कक्षा में किस तरह से उपयोग करते हैं। कक्षाओं के दैनिक चक्र में गृहकार्य की जाँच, कक्षा चर्चा और पुनः गृहकार्य देने का पैटर्न रहता है।" यह लेख स्कूल के इर्द-गिर्द संचालित हो रही कक्षाओं में हो रही शिक्षण प्रक्रिया की झलक दर्शाता है। शिक्षकों ने कक्षा में क्या ठीक किया और क्या ठीक हो सकता था, यानी शिक्षण प्रक्रिया की सकारात्मकता और नएपन के साथ-साथ आलोचनात्मक टिप्पणी भी लेख में दी गई है। जिन शिक्षक साथियों का भ्रमण, इस स्कूल में न भी हो पाए, वे भी यहाँ की शिक्षण व्यवस्था, प्रक्रिया, खोजबीन और पाठ्यपुस्तक के बाहरी जीवन से जुड़ाव को समझ सकते हैं, वह भी बिना परिभाषा रटाए या बताए।

पाठशाला भीतर और बाहर में प्रकाशित 'कक्षा अनुभव' एक प्रयोगशाला का काम करते हैं। शिक्षक और बच्चों के बीच सीखना-सिखाना, सामग्री, पाठ योजना, शिक्षण प्रक्रिया, विश्लेषण, तर्क और निष्कर्ष, यह सब एक विस्तृत नज़रिया बनाते हैं। यह नज़रिया एक सार्थक और बहुआयामी दिशा प्रदान करता है। ये लेख उत्साहपूर्वक और बिना डर के बेहतर सीखने और सीख सकने पर अधिक बल देते हैं। पत्रिका के माध्यम से हमारे सामने शिक्षा के नए-नए मुद्दे, उदाहरण, आदि आते हैं। हम जान पाते हैं कि विभिन्न प्रकार की चुनौतियों के बाद भी शिक्षक और बच्चे आपसी तालमेल से सीख रहे हैं। शिक्षा में कुछ बेहतर करने की ललक एवं तरह-तरह के प्रयासों को एक जगह करके हम तक पहुँचाने के लिए पाठशाला टीम का आभार।

माया मौर्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल, मध्य प्रदेश

विज्ञान, वैज्ञानिक चिन्तन और वैज्ञानिक मानसिकता, हृदयकान्त दीवान, अंक 14

पत्रिका का हर अंक पठनीय होता है। कई बार किसी अन्य विषय पर आधारित होने के चलते किसी अंक को पढ़ने का उत्साह ज़रूर कम हो जाता है, लेकिन एक बार पढ़ना शुरू करो तो लगता है कि किसी शिक्षक के लिए कोई भी विषय असम्बद्ध कैसे हो सकता है! हर बार कुछ नया सीखने करने की प्रेरणा देती है ये पत्रिका। पत्रिका के ताज़ातरीन अंक में प्रस्तुत हृदयकान्त दीवान का लेख, पिछले अंक के गौहर रज़ा के वक्तव्य को आगे बढ़ाता है। उनका लेख वर्तमान सामाजिक

परिदृश्य में वैज्ञानिक चेतना की महत्ता बयान करता है। एक महत्त्वपूर्ण बात बार-बार दोहराई गई है कि प्रश्न पूछना बहुत ज़रूरी है। प्रश्न भले ही अनुत्तरित रह जाएँ, भले इनसे हम असहज महसूस करें, भले ही ये हमारी धार्मिक-सामाजिक आस्थाओं पर प्रश्न चिह्न लगाएँ, प्रश्न पूछने की प्रेरणा रुकनी नहीं चाहिए। एक बढ़ते अलोकतांत्रिक माहौल में जहाँ प्रश्न पूछना किसी अपराध-सा महसूस करवाया जाता है, जहाँ सच कहने पर पहरे लगाए जाते हों, जहाँ प्रश्न खड़े करना और उनके समाधान के प्रयास करना असम्भव-सा लगने लगा है और एक बड़ा तबक़ा अतार्किक होता जा रहा है, ऐसे में यह लेख आशा की एक किरण की तरह शिक्षा और शिक्षालयों में इस बात की पैरवी करता है कि केवल यहीं और यहीं ये मानवीय स्वाभाविक जिज्ञासा शान्त हो सकती है और इसे प्रोत्साहित किया जा सकता है। उनका कहना है कि तार्किक समाज ही विकासोन्मुख हो सकता है, और प्रश्न होंगे तो ही आने वाला समाज समाधान की ओर अग्रसर होगा।

सुन्दर 'शिक्षार्थी', सहायक अध्यापक विज्ञान, राइका कोटधार गमरी, ज़िला उत्तरकाशी, उत्तराखंड

पूर्व–प्राथमिक कक्षाओं में थीम–आधारित शिक्षण, पारुल बत्रा दुग्गल, अंक 14



इस लेख में पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं में थीम-आधारित शिक्षण के अन्तर्गत जो प्रयास शिक्षण हेतु सुझाए गए हैं, वे काफ़ी सराहनीय हैं। आनुभविक अधिगम के अन्तर्गत कई प्राइवेट स्कूल विभिन्न विषयों को एक साथ थीम के माध्यम से पढ़ा रहे हैं। यदि हमारे बच्चे पूर्व-प्राथमिक स्तर से थीम पर कार्य करेंगे तो बड़ी कक्षाओं में भी थीम और आनुभविक अधिगम की समझ के साथ पढ़ना-पढ़ाना सहज होगा।

वास्तविक जीवन में हम किसी एक विषय पर कार्य नहीं करते हैं। कोई भी कार्य अन्य विषयों को मिलाकर ही पूर्ण हो पाता है। उसमें अलग-अलग विषय और उनकी वास्तविक समझ सम्बन्धी ज्ञान और कौशल का उपयोग होता है।

शिक्षण हेतु किसी थीम का उपयोग करने की स्थिति में बच्चों को, एक साथ कार्य करने, उस विषय के बारे में सोचने, उसमें किन-किन वस्तुओं का उपयोग करना है और उनको कहाँ से प्राप्त किया जा सकता है, आदि के बारे में जानने-समझने के अवसर प्राप्त होते हैं।

अच्छे लेखों के लिए पाठशाला की पूरी टीम को बधाई।

ताज फ़राह ख़ान, शिक्षक, शासकीय माध्यमिक शाला शहीद नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश

यह लेख काफ़ी रोचक लगा। 3 से 6 वय वर्ग के बच्चों के साथ कक्षा 1-2 में 'थीम-आधारित शिक्षण' किया जाना चाहिए। इससे बच्चों को बोलने, सुनने और सुनकर बोलने के अधिक अवसर मिलेंगे। शिक्षण रोचक होने के कारण बच्चों में सीखने की क्षमता का विकास होगा। मुझे यह लेख अच्छा लगा और मैं नए शिक्षण सत्र से अपने विद्यालय में थीम-आधारित शिक्षण पद्धति से पढ़ाने का प्रयास करूँगी।

ममता वर्मा, जीपीएस, बिलासपुर, भीमताल, ज़िला नैनीताल, उत्तराखंड

दो दुनियाओं का अबूझ संवाद, अमित कोहली, अंक 14

एनसीईआरटी की प्राथमिक कक्षाओं की हिन्दी की पाठ्यपुस्तकों को देखते हुए अकसर मेरे मन में जो सवाल उठते थे, उन्हें इस आलेख में रेखांकित किया गया है। पहली से पाँचवीं तक की

हिन्दी की पाठ्यपुस्तक *रिमझिम* में कई तस्वीरें और चित्रकथाएँ ऐसी मालूम पड़ती हैं जो अब ग्रामीण परिवेश में भी बमुश्किल ही देखने को मिलती हैं। ऐसा लगता है कि ग्रामीण परिवेश के नाम पर एक स्टीरियोटाइप छवि प्रस्तुत की जा रही है। लेखक आलेख में इसपर विस्तार से बात करते नज़र आते हैं। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* बच्चों के स्कूली जीवन को सन्दर्भों व परिवेश से जोड़ने की अनुशंसा करती है, लेकिन ऐसा लगता है कि पाठ्यपुस्तकों में इस अनुशंसा को बहुत यांत्रिक तौर पर अपनाने की कोशिश की गई है। आलेख में कहा गया है, "ग्रामीण जीवन का जो चित्रण और वर्णन पाठ्यपुस्तकों में होता है, वह नितान्त काल्पनिक और एकरूपता लिए होता है।" इस सन्दर्भ में देखें तो *एनसीएफ़* की अनुशंसाओं का पालन पाठ्यपुस्तक निर्माण से जुड़े लोगों के लिए एक बोझिल ज़िम्मेदारी-सा लगता है जिसका वे येन केन प्रकारेण निर्वहन करते हैं।

तारेंद्र किशोर, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, हरिद्वार, उत्तराखंड



इस लेख में अहम विषय पर तथ्यों के साथ बात की गई है। विमर्श के केन्द्र में ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय होने ही चाहिए अन्यथा हम सांस्कृतिक विविधता का फूटा ढोल बजाते रहेंगे।

यह लेख विमर्श के रूप में विचारों को एक दिशा देता हुआ दिखा, जहाँ कोरा विमर्श नहीं है, अपितु तथ्य और उदाहरण भी हैं। सिर्फ़ महाराष्ट्र ही नहीं, मध्य प्रदेश की किताबों में एक वर्ग या संस्कृति का ग़ायब होना दिखता है।

शायद सन्तुलन की अवस्था रहनी चाहिए, ताकि हरेक बच्चे को अपनी किताबों में उनका परिवेश और तस्वीर देखने को मिल पाए। साथ ही वे कोसों मील दूर उन्हीं के हमउम्र साथियों की संस्कृति और परिवेश से परिचित हो सकें, उनकी कल्पना कर सकें।

एक अच्छे लेख हेतु बधाई।

विशाल पालीवाल, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला दमोह, मध्य प्रदेश

यह अंक स्कूल के भीतर और बाहर से जुड़े विविध मुद्दों पर विचार-विमर्श करने और शिक्षा के कक्षा-कक्षीय व वृहद उद्देश्यों को प्राप्त करने के कई व्यवहारिक तरीक़ों और प्रक्रियाओं पर सटीक संवाद स्थापित करता है। अमित कोहली का लेख पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की प्रक्रिया और लेखकों की सांस्कृतिक-स्थानीय विविधता के प्रति उपेक्षा भाव को दर्शाता है। आलेख पुस्तक निर्माण की प्रक्रिया के लोकतांत्रीकरण का पक्ष लेता है, ताकि ग्रामीण और जनजातीय वर्ग के बालक भी पाठ्यपुस्तकों में अपने अस्तित्व और मौजूदगी को अनुभव कर सकें।

इसी अंक में प्रकाशित आलेख 'पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं में थीम-आधारित शिक्षण' में लेखिका पारुल बत्रा दुग्गल औपचारिक शिक्षण की प्रारम्भिक अवस्था में ध्यान रखने वाली सावधानियों और तैयारियों की उपयोगी जानकारी देती हैं। इसी प्रकार, मीनू पालीवाल का लेख, 'कक्षा संचालन : चुनौतियाँ और चुनाव', बच्चों के साथ कार्य को व्यवस्थित ढंग से और उनके सहयोग से कैसे किया जाए, इस बारे में बताता है। अलका तिवारी के आलेख 'खुले प्रश्नों के खुले जवाब' में उन शिक्षण पद्धतियों की चर्चा है जो बालकों को चिन्तन करने, अनुमान लगाने और तर्क करने के मौक़े देती हैं।

कुल मिलाकर, यह अंक शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए स्कूल के भीतर और बाहर, दोनों क्षेत्रों में कार्य करने और अन्तर्सम्बन्ध बनाने के तरीक़ों की जो जानकारियाँ साझा करता है, वह अत्यन्त व्यवहारिक एवं उपयोगी होने के साथ ही अनुभवपरक हैं।

अर्चना अरोड़ा, अध्यापिका, राज. उ. प्रा. वि., ग्वार ब्राह्मणान्, सांगानेर, ज़िला जयपुर, राजस्थान

'पोंगल' के बहाने असमानता और भेदभाव की चर्चा, माया मौर्य, अंक 14

अंक 14 में माया मौर्य और पारुल बत्रा दुग्गल के लेख बड़ी बारीक़ी और विस्तार से लिखे गए हैं।

आलेख पढ़ने से पहले, पोंगल को मैं एक भरे-पूरे त्योहार के रूप में देखता था। इस आलेख ने मुझे पोंगल को देखने का नया नज़रिया दिया है। इस समीक्षा और अनुभव के बाद *पोंगल* किताब की तलाश में हूँ।

पारुल बत्रा दुग्गल का आलेख कक्षा के विविध अन्तरालों को जीवन्त और चरण-दर-चरण दिखाता है। इस आलेख के आरम्भ में 'थीम' शब्द को बड़े ही सरल रूप में समझाया गया है। लेखिका द्वारा स्पष्टता व अनुभव से बताना कि इस आयु का कोई भी बच्चा 10-15 मिनट से अधिक नहीं बैठ पाता, बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है जो आम शिक्षिका-शिक्षक, अन्य कार्यकर्ता या पालक नहीं समझ पाते। इसी आलेख में दी गई तालिका में दिनवार गतिविधियों का ज़िक्र है, यदि यह तालिका थोड़ी बड़ी होती तो पढ़ने में और सहजता होती।

फ़ैज़ कुरेशी, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, ज़िला भोपाल, मध्य प्रदेश



पाठशाला का यह अंक अपने-आप में ढेर सारी शिक्षण सामग्री समेटे हुए है। किताब *पोंगल* के ज़रिए जहाँ सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया गया है, वही अंकित शुक्ल के लेख 'भाग से क्यों भागना!' में भाग करने की रोचक विधियों की जानकारी दी गई है। तारेंद्र किशोर के लेख *'डेड पोएट्स सोसायटी'* : कविता के ज़रिए शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों को उभारती फ़िल्म' में कविता को समझने के मनोवैज्ञानिक तरीक़े पर बात की गई है। शिक्षक जॉन किटिंग के प्रयोग पर बनी ये फ़िल्म कविता को अपने ढंग से समझने का एक दृष्टिकोण विकसित करती है।

निस्सन्देह, शिक्षा में हो रहे विभिन्न प्रयोगों को अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने की दृष्टि से यह अंक बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

सुमन बिष्ट, राजकीय प्राथमिक विद्यालय हाज्यावाला, ब्लॉक सांगानेर (शहर), ज़िला जयपुर, राजस्थान

साक्षात्कार, अंक 14

पाठशाला के सभी अंक बेहतरीन होते हैं। मैंने पत्रिका के कई अंक पढ़े हैं। उनमें आए आलेख हमें मात्र जानकारी ही नहीं देते, वरन् कार्य पद्धति भी सिखाते हैं। आलेखों की मदद से सभी विषयों के विभिन्न पक्षों को समझने में मदद मिलती है। इन आलेखों से हम हमारे अध्ययन-अध्यापन को सुदृढ़ कर पाते हैं। यह सुदृढ़ता हमें विद्यालय में और बच्चों के साथ कार्य करने में बहुत मददगार होती है। बच्चों के साथ गहरी समझ के साथ काम करके विषयों को उनके अनुकूल बना पाना, पाठ,

पाठ योजना, सीखने के प्रतिफल, टीएलएम, विभिन्न प्रयोग, चित्रों, चार्ट, मॉडल आदि से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों को समझ पाना, इस पत्रिका से आसान हो जाता है।

पत्रिका के उक्त अंक में प्रकाशित 'साक्षात्कार' को पढ़कर लगा कि शिक्षा से जुड़े हुए एक व्यक्तित्व से मिलना हुआ है। पढ़कर समझ में आया कि शिक्षक के द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली शिक्षण प्रक्रिया सहज व रुचिकर हो, खेल-खेल में बच्चों को सिखाया जाए और नए वाद्य यंत्रों या कला से बच्चों को अवश्य जोड़ा जाए। शिक्षक के कार्यों का असर बच्चों की उपलब्धियों पर ज़रूर होता है। इससे बच्चे विद्यालय के शैक्षिक वातावरण में अधिक उन्नति कर पाते हैं व अधिक जुड़ाव महसूस कर पाते हैं।

'संवाद' पढ़कर समझ में आया कि समाज किस तरह से विविधता, भेदभाव, सामाजिक नीतियों, समानता, असमानता आदि मुद्दों पर काम करता है। सभी का पक्ष जानकर लगा कि हम भी बहुधा ग़लतियाँ कर देते हैं, जबकि हमें ख़ुद में भी सुधार की आवश्यकता है। इस तरह की समस्याएँ समाज में आम रूप में विद्यमान हैं या यूँ कहें कि समाज का एक हिस्सा हैं। बेहतरीन पत्रिका के लिए साधुवाद।

पूनम भाटिया, प्रधानाध्यापिका, राज. उच्च प्राथमिक विद्यालय बंबाला, सांगानेर, ज़िला जयपुर, राजस्थान

पत्रिका का अंक 14 पढ़कर बहुत अच्छा लगा। इस पत्रिका में दिए शिक्षकों के अनुभव पढ़कर पता चलता है कि बच्चों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए, कैसे उनके साथ मान-सम्मान और समझ के साथ रहा जाए और बच्चों के लिए कैसे स्कूल के वातावरण को आनन्दमयी बनाया जाए, ताकि बच्चे स्कूल के लिए घर से ख़ुश होकर आएँ। मैं कक्षा 1 व 2 की शिक्षिका हूँ। मेरा भी प्रयास रहता है कि अलग-अलग नवाचार करके बच्चों को सरल तरीक़ों से पढ़ाऊँ।

श्रीमती संध्या तन्तुवाय, शासकीय प्राथमिक शाला बमुरिया, तहसील पटेरा, ज़िला दमोह, मध्य प्रदेश

खुले प्रश्नों के खुले जवाब, अलका तिवारी, अंक 14



बच्चों के पास सवाल-जवाब का ख़जाना होता है। ज़रूरत सिर्फ़ इस ख़जाने को तलाशने की होती है। लेखिका ने बख़ूबी इसे समझा और इसपर काम किया है। बच्चों से बात करने के लिए जिन प्रक्रियाओं का चयन किया गया वे सभी बातचीत के रास्ते खोलती हैं– ख़ासकर किस्से, कहानियाँ। कहानियों में आए चोर, बिल्ली, कौवा, तोता जैसे किरदारों को बच्चे असल ज़िन्दगी से भी जोड़कर देख रहे थे। अपने अनुभव, तर्क के आधार पर हर पहलू पर उनकी नज़र थी। लेख के एक हिस्से में शामिल ये पंक्तियाँ "लिखित प्रतीकों का तब तक कोई अर्थ नहीं होता जब तक पाठक इन प्रतीकों का अर्थ नहीं समझता" इस लेख की ज़रूरत को उभारती है। इस लेख को मैं अपने अनुभवों से जोड़कर देखती हूँ और इससे इत्तेफ़ाक़ रखती हूँ।

इबारती सवालों पर काम के कुछ अनुभव, मारिया, अंक 14

सीखने के दौरान बच्चों को आ रही मुश्किल के लिए लेखिका ने इसे समझते हुए कक्षा में इसके लिए उपयुक्त विकल्प अपनाए। परिवेश से जुड़ी चीज़ों के साथ सीखना आसानी ही देता है, फिर विषय कोई भी हो वो नया या मुश्किल नहीं होता और इसमें उनकी अपनी भाषा को अगर

जगह दी जाए तब चीज़ें सीधेतौर से बच्चों की पहुँच का हिस्सा हो जाती हैं। यह आलेख इन सभी अनुभवों से जुड़कर पूरा हुआ है। लेखिका को बधाई।

रुबीना ख़ान, मुस्कान, भोपाल, मध्य प्रदेश



हर अंक की तरह पाठशाला का यह अंक भी रोचक, ज्ञानवर्धक और प्रेरणास्पद है।

इस अंक में विमर्श, परिप्रेक्ष्य, शिक्षणशास्त्र, कक्षा अनुभव, फ़िल्म चर्चा, साक्षात्कार और संवाद के ज़रिए लेखकों द्वारा उम्दा लेखन सामग्री पाठकों तक पहुँचाई गई है।

लेख 'भाग सीखने के तरीक़े' में पूजा ने प्राथमिक शाला के बच्चों को अलग-अलग तरीक़ों से भाग सिखाने का प्रयास किया है। लेखिका कहती हैं कि बच्चों को परिवेश के सन्दर्भों के साथ जोड़कर शिक्षण कार्य करवाया जाए तो वे जल्दी सीखते हैं।

अलका तिवारी के लेख 'खुले प्रश्नों के खुले जवाब' में भाषा शिक्षण के दौरान कहानी, कविताएँ, आदि सुनाकर उनपर चर्चा करने से बच्चों में चिन्तन प्रक्रिया शुरू हो जाती है और बच्चे अपने-अपने अनुभव व राय सबके साथ बाँटने लगते हैं। मारिया का 'इबारती सवालों पर काम के कुछ अनुभव' पढ़कर बहुत सारी समस्याओं का समाधान मिला।

इस अंक के संवाद 'क्या सामाजिक अध्ययन सिर्फ़ रटने का विषय है?' को पढ़कर सामाजिक विज्ञान विषय को पढ़ाने का एक नया नज़रिया मिला। मीनू पालीवाल का लेख 'कक्षा संचालन : चुनौतियाँ व चुनाव' भी काफ़ी अच्छा है।

कुल मिलाकर यह अंक मेरे लिए बेहद ज्ञानवर्धक रहा।

सुमन जैन, अध्यापिका, राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, ग्वार ब्राह्मणान, ब्लॉक सांगानेर, ज़िला जयपुर, राजस्थान

भाग से क्यों भागना!, अंकित शुक्ल, अंक 14

शिक्षणशास्त्र पर आधारित यह लेख भाग की प्रक्रिया से पहले उसकी अवधारणाओं की स्पष्टता पर बात करता है। इस लेख का सबसे ख़ूबसूरत पहलू यह है कि ये गणित शिक्षण में कहानी की बात करता है। कहानी बच्चों को उत्साह से भर देती है और इस अवधारणा को तोड़ती है कि गणित एक नीरस व बोझिल विषय है। कहानी में बच्चों के वास्तविक अनुभवों का समावेश किया गया है जिससे भाग पर बच्चों के व्यवहारिक ज्ञान की समझ पुख़्ता हो रही है। शिक्षक के सवाल सभी बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित कर रहे हैं जिससे गणित की अमूर्तता को काफ़ी हद तक कम किया गया है। यह प्रक्रिया सन्देश दे रही है कि गणित बहुत ही आसान और रोचक विषय है। अंकित बहुत ही सरल एवं रोचक तरीक़े से बच्चों के व्यवहारिक ज्ञान का प्रयोग करते हुए उन्हें भाग की मानक प्रक्रिया की ओर ले गए हैं। आशा है, लेखक आगे भी गणित की अन्य अवधारणाओं पर काम करेंगे एवं हमारे बीच अपने अनुभव साझा करेंगे।

सरोजनी रावत, राजकीय प्राथमिक विद्यालय खारास्रोत, नरेंद्र नगर, उत्तराखंड

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर **पाठशाला भीतर और बाहर** में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह, यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी अपने काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तर्क्रिया के नए तौर–तरीक़ों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि। इसी तरह, कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे, यह बता सकते हैं। गणित का एक उदाहरण शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उन्हें सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह, बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही, ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों एवं उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने

में मदद मिले और उनकी भाषा व विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा, आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उनमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि **पाठशाला भीतर और बाहर** का यह पन्द्रहवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

फॉर्म 4

1. **प्रकाशन का स्थान :** अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट, प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039
2. **प्रकाशन की नियत अवधि :** तिमाही
3. **मुद्रक का नाम :** मनोज पी.
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
4. **प्रकाशक का नाम :** मनोज पी.
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
5. **सम्पादक का नाम :** गुरबचन सिंह
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : ई 8 / 103 शिवकुंज रेलवे हाउसिंग सोसायटी, स्टॉप नं. 11 के पास, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 मध्यप्रदेश
6. **उन व्यक्तियों के नाम जिनका स्वामित्व है :**
   स्वामी : अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट
   पता : प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039

मैं मनोज पी. घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।



तारीख 1 मार्च 2023 **प्रकाशक के हस्ताक्षर**

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट के लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्लॉट नं. 163–164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, E–8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039 की ओर से प्रकाशित एवं गणेश ग्राफ़िक्स, 26–बी, देशबंधु परिसर, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन–1 भोपाल द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : गुरबचन सिंह

Azim Premji University

Anuvada Sampada

अनुवाद सम्पदा

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अनुवाद रिपॉज़ेटरी

अवधारणाओं तथा विचारों के साथ गहराई से जुड़ने हेतु विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता के 2000 से अधिक शैक्षणिक संसाधनों का भण्डार।





भारतीय भाषाओं में शैक्षणिक संसाधनों के लिए निशुल्क, ओपन-एक्सेस पोर्टल

- पुस्तकें और पुस्तक अंश
- अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के प्रकाशनों से लेख
- विभिन्न संगोष्ठियों और रीडरों से चुनिन्दा लेख

अनुवाद सम्पदा के लिए लिंक :

https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ

